Ph.D THESIS

"आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन"

ADHUNIK HINDI KAVAYITRIYOM KI KAVITAOM KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

HINDI

under the Faculty of Humanities

By
SANGEETHA NAIR

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 022

January 2018

"आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन"

ADHUNIK HINDI KAVAYITRIYOM KI KAVITAOM KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

HINDI

under the Faculty of Humanities

By
SANGEETHA NAIR

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 022

January 2018

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis entitled **"ADHUNIK HINDI KAVAYITRIYOM KI KAVITAOM KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN"** is based on the original work done by me under the guidance of Prof. Dr Devaki N.G. Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, Cochin - 682 022. No part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university or institution.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi - 682 022

SANGEETHA NAIR
Research Scholar

Place: Cochin

Date : / /2018

Certificate

This is to certify that the thesis entitled **“ADHUNIK HINDI KAVAYITRIYOM KI KAVITAOM KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN”** is a bonafide record of research work carried out by **Mrs. Sangeetha Nair** under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in this thesis.

Prof. Dr. Devaki N.G
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi - 682 022

Place: Cochin

Date : / /2018

“जहाँ सीमाएँ होती हैं-
वहीं युद्ध होते हैं!
जहाँ युद्ध होते हैं,
सीमाएँ वहीं होती हैं !”

- *स्नेहमयी चौधरी*

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. प्रकृति के रुदन का एहसास - “पत्थर तक जाग रहे हैं” -अनुशीलन, अंक 29, 2013, जनवरी, ISSN: 2249-2844
2. संस्कृति के चार अध्याय’ - भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में - अनुशीलन 2012, जुलाई, ISSN: 2249-2844
3. रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि ‘निराला’ के विशेष संदर्भ में - अनुशीलन, अंक 31 2014, जनवरी, ISSN: 2249-2844
4. विदेशी संस्कृति के प्रभाव और भारतीय सादगी के द्वन्द्व की झलक- ‘जाहिल मेरे बाने’ - अनुशीलन, अंक 30, 2013, जुलाई, ISSN: 2249-2844
5. ‘अपने घर की तलाश में’ का लोकपक्ष-अनुशीलन, अंक - 31, 2014, जुलाई, ISSN: 2249-2844
6. ‘स्त्री कविता का प्रतिरोध’ - अभिज्ञान, 2016 ISBN: 978-93-5212-830-3
7. समकालीन स्त्री कविता और स्त्री विमर्श - राष्ट्रीय संगोष्ठी की कार्यवाही पुस्तक (विषय समकालीन साहित्य और स्त्री लेखन; कैथलिकेट

कालेज, पत्तनमतिट्टा, केरल महात्मा-गांधी विश्वविद्यालय), 2013, सितंबर, ISBN: 978-81-920273-0-3

8. नवजागरणकालीन हिन्दी स्त्री कविता-अनुशीलन (संप्रेषित)

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रपत्र प्रस्तुति

1. "समकालीन स्त्री कविता और स्त्री विमर्श" - कैथलिकेट कालेज, पत्तनमतिट्टा, माहात्मागांधी विश्वविद्यालय, सितंबर 2013
2. "नवजागरणकालीन हिन्दी की स्त्री कविता" - कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मार्च 2017

अन्य प्रकाशित सामग्री

1. दलित हिन्दी कहानी 'जोहडी' का मलयालम में अनुवाद, 2013, सितंबर, (पुस्तक का नाम - समकालीन हिन्दी दलित कथा (मलयालम) ISBN: 978-93-80095-43-1
2. 'मलयालम में गांधी' पुस्तक केलिए सुगतकुमारी की कविता का अनुवाद, 2014, ISBN: 978-93-84155-07-0

भूमिका

भूमिका

समस्त भारतीय साहित्य में कविता का इतिहास बहुत पुराना है। अति संक्षिप्त फलक पर गहरी भावनाओं को वहन करने की क्षमता कविता के प्रति आकर्षण पैदा करती है। पूरे हिन्दी साहित्य में आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल से गुज़रते हुए आधुनिक काल में हिन्दी कविता की अजस्त्र धारा बहती हुई नज़र आती है। इस काव्य सृजन में पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी अपनी भूमिका निभाती आयी हैं। इस तथ्य के रहते हुए भी स्त्री कविता का सही आकलन एवं मूल्यांकन आज तक नहीं हो पाया है।

आधुनिक हिन्दी कविता के संदर्भ में कुछ इनी-गिनी कवयित्रियों से ही साहित्येतिहास ने हमारा परिचय कराया है जबकि वास्तविकता इससे कोसों दूर है। क्योंकि बहुत सी ऐसी अचर्चित एवं अल्प चर्चित कवयित्रियाँ इस दौर में रही हैं जिनकी काव्य संपदा को हिन्दी साहित्य के इतिहास में सही जगह नहीं मिल पाई। इस बात को मद्देनज़र रखते हुए प्रस्तुत शोध का विषय रखा गया। **"आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन।"** इस अध्ययन के तहत साहित्येतिहास में दर्ज कवयित्रियों के साथ हाशिये पर छोड़ी गयीं उन कवयित्रियों की काव्य विविधता को भी विस्तार मिला है जिनके प्रति इतिहासकारों ने प्रायः उपेक्षी भरी दृष्टि अपनायी है। वैसे भी साहित्य का समकालीन संदर्भ हाशियेकृतों को केन्द्र में लाने के यत्न से जुडा हुआ है। ऐसे संदर्भ में विषय की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। इस अध्ययन में हिन्दी साहित्येतिहास में जहाँ से आधुनिक काल की शुरुआत हुई है, जहाँ से 'आधुनिक हिन्दी' अर्थात् 'खड़ीबोली हिन्दी' काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित

हुई है, उस समय से लेकर समकालीन दौर तक की स्त्री कविताओं का विवेचन-विशेलषण समाहित है। विषय की समग्रता को ध्यान में रखकर प्रस्तुत शोध प्रबंध का विभाजन पाँच अध्यायों में किया गया है।

शोध प्रबंध का पहला अध्याय है **'आधुनिक हिन्दी स्त्री काव्यधारा-एक परिदृश्य'**। प्रस्तुत अध्याय विषय की पृष्ठभूमि है। यहाँ पूर्वाधुनिक स्त्री-काव्यधारा के संदर्भ में वैदिक ऋषिकाओं, थेरी गाथाओं, संस्कृत-प्राकृत कवयित्रियों तथा मध्ययुगीन कवयित्रियों के काव्य वैशिष्ट्य पर नज़र डालते हुए कवयित्रियों के विशेष संदर्भ में आधुनिक हिन्दी कविता की विकास यात्रा को रेखांकित किया गया है। पूर्वाधुनिक स्त्री काव्य का ज़िक्र करते हुए आधुनिक काल में युग परिवेश को ध्यान में रखकर कवयित्रियों की काव्य विविधता का सामान्य परिचय इस अध्याय के अंतर्गत रखा गया है। कवयित्रियों के काव्य चिन्तन में आये विकासोन्मुख परिवर्तन के कुछ अंशों को यहाँ जोड़ा गया है जिसका विस्तृत विवेचन आगे के अध्यायों में हुआ है।

'पूर्व छायावाद युगीन स्त्री काव्यधारा' इस शोध प्रबंध का दूसरा अध्याय है। प्रस्तुत अध्याय में विषयगत विश्लेषण है। इस अध्याय के तहत उन अल्प चर्चिच कवयित्रियों की कविताओं का प्रवृत्तिगत विश्लेषण हुआ है जिनकी कविताएँ मध्यकालीन प्रवृत्तियों से पृथक अपने युग की संवेदनाओं को आत्मसात करते हुए पुनर्जागरण की भावना से अनुप्रणित हैं। प्रस्तुत अध्याय इस प्रबंध को मौलिक आयाम प्रदान कर रहा है।

प्रबंध का तीसरा अध्याय **'छायावाद युगीन स्त्री काव्यधारा'** उन कवयित्रियों के काव्य-वैशिष्ट्य पर आधारित है जो छायावादी कवयित्री

महादेवी वर्मा के समकालीन मानी जाती हैं। महादेवी जी की काव्य-साधना में मौजूद देशप्रेम और नारी जागरण की भावना को भी इस अध्याय में उजागर किया गया है जो प्राय: आलोचकों की दृष्टि में नष्टप्राय थीं। आलोच्य युगीन काव्य विश्लेषण के दौरान उभरे प्रमुख तथ्यों में राष्ट्रीयता, नारी चेतना, जीवनदृष्टि, भाषिक विशिष्टता, सामाजिक यथार्थ आदि बातों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत अध्याय के तहत हुआ है।

शोध प्रबंध का चौथा अध्याय है **'छायावादोत्तर स्त्री काव्यधारा'**। अध्ययन का यह प्रसंग प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता से लेकर अकविता तक के काव्यांदोलनों को स्पर्श कर रहा है। इस बीच स्वतंत्रता पूर्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा को हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत 'छायावाद' के बाद रेखांकित किया गया है जहाँ कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम दर्ज है। इसीलिए उनके काव्यरचना वैशिष्ट्य को प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत परखा गया है। विवेच्य युगीन काव्य के संदर्भ में सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों के साथ कवयित्रियों की जीवनदृष्टि एवं भाषिक अभिव्यक्ति को भी प्रस्तुत अध्याय में शब्दबद्ध किया गया है।

'समकालीन स्त्री काव्यधारा' प्रबंध का पाँचवाँ अध्याय है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत सन्' 80 से लेकर वर्तमान दौर तक की कवयित्रियों की कविताओं का समग्र विवेचन समाहित है। समकालीन संदर्भ में कवयित्रियों की लंबी कतार साहित्य जगत में विद्यमान है। ऐसी स्थिति में चुनी हुई कवयित्रियों की कविताओं को इस अध्याय के तहत अध्ययन का विषय बनाया गया है। समकालीन स्त्री कविता की बहुस्वरता को समझते हुए

कविता में समाज की प्रत्येक उपेक्षित इकाई के प्रति कवयित्रियों की सहानुभूति एवं सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों के प्रति उनकी प्रतिरोधी मानसिकता विभिन्न शीर्षकों के तहत इस अध्याय में दर्ज हुई है। वर्तमान समाज के शिक्षित वातावरण में स्त्री की बदलती छवि, जीवन को लेकर उसकी बदली हुई सोच आदि को यहाँ रेखांकित किया गया है।

उपसंहार के अंतर्गत संपूर्ण अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षेप में समाहित करने की कोशिश हुई है, जहाँ इस अध्ययन की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है।

विषय की व्यापकता एवं विस्तार के कारण इस शोध प्रबंध की अपनी सीमा रही है फिर भी विषय की प्रासंगिकता एवं प्रमुखता को समग्र रूप से इस प्रबंध में समेटने का प्रयास अवश्य हुआ है। इसमें जो त्रुटियाँ एवं कमज़ोरियाँ रही हैं उसकेलिए सादर क्षमाप्रार्थी हूँ। अपना यह शोध प्रबंध सभी सीमाओं में रहकर विद्वानों के सामने सहर्ष प्रस्तुत कर रही हूँ।

सविनय

संगीता नायर

शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 682 022

तारीख :

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत शोध का यह प्रबंधाकार मेरे अकेले प्रयत्न का परिणाम नहीं है। प्रस्तुत शोध प्रबंध का प्रणयन कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की आचार्या प्रोफेसर डॉ. देवकी.एन.जी के निर्देशन में हुआ। उनके प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ जिन्होंने अपने निजी आग्रहों व पूर्वाग्रहों से मुक्त रखते हुए विषय चुनाव से लेकर उसके निर्वाह तक मुझे पूरी स्वतंत्रता दी। इस शोध प्रबंध की निर्विघ्न परिसमाप्ति केलिए उन्होंने जो सुझाव एवं मार्गदर्शन दिए हैं उसकेलिए उनके प्रति मैं बहुत आभारी हूँ।

प्रस्तुत शोध की विषय विशेषज्ञा कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा प्रोफेसर डॉ. के. अजिता जी रही हैं। उनके प्रोत्साहन और परामर्श से इस शोधकार्य को आगे बढ़ाने में मुझे सहायता मिली है। उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

विभाग की आचार्या एवं मानविकी संकाय की अध्यक्षा आचार्या डॉ. के. वनजा जी और आचार्य आर. शशिधरन जी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनके बहुमूल्य विचारों से मेरा शोधकार्य सार्थक बन पाया है।

हिन्दी विभाग के भूतपूर्व आचार्य डॉ. एन मोहनन जी के प्रति विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तता में भी समय निकालकर विषय संबंधी सुझावों से अनुगृहीत किया। मेरी शंकाओं के निवारण हेतु वे हमेशा प्रस्तुत रहे हैं। कई बार उनसे लंबे संवाद के अवसर मिले जिससे मेरी दृष्टि का परिष्कार हुआ और कार्य को नया उत्साह और बल मिला। उनके प्रति मैं श्रद्धानत हूँ।

इस शोध की पूर्ति में विभाग के पुस्तकालय की भूमिका अनिर्वचनीय है। विषय चयन के बावजूद बिना ठोस सामग्री के प्रस्तुत शोध प्रबंध का अपना आकार ग्रहण करना असंभव था। पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री. अशरफ जी के सहयोग से यह शोध कार्य संभव बन पाया। उनके प्रति मैं तहे दिल से शुक्रिया अदा करती हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के इस स्वरूप में सामने आने में मेरे मित्रों विशेषकर श्याम कुमार.एस और के. लेखा की भूमिका सराहनीय रही है जो परिदृश्य के पीछे रहकर ही अपना प्रभाव छोडने में सार्थकता समझते हैं। मैं उन सबकी ऋणी हूँ।

शोध कार्य की पूर्ति में मेरे परिवार का सहयोग असंदिग्ध है। मेरे माता-पिता, भाई और मेरे पति के संपूर्ण सहयोग एवं अनवरत प्रेरणा से ही शोध कार्य को मैं समाप्ति के चरण पर ला पायी हूँ । उनके असीम प्रेम और आशीर्वाद के सामने यह शोध प्रबंध समर्पित करती हूँ ।

सविनय

संगीता नायर

शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 682 022

तारीख :

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-47

आधुनिक हिन्दी स्त्री-काव्यधाराः एक परिदृश्य

1.1 पूर्वाधुनिक स्त्री काव्यधारा

1.1.1 वैदिक ऋषिकाएँ

1.1.2 थेरी गाथाएँ

1.1.3 संस्कृत और प्राकृत कवयित्रियाँ

1.1.4 मध्ययुगीन कवयित्रियाँ

1.2 आधुनिक हिन्दी स्त्री-काव्यधारा

1.2.1 पूर्व छायावाद युगीन कवयित्रियाँ (1857-1918)

1.2.2 छायावाद युगीन कवयित्रियाँ (1918-1936)

1.2.3 छायावादोत्तर कवयित्रियाँ (1936-1980)

1.2.4 समकालीन कवयित्रियाँ (1980-अब तक)

निष्कर्ष

दूसरा अध्याय 48-91

पूर्व छायावाद युगीन स्त्री काव्यधारा

2.1 देशप्रेम की भावना

2.1.1 अतीत का गौरवगान एवं वर्तमान दुर्दशा की चिन्ता

2.1.2 राष्ट्रोद्बोधन के स्वर

2.1.3 शहीदों के प्रति श्रद्धांजली
2.2. स्त्री चेतना
2.2.1 शोषित नारी की मनोवृत्ति
2.2.2 शोषण के प्रति सचेत नारी
2.2.3 मुक्ति केलिए आवाज़ उठाती नारी
2.3 नीति और आदर्श
2.4. अन्य प्रवृत्तियाँ
2.4.1 वात्सल्य
2.4.2 प्रकृति-चित्रण
2.4.3 ईश्वर पर आस्था
2.5 भाषागत विशेषताएँ
निष्कर्ष

तीसरा अध्याय 92-152

छायावाद युगीन स्त्री-काव्यधारा

3.1 देशप्रेम की भावना
3.1.1 देश का गौरव गान
3.1.2 स्वतंत्रता की चाह
3.1.3 राष्ट्रोद्बोधन के स्वर
3.1.4 आत्म बलिदान की भावना
3.2 नारी चेतना
3.2.1 जागृत नारी
3.2.2 मुक्ति की चाह
3.2.3 प्रतिरोधी स्वर
3.2.4 स्वत्व की पहचान
3.3 प्रणय भावना

3.3.1 संयोग
3.3.2 वियोग
3.4 सामाजिक यथार्थ
3.4.1 किसान जीवन की त्रासदी
3.4.2 भ्रूण हत्या
3.5 जीवनदृष्टि
3.5.1 जीवन में सुख-दुख का सामंजस्य
3.5.2 जीवन की क्षणिकता
3.5.3 कर्म का महत्व
3.5.4 परदुखकातरता
3.5.5 जन्म-मृत्यु संबंधी दृष्टिकोण
3.5.6 कवि संबंधी दृष्टिकोण
3.6 अन्य प्रवृत्तियाँ
3.6.1 प्रकृति बोध
3.6.2 नीति और आदर्श
3.7 भाषागत विशेषताएँ
निष्कर्ष

चौथा अध्याय 153-236

छायावादोत्तर स्त्री-काव्यधारा

4.1 सामाजिक यथार्थ
4.1.1 स्त्री चेतना
4.1.2 श्रमिक/सर्वहारा जीवन का यथार्थ
4.1.3 ग्रामीण जीवन की त्रासदी
4.1.4 महानगरीय जीवन का यथार्थ
4.1.5 मूल्य संकट
4.1.6 प्रकृति बोध
4.1.7 युद्ध की विभीषिकाएँ

4.2 राजनीतिक यथार्थ
4.2.1 देशप्रेम की भावना
4.2.1.1 वीरों की स्तुति
4.2.1.2 राष्ट्रोद्‌बोधन के स्वर
4.2.1.3 आत्मबलिदान की भावना
4.2.1.4 हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम
4.2.1.5 सुन्दर भविष्य की कल्पना
4.2.1.6 मूल्य संकट के संदर्भ में ध्वज वंदना
4.2.2 व्यवस्था विद्रोह
4.3 अन्य प्रवृत्तियाँ
4.3.1 पौराणिक संदर्भों का पुनर्पाठ
4.3.2 प्रेम भावना
4.3.2.1 संयोग
4.3.2.2 वियोग
4.3.2.2.1 प्रवास पूर्व विरह
4.3.2.2.2 प्रवास विरह
4.3.3 वात्सल्य
4.3.3.1 संयोग
4.3.3.2 वियोग
4.4 जीवनदृष्टि
4.5 भाषागत विशेषताएँ
निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय 237-310

समकालीन स्त्री काव्यधारा

5.1 स्त्री अस्मिता

5.1.1 स्त्री शोषण के विविध आयाम

5.1.2 पुरुष वर्चस्व का विरोध

5.1.3 स्वत्व बोध का अन्वेषण

5.2 राजनीतिक यथार्थ

5.2.1 लोकतांत्रिक संदर्भ

5.2.1.1 व्यवस्था का जनविरोधी रूप

5.2.1.2 सांप्रदायिकता

5.2.2 नवऔपनिवेशिक संदर्भ

5.2.2.1 नवऔपनिवेशिक स्थिति की समझ

5.2.2.2 उपभोग संस्कृति का प्रतिरोध

5.2.2.3 बदलते मूल्यबोध

5.2.2.4 बदलते मानवीय संबंध

5.3 प्रकृति बोध

5.3.1 पारिस्थितिक स्त्रीवाद

5.3.2 पारिस्थितिक संकट

5.4 सांस्कृतिक स्वत्वबोध

5.5 जीवनदृष्टि

5.6 भाषागत विशेषताएँ

निष्कर्ष

उपसंहार 311-317

संदर्भ ग्रन्थ-सूची 318-336

पहला अध्याय

आधुनिक हिन्दी
स्त्री काव्यधारा - एक परिदृश्य

कविता, कविता होती है, उसे स्त्री या पुरुष कविता के रूप में बाँटकर नहीं देखना चाहिए यह तर्क अक्सर विद्वान देते रहते हैं। इस तर्क के रहते हुए स्त्री कविता का सही आकलन आज तक नहीं हो पाया है। स्त्रियाँ हमेशा से कविताएँ लिखती रही हैं, पर उन कविताओं का सही मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ। उनकी कविताओं को हिन्दी साहित्य के इतिहास में सही जगह नहीं मिली। कवयित्रियों की कविताओं के विकास के अध्ययन केलिए भारतीय समाज में परंपरागत नारी की छवि एवं उसकी ऐतिहासिक रूपरेखा का ज्ञान परम उपयोगी है क्योंकि भारतीय संस्कृति हिन्दी साहित्य का अनिवार्य अंग है और उसके संदर्भ में ही कवयित्रियों की चेतना में आए बदलाव के विविध रूपों का अध्ययन किया जा सकता है। वर्तमान समय में कवयित्रियाँ जितने सशक्त रूप में उभरकर सामने आयी हैं उसके लिए उन्हें एक लंबी संघर्षपूर्ण यात्रा पूरी करनी पड़ी है। इस यात्रा के विभिन्न सोपानों का परिचय संक्षिप्त रूप से इस अध्याय के अंतर्गत दिया जा रहा है।

1.1. पूर्वाधुनिक स्त्री काव्यधारा

पूर्वाधुनिक स्त्री काव्यधारा से यहाँ तात्पर्य हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल से पूर्व तक प्राप्त स्त्री काव्य की दशा और दिशा से है। स्त्री काव्यधारा के आलोच्य काल के विभिन्न चरणों पर यहाँ दृष्टिपात किया जा रहा है।

1.1.1 वैदिक ऋषिकाएँ

प्रागैतिहासिक काल से नारी ने अपनी प्रबल मेधा का परिचय विभिन्न

सूक्तों की रचना करके दिया है। ऋग्वेद मंत्रों का संकलन है और मंत्रद्रष्टा ही ऋषि हैं। ऋग्वेद में रोमशा, लोपामुद्रा, अदिति, विश्ववारा आत्रेयी, अपाला आदि नाम मंत्रद्रष्टा के रूप में पाये जाते हैं। ऋग्वेद के दसवें मंडल में सबसे अधिक संख्या में ऋषिकाएँ संकलित हैं - जिसमें ब्रह्मवादिनी घोषा, शची पौलोमी, इन्द्राणी, सर्पराज्ञी, गोधा, अगस्त्य स्वसा, दक्षिणा प्राजापत्या, रात्रिभारद्वजी, सरमादेवशुनी, वागाभृणी, सूर्या सावित्री, श्रद्धा कामायनी आदि नाम आते हैं। कृतित्व के आधार पर ऋषियों के भी दो वर्ग हैं, एक तो एकाकी दूसरे पारिवारिक। एकाकी ऋषिका वे हैं जिन्होंने स्वयं मंत्र रचना की और पारिवारिक वे जिनके परिवार में अन्य मन्त्रद्रष्टा भी हैं। विदुषी स्त्रियों और योग्य विवाह की चर्चा एवं अपनी क्षमता के मूल्यांकन का समान अधिकार प्राप्त करने केलिए आवाज़ ऋषिकाओं के सूक्तों में प्राप्त होते हैं।

1.1.2 थेरी गाथाएँ

ऋग्वेद के बाद महिला लेखन के नमूने हमें थेरी गाथा के रूप में मिलते हैं। थेरी गाथाओं की सबसे पहली पहचान स्त्री होने की है जो उनकी रचनाओं को थेर गाथाओं से अलगाती हैं। थेरी गाथाओं का संबंध भारतीय प्रथम नवजागरण से है। प्रथम भारतीय नवजागरण काल लगभग ई. पू से 800 वर्ष माना जाता है। इसके अंतर्गत उपनिषद् एवं जैन-बौद्ध आंदोलन शामिल हैं। इस समय तक वैदिक धर्म कर्मकाण्ड की सीमा तक पहुँचकर समाज की चुनौती को स्वीकार करने में असमर्थ हो चुका था। उस पर पुरोहित वर्ग का आधिपत्य हो चला था। नया युग कर्मकाण्ड से भावना की ओर विकास है। वैदिक युग के बाद अनेक सुधारवादी दर्शनों एवं संप्रदायों

का जन्म हुआ। थेरी गाथा '522' गाथाओं का संकलन है जिसमें लगभग सौ थेरियों के उद्‌गार हैं। इनका संकलन भी अन्य बुद्धवचनों की तरह मौखिक रूप से प्रचलित रहने के बाद ही हुआ होगा।

थेरी गाथा में विभिन्न वर्गों एवं वर्णों की महिलाएँ शामिल हैं, जिन्होंने भिक्षुणी बन अपने जीवन के संचित अनुभवों को इन गाथाओं में गाया है। खेमा, सुमना, शैला और सुमेधा, कोसल, मगध और आलवी के राजवंशों की महिलाएँ थीं। महाप्रजापति गोमती, तिष्या, अभिरूपा नन्दा, सुन्दरी नन्दा, जेन्ती सिंहा, धीरा, मित्रा, भद्रा, उपशमा और अन्यतरा आदि थेरियाँ शाक्य और लिच्छवि सामंतों की कन्याएँ थीं। मैत्रिका, अन्यतरा, उत्तमा, चाला, उपचाला, रोहिणी, मुक्ता, नंदा, दन्तिका आदि ब्राह्मण वंश की थीं। गृहपति और वैश्यवर्ग की महिलाओं में पूर्णा, चित्रा, श्यामा, उर्विरी, सुजाता, अनोपमा आदि के नाम लिये जा सकते हैं। अभयमाता, विमला और अम्बपाली गणिकाएँ हैं। शुभा सुनार की पुत्री है और पूर्णिमा दासी की।थेर गाथाएँ प्रकृति-सौन्दर्य में रची-बसी हैं जबकि थेरीगाथाएँ अपने भीतर की यात्राएँ, जिसमें उनकी पूर्व स्मृतियाँ भी जुडी हैं। थेरी गाथाओं की दूसरी पहचान उनकी आत्म अभिव्यंजना है। यहाँ हम अतीत और वर्तमान को संलाप करते गेख सकते हैं। थेर गाथा में आत्माभिव्यक्ति के अंश कम हैं और उथले हैं। थेर गाथाओं में भिक्षुओं के प्रव्रज्या ग्रहण करने के कुछ विशेष कारण नहीं दिये गए हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो बुद्ध वचनों से प्रेरित होकर ही वे इस मार्ग के पथिक बने। परंतु थेरियों के संबंध में यह सच नहीं है। यहाँ कारण है और ठेठ भौतिक कारण है और शत-प्रतिशत स्त्रीत्व से संबंधित है।

वैदिक ऋचाओं की तुलना में थेरी गाथाओं की रचना सर्वथा पृथक भूमिका में है। यह अंतर केवल भाषाओं का नहीं है, भिन्न समाजिक स्तरों, वर्गों और विचार सरणियों का है। महिला लेखन की दृष्टि से यह अन्तर रेखांकित करने योग्य है।

ऋग्वेद और थेरी गाथाओं की महत्ता स्वीकार करते हुए भी यह मानना गलत होगा कि ये साहित्येतिहास लेखन के प्रयास हैं, यद्यपि उसकी सामग्री अवश्य है। पर हैं ये धर्म ग्रंथ ही।

1.1.3 संस्कृत और प्राकृत कवयित्रियाँ

द्वितीय भारतीय नवजागरण के साथ प्राकृत और संस्कृत की कुछ कवयित्रियों के छींटे साहित्येतिहास पर पड़े हैं। ईसवीं सदी के प्रारंभ से कुछ पहले ही भारतीय धर्मों में कुछ गंभीर परिवर्तन प्रारंभ हो गये थे। उनमें सबसे प्रमुख था सभी प्रमुख धर्मों पर भक्ति का प्रारंभ। इस युग में विदेशी बैक्ट्रियन, यवनों, शकों, पल्लवों, कुषाणों, शुंगों, कण्वों तथा आंध्रसातवाहन के शासनकाल में भारतीय प्रतिभा विदेशों के संपर्क में आयी जिससे समाज की क्षयग्रस्त रूढ़ियाँ कुछ शिथिल हुईं एवं नवीन जीवन-दर्शन, साहित्य तथा कला पद्धतियों का विकास हुआ। इसी युग में रामायण, महाभारत को अंतिम रूप प्रदान किया गया, स्मृतियों की रचना हुई, उपनिषद एवं पुराणों को स्थान मिला। विभिन्न वर्गों को समाज में निर्धारित स्थान दिया गया। अवतारवाद की धारणा का विकास हुआ और एक बार फिर ब्राह्मण-धर्म को प्रभुत्व प्राप्त

हुआ। इस नवजागरण में बृहत्तर भारत का निर्माण हुआ। नवजागरण की प्रमुख संवाहक भाषा बनी संस्कृत भाषा। अब इसका ज्ञान केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं था बल्कि उसने एक लोकप्रिय जीवित साहित्यिक भाषा का रूप प्राप्त कर लिया था। इसी युग में संस्कृत को राष्ट्रभाषा का स्थान मिला। अपभ्रंश जैसी भाषाएँ इसी समय विकसित हो रही थीं।

प्राकृत काल (1-550ई.) संस्कृत कविता का स्वर्णयुग है। संस्कृत और प्राकृत दोनों में ही कवयित्रियों ने रचनाएँ की हैं, परंतु बहुत कम ही उपलब्ध है, संग्रह ग्रंथकारों की कृपा से। कालक्रमानुसार प्राकृत कविताएँ पहले आती हैं। उनका स्रोत ग्रंथ 'गाथा सप्तशती' है, जिसमें लगभग सात सौ गाथाएँ संगृहीत हैं। इसमें संगृहीत कवि और कवयित्रियाँ विभिन्न कालों की हैं। 'गाथा सप्तशती' में लगभग सोलह कवयित्रियों की रचनाओं के उल्लेख टीकाकारों ने किए हैं। वे हैं - रोहा, पृथिवी, रेवती, चंदपुट्टिका, रेवा,रेद्दा, आंध्रालक्ष्मी, शशिप्रभा, मृगांकलक्ष्मी, गुणमुग्धा, सिरिसत्ता आदि। सप्तशती का सबसे अधिक महत्व इस तथ्य में हैं कि इतिहास में प्रथम बार कवयित्रियाँ शुद्ध लौकिक कविताओं को लेकर अपनी उपस्थिति दर्ज करती हैं। 'गाथा सप्तशती' श्रृंगारपरक कविताओं का संकलन है।

'गाथा सप्तशती' के आसपास संस्कृत साहित्य में भी कवयित्रियों की उपस्थिति दर्ज की गई। 40 स्त्री कवियों के लगभग डेढ़-सौ पद्य इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, जिनमें विज्जका, सुभद्रा, फलगुहास्तनी, इन्दुलेखा, मारुला, विकटनितम्बा, शीला भट्टारिका के नाम मुख्य हैं। इनके संबंध में कहा गया

है कि पहली बार कवयित्रियाँ बिना किसी अन्य परिमिति के शुद्ध कविता को लेकर उपस्थित हुई हैं। न तो वह स्तुति गान है और न ही संसार त्याग की विरक्ति वरन् लोक में, राजस्व में पूर्ण समानुरक्ति है। इसका परिणाम यह हुआ कि ऋग्वेद की टीकाओं एवं थेरी गाथाओं की दीपिका में जिस प्रकार स्मृत इतिहास को सुरक्षित रखा गया है, उसका यहाँ अभाव है।

कवयित्रियाँ चाहे प्राकृत की हों या संस्कृत की वे शिष्ट अभिजात्य और काव्यपरंपराओं की खास जानकर हैं। लगभग सभी कवयित्रियाँ सुशिक्षित राजघरानों से संबंध रखती हैं।

लगभग इसी समय विभिन्न नव्य भारतीय भाषाओं का अस्तित्व सामने आता है। अपभ्रंश काव्य की चर्चा करते हुए कवयित्रियों की अनुपस्थिति प्रकट होती है। यह अनुपस्थिति भाषा में है काल में नहीं। अर्थात् कवयित्रियों ने इस काल में अपनी रचना केलिए संस्कृत भाषा को चुना था। इसलिए यह कहने के स्थान पर कि इस काल में कवयित्रियाँ नहीं मिलती हमें यह कहना चाहिए कि वे सामाजिक अंतर्विरोध से जन्म लेती काव्य-परंपराओं के स्थान पर संस्कृत क्लासिकल परंपरा को अपनाती हैं। ये कवयित्रियाँ अपने कवि कर्म के संबंध में ही नहीं, उसकी प्रतिष्ठा के संबंध में भी सचेत हैं।

1.1.4 मध्ययुगीन कवयित्रियाँ

हिन्दी साहित्य का आदिकाल (993-1318) सबसे अधिक विवाद का विषय रहा। इसके प्रारंभ को लेकर, नामकरण को लेकर, भाषा को

लेकर, इसकी सूचनाओं को लेकर रचनाओं की प्रामाणिकता को लेकर। यह काल सिद्धों, नाथों और जैनों का है। सिद्धों की संख्या चौरासी मानी जाती है, और ऐसा अनुमान है कि इनमें कुछ स्त्री सिद्ध भी हैं। तिब्बत से उपलब्ध सिद्धों की सूची में मणिभद्रा, मेखला, कनखला एवं लक्ष्मीकरा स्त्रियों के नाम हैं। जिन सिद्धों के चर्यापद मिलते हैं उनमें भी कुक्करिपा को नारी मानने की बात चली है।

जब संपूर्ण आदिकालीन हिन्दी साहित्य की स्थिति असमंजस में हो तो उस युग के स्त्री लेखन का सवाल उठाना जोखिम भरा हो तो भी उससे और कतराया नहीं जा सकता। इस तथाकथित आदिकाल का जो भी स्त्री लेखन है वह लोकगीतों और लोकगाथाओं के रूप में है, जिसे साहित्येतिहास के क्षेत्र से बाहर कर दिया है। वीरगाथा काल में देश और समाज जटिल राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अशांत और उद्विग्न था। ऐसे समय में और इस प्रकार के साहित्य की रचना के क्षेत्र में स्त्रियाँ कितना कार्य कर सकती हैं यह स्पष्ट ही है। स्त्रियों केलिए यह आवश्यक न था कि वे वीरकाव्य गाते हुए रणांगन में आवें। उनका एक अनिवार्य कर्तव्य यही रह गया था कि वे विजयश्री को देखकर प्रमोदामोद से वीर पुरुषों की आरती उतारें, या पराजयकालिमा को देखकर शत्रुओं के अनाचार प्रारंभ करने के पूर्व ही जौहर आदि के द्वारा देश और समाज की लज्जा की रक्षा करते हुए अपने पंच-भौतिक पिंजर से प्राण पखेरुओं को निकालकर स्वर्गारोहण करें और वहाँ अपने वीरगति प्राप्त प्रियजनों से पुनर्मिलन प्राप्त करें। यही मुख्य

बात है कि आदिकाल में स्त्रियों ने साहित्य रचना के क्षेत्र में कार्य नहीं किया। जहाँ नाम सहित स्त्री लेखन हुआ है, साहित्य और इतिहासकारों में उसकेलिए भी उदासीनता का भाव रहा है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् 1318-1850 तक का समय मध्यकाल है। मध्यकाल के पूर्वार्द्ध को 'भक्तिकाल' और उत्तरार्द्ध को 'रीतिकाल' के नाम से पुकारा जाता है। निस्संदेह ये नाम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के दिये हुए हैं। जहाँ तक महिला-लेखन का सवाल है, उसकेलिए इस अन्तर्विभाजन की आवश्यकता नहीं है। मध्ययुगीन नवजागरण में एक बार फिर रचना के केन्द्र बदलते हैं। मध्ययुगीन नवजागरण के साथ ही हिन्दी साहित्येतिहास में महिला लेखन का प्रारंभ हुआ। मध्ययुगीन कवयित्रियों पर नज़र डालने से पूर्व उस युग की राजनीति के पूर्वार्द्ध से परिचित होना भी ज़रूरी है। वह समय भिन्न शासक वर्गों का समय था। मध्यकालीन इतिहास के पन्ने को हम मुगलकाल कहते हैं। यही समय था जब हिन्दी साहित्य बना और उसने अपना स्वरूप ग्रहण किया। स्त्री रचनात्मकता का नवीन चेहरा मुखर होकर उभरा। स्त्रियों ने शासन की बागडोर संभाली। जाहिर है इतने महत्त्वपूर्ण कार्यों केलिए स्त्री शिक्षा की व्यवस्था रही होगी।

यहाँ पुरुष लेखन और महिला लेखन में एक बहुत बड़ा अंतर है। भक्तिकाल का पुरुष लेखन आचार्यों, मंदिरों और मठों की परंपरा में विकसित हुआ है। इस दृष्टि से महिला लेखन एक बहुत बड़ा मिथक तोड़ता

है। इस साहित्य का बड़ा भाग विधिवत् दीक्षा लेकर मठों मंदिरों में बैठकर नहीं लिखा गया। यह अधिकांशतः राजघरानों में लिखा गया या घरों में रहकर लिखा गया। इस आभिजात्य स्त्री कविता का दूसरा छोर है इसकी संस्कृत में रची गयी कविताएँ। इन कवयित्रियों ने लोकभाषा को तरजीह नहीं दी थी। विशेष रूप से मुगल दरबार में हिन्दी कविता समादृत थी और बोलचाल की भाषा भी हिन्दी ही रही होगी। इसके बावजूद बादशाहों ने तो हिन्दी में लिखा, लेकिन बेगमों ने नहीं। यही बात संस्कृत में लिखनेवाली कवयित्रियों केलिए कही जा सकती है। दोनों ही वर्गों की कवयित्रियों ने अपनी-अपनी भाषाओं की काव्य रूढ़ियों का पालन किया है। जाहिर है, दोनों ही भाषाओं की पुष्टकाव्य परंपराएँ हैं। जो कुछ भी उदाहरण हमें मिलते हैं, उनसे इतना तो कहा ही जा सकता है, कि इनमें स्त्रीत्व की छाप नहीं है। इसका एक कारण तो यह है कि फारसी और संस्कृत दोनों में ही क्रियाएँ लिंग के द्वारा निर्धारित नहीं होती, परंतु वस्तु और दृष्टि भी उससे अछूती नहीं है।

मीरा पर तो कोई भी सामान्य कथन लागू नहीं होता। इस समय की हिन्दी कवयित्रियों में यही एक ऐसा नाम है जिसकी उपेक्षा कोई साहित्येतिहास नहीं कर सका। मीरा की अधिकांश रचनाओं के, उनकी काव्यभाषा के कारण तीन संस्करण प्राप्त होते हैं - राजस्थानी, ब्रज और गुजराती। मीरा का काव्य उनकी निजी अनुभूतियों का काव्य है।

एक मध्ययुगीन समाज में, राजस्थान के रादघराने की रानी ‘सती’

होने से इनकार कर दे, निश्चित रूप से यह एक हिला देनेवाली घटना रही होगी। मृत्यु का समय लगभग सं 1603 माना जाता है। वस्तुतः मीरा की पहचन और ख्याति उनकी पदावली के कारण है। (1546 सन्)

मध्ययुगीन साहित्य में मीरा का जीवन और साहित्य नारी-विद्रोह का रचनात्मक आगाज़ है। उन्होंने इस कथन को सिद्ध कर दिया कि विद्रोही बनाये नहीं जाते, वे पैदा होते हैं। नारी-जीवन की सर्वमान्य व्यवस्था 'विवाह' से विद्रोह। पति की मृत्यु के बाद 'सती' होने से इनकार-परिवार सत्ता से विद्रोह। साधु-संगति और मुक्त हो गाना-नाचना, चिढ़ानेवाले अन्दाज़ में चुनौती देना और फिर राज्यसत्ता से विद्रोह। यहाँ तक तो शायद झेला जा सकता था, परंतु उन्होने धर्म की 'व्यवस्था' से भी विद्रोह कर दिया। जीवन की तरह साधना में भी मीरा ने किसी रूढी का पालन नहीं किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें इसीलिए 'संप्रदाय-मुक्त' वर्ग में रखा है।

मीरा के बाद ताज महत्त्वपूर्ण कवयित्री हैं। उनमें मीरा जैसा तेवर तो नहीं है, फिर भी मुसलमान होते हुए भी, खुल्लम-खुल्ला कृष्ण-प्रेम में 'हिन्दुआनी' हो रहने की घोषणा करना मध्ययुगीन मुगल शासन में साहस का ही कम माना जाएगा। ताज का सर्वप्रथम उल्लेख 'शिवसिंह सरोज' में है। उन्होंने ताज का जन्म सं 1652 वि (सन् 1595) माना है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य में ताज को बादशाह अकबर की पत्नी माना गया है। मीरा और ताज, इन दोनों के काव्य का आधार है, उनका सर्वथा निजी अनुभव।

दोनों की ही प्रेम साधना लीक से हटकर थी। उसमें लोक और शास्त्र का विचार नहीं था। लेकिन मीरा को जो संघर्ष करना पड़ा, वह ताज़ को नहीं यद्यपि समर्पण और साहस की कमी ताज में कहीं नहीं है।

सोलहवीं शताब्दी के अंत तक दो-तीन कवयित्रियों के नाम और मिलते हैं - गंगास्त्री, यमुनास्त्री। वैष्णव सर्वस्व के लेखकानुसार दोनों स्वामी हितहरिवंश की शिष्या थीं जिनका समय 1559 -1659 वि है।

सुजानराय सम्राट मुहम्मदशाह 'सदारंग' की राजनर्तकी और रससिद्ध रीतिमुक्त कवि घनानंद की प्रेयसी थी। माना जाता है कि वे मुसलमान थीं। इनकी रचना इनकी इस्लाम के प्रति आस्था प्रकट करती है। महाकवि केशवदास की शिष्या प्रवीणराय पातुर का उल्लेख मिलता है। उनके कुछ स्फुट चंद ही मिलते हैं जो रीतिकाव्य से अनुप्राणित हैं।

अठारहवीं सदी में मुख्य रचना केन्द्र राजस्थान के रहे हैं। जो कवयित्रियाँ सीधे राजघरानों से संबंधित नहीं भी हैं, वे भी अप्रत्यक्ष रूप से जुडी हैं।

इनमें ब्रजकुंवरिबाई (जन्म लगभग 1760 ई) -ग्रंथ 'ब्रजदास भागवत', सुन्दर कुंवरि बाई (ग्यारह ग्रंथ- 'नेहनिधि', 'रामरहस्य', 'संकेतयुगल', 'गोपी महात्म्य', 'रसपुंज', 'सारसंग्रह', 'वृन्दावन गोपी माहात्म्य' भावना प्रकाश, 'प्रेम सम्पुट', 'रंगझर' तथा स्फुट कवित्त, सोनकुंवरि (सुबरन बेलि की

कविता), छत्र कुंवरि बाई (सं 1747 में रचित 'प्रेमविनोद'), रत्नकुंवरि ('प्रेम रत्न'), कृष्णावती, वीरा, गबरीबाई, आनंदी बाई, महारानी बृजभानु कुंवरि, गिरिराज कुंवरि, जुगलप्रिया, बाघेली विष्णु प्रसाद कुंवरि, प्रताप कुंवरि बाई आदि कई नामों का उल्लेख मिलता है।

दरबारी एवं भक्तिकाव्य से कुछ हटकर सन्त कवयित्रियाँ भी उल्लेखनीय हैं। महानुभाव संप्रदाय के प्रवर्तक चक्रधर की शिष्या महदम्बा, मुक्ताबाई, सहजोबाई ('सहजप्रकाश') दयाबाई ('दयाबोध', 'विनयमालिका') आदि ।

हिन्दी में मीरा को छोड़कर किसी प्रभावी साहित्यकार औरत का स्वर 20 वीं सदी से पहले सुनाई नहीं देता। संपूर्ण अठारहवीं सदी में भी सन्नाटा ही रहा ।

1.2 आधुनिक हिन्दी स्त्री काव्यधारा (1857- अब तक)

रीतिकाल के अंतर्विरोधों तथा युगीन दबाओं से आधुनिक युग का जन्म हुआ है। सन् 1857 से हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल शुरू हो जाता है, पर भारत वर्ष के आधुनिक बनने की प्रक्रिया की शुरुआत एक शताब्दी पूर्व उसी समय से (सन् 1757) हो जाती है जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी की लड़ाई में हराया था। यद्यपि अंग्रेज़ों ने इस देश में नयी अर्थ व्यवस्था, औद्योगिकता, संचार-सुविधा, प्रेस आदि को अपने निजी स्वार्थों केलिए स्थापित किया फिर भी इससे इस देश का हित ही

हुआ । एक स्थिर व्यवस्था से छूटकर देश को नूतन गत्यात्मकता का अनुभव हुआ। परंपराएं टूटने लगीं। नए परिवेश में ऐतिहासिक मांग के फलस्वरूप लोग अपने को नए ढंग सं ढालने लगे। आधुनिक काल में जिस पुनर्जागरण का उल्लेख किया जाता है उसके मूल में भी ये बदली हुई परिस्थितियाँ ही थीं । मनुष्य के आधुनिक बनने की यात्रा में आधुनिक शिक्षा (अंग्रेज़ी शिक्षा), सुधारवादी संस्थाएँ, विज्ञान का आवीर्भाव, दर्शन, पत्र-पत्रिकाएँ आदि का योगदान सराहनीय है। जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की ललक, रूढ़िवाद से मुक्त होने की उत्कट आकांक्षा और नयी चेतना का स्पंदन दिखाई देता है। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा प्राप्त स्त्री ने स्वयं अपने और अपने परिदृश्य के बारे में सोचना शुरु किया। भारत में एक नये शिक्षित मध्यवर्ग का उदय हुआ, जिसने जड़भूत सामाजिक-राजनीतिक चेतना को जगाने का काम किया। साहित्य के संदर्भ में काव्य को राजदरबारों और सामंतों की चहारदीवारी से निकालकर जनता तक लाया जा रहा था, और खड़ीबोली हिन्दी को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का कार्य चल रहा था। भारतेन्दु-द्विवेदी मंडली का योगदान इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। खड़ीबोली हिन्दी भाषा में लिखित आधुनिक हिन्दी कविता के विकास का स्त्री संदर्भ (आधुनिक हिन्दी स्त्री काव्यधारा) कहाँ से शुरू होकर किस पड़ाव तक आ पहुँचा है इसका परिचय आगे विभिन्न शीर्षकों में दिया जा रहा है।

1.2.1 पूर्व छायावाद युगीन कवयित्रियाँ

पूर्व छायावाद युग (नव जागरण तथा पूर्व स्वच्छंदतावाद काल), जिसके अंतर्गत भारतेन्दु और द्विवेदी युग दोनों आते हैं। आधुनिक युग के नवजागरण का यह समय एक राजनीतिक, समाजिक, सांस्कृतिक जागरण का आयाम प्रदान कर रहा है। राजनीति एक नया आयाम है, जो पहली बार नवजागरण के साथ जुड़ा है। मध्ययुगीन नवजागरण किसी राजनीतिक विग्रह से प्रत्यक्ष रूप से नहीं लड़ता है। इसके विपरीत आधुनिक युगीन नवजागरण राजनीतिक सरोकारों से जुडता है और अंततः भारतीय स्वतंत्रता के निश्चित लक्ष्य की पूर्ति करता है।

पूर्व छायावाद युग का पहला चरण भारतेन्दु युग में दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई पडती हैं। प्रथम प्रवृत्ति मध्ययुगीन चेतना है, और द्वितीय प्रवृत्ति नवीन चेतना है। मध्ययुगीन चेतना में प्राचीन काव्य विषय और अभिव्यक्ति के पुराने स्वरूप अपनाए गए हैं। इस तरह दो प्रकार के मानसिक टकराहट स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। भारतेन्दु युगीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ थीं - राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, भक्ति भावना, श्रृंगारिकता, प्रकृति चित्रण आदि। इन्हें केन्द्र में रखकर कविता करनेवाले भारतेन्दु मंडली के अन्य कवि हैं - बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, जगमोहनसिंह, अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास आदि।

पूर्व छायावाद युग में बहुधा जिन प्रवृत्तियों का आगमन भारतेन्दु काल

में होता है द्विवेदी काल में वे पल्लवित और विकसित होती हैं। इस परिवर्तन युग के सबसे महान युग प्रवर्तक पुरुष एवं नायक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इस युग का कोई भी साहित्यिक आंदोलन गद्य अथवा पद्य का ऐसा नहीं जो कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इनसे प्रभावित न हुआ हो। द्विवेदी युग में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ 'खड़ीबोली हिन्दी कविता की भाषा बन गयी। भारतेन्दुकालीन साहित्यकार जहाँ भारत-दुर्दशा पर दुख प्रकट करके रह गये थे, वहाँ द्विवेदीकालीन कवि-मनीषियों ने देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ-साथ देशवासियों को स्वतंत्रताप्राप्ति की प्रेरणा भी दी - उन्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान का मार्ग भी दिखाया। सामान्य मानवता, नीति और आदर्श, हास्य-व्यंग्य काव्य, इतिवृत्तात्मकता आदि इस युग के काव्य की अन्य प्रमुख विशेषताएँ हैं।

द्विवेदी युगीन कवियों में नाथूराम शर्मा शंकर, श्रीधर पाठक, अयोद्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण', रामचरित उपाध्याय, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' मैथिली शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि की कविताओं में ये विशेषताएँ प्रमुख रूप से मुखर हुई हैं।

इन दोनों युगों के अंतर्गत किसी कवयित्री विशेष का उल्लेख इतिहास में नहीं पाया जाता। जबकि इस युग में कवयित्रियों के कई स्वर सुनाई पड़ते हैं। वह भी बदले हुए रचनाकेन्द्रों के साथ। मध्ययुग में जो स्त्रियाँ लिख रही थीं वे या तो रानियाँ थीं या राजपरिवार से, सभी शिक्षित थीं। सभी रानियाँ

(मीरा और ताज को छोड़कर) शांतिपूर्ण ढंग से लिख रही थी या तो भक्तिकाव्य या श्रृंगार काव्य। अक्सर दोनों मिले जुले थे। राजघरानों में कविता अभी-भी हो रही है। परंतु वह लगभग सूख गयी धारा है। कविता अब मध्यवर्ग से भी जुड़ने लगी है, और राष्ट्रीय स्वर उसका प्रधान स्वर है।

नयी धारा की प्रथम कवयित्री राजरानी देवी (1870 ई.) को मान सकते हैं। इनकी दो पुस्तकों का उल्लेख मिलता है - 'प्रमदा प्रमोद' और 'सती संयुक्ता'। इनकी प्राप्त कविताओं के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि कवयित्री का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों को जाग्रत करना है। संभवतः यह पहला अवसर है, जब किसी कवयित्री ने प्रत्यक्ष भाव से स्त्रियों का आह्वान किया है। स्पष्ट है कि नारी जागरण और स्वदेश जागरण एक साथ एक दूसरे के पर्याय बनकर महिला-लेखन में उगे हैं।

तोरन देवी शुक्ल 'लली' (सन् 1896) मूलतः राष्ट्रीय काव्यधारा की कवयित्री हैं। उन्हें 'जागृति' कविता संग्रह पर 'सेकसरिया पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। जिन दिनों हिन्दी साहित्य का स्त्री-कवि समाज प्रगतिहीन होकर प्रायः स्तब्ध सा खड़ा था, उस समय आपने हिन्दी साहित्य के रंगमंच को अपनी रचनाओं से सजाया। नवीन युग का स्त्री साहित्य आपकी ही कृतियों से प्रारंभ होता है। स्त्री समाज को साहित्य का संदेश सुना रही हैं वे। सरसता, सरलता और स्वाभाविकता इनके काव्य के सहज गुण हैं। राष्ट्रीय काव्यधारा के जितने भी अभिप्राय पहचाने गये, उनमें से लगभग

सभी का प्रयोग 'लली' जी ने किया है। पूर्वजों को स्मरण कर वीरों को प्रेरित किया है। राष्ट्रीय जागरण के साथ नारी-जागरण का जो अभियान चला, उसमें केवल गौरवगाथा नहीं है, बल्कि स्त्री पराधीनता में 'पर्दा' प्रथा के अंदर छटपटाते हुए प्राणों की करुण कथा भी है।

गुजराती बाई 'बुन्देलबाला' (1883-1909) इनका विवाह प्रसिद्ध लेखक लाला भगवानदीन के साथ हुआ। बुन्देलबाला की राष्ट्रीय भावना एक नये अंदाज़ से सामने आई है। उन्होंने अपना प्रतीक भावी कर्णधार को चुना है, और उसके माध्यम से मार्मिक रचनाएँ दी हैं। समूचे भक्तिकाव्य में 'बच्चा' उपेक्षित ही रहा है। बुन्देलबाला ने बच्चे से संवाद कायम करते हुए भारत वंदना की है।

गोपाल देवी (1883) बुन्देलबाला की समवय ही नहीं, कविता में भी समान रेखाएँ रखती हैं, खास बात यह कि उनकी कविता का क्षेत्र कर्मभूमि तक जाता है। 'गृहलक्ष्मी' नामक उपयोगिनी मासिक पत्रिका का प्रकाशन करके स्त्री-शिक्षा के प्रचार केलिए बहुत उद्योग किया। देवी जी में देशानुराग का भाव प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। देवियों में सबसे प्रथम आप ही के कार्यों में, स्त्रियों और बच्चों के क्षेत्र में देशभक्ति का भाव क्रियात्मक रूप से दिखलाई पड़ा। सामाजिक जागरूकता एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से न करके 'बालकथाओं' एवं 'पशुकथाओं' को चुना है। निश्चित रूप से उसका कथ्य गहरा है। कथाएँ पारंपरिक हैं।

इनके अतिरिक्त पूर्व छायावाद युगीन कवयित्रियों में कुछ और नाम भी उल्लेखनीय हैं। हेमंतकुमारी चौधरानी (1868), रमादेवी (1883), रामप्रिया (1883-1914) रणछोर कुंवरि (1889), राजदेवी (1892), रामेश्वरी नेहरू (1892), प्रियम्वदा देवी (1899) सत्यवती मलिक (1906), कमला चौधरी (1908) आदि इसी समय की कवयित्रियाँ हैं जिनकी ओर इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। अपने समय की गूँज इनकी कविताओं में भी भरपूर मात्रा में पायी जाती है।

1.2.2 छायावाद युगीन कवयित्रियाँ (1918-1936)

छायावादी काव्य प्रवृत्ति द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में जन्मी, जिसने नवीन शैली में कविता को नया स्वरूप प्रदान किया। छायावादी युग सन् 1920 से 1940 ई. तक प्रसारित है। छायावादी काव्य युगीन परिस्थितियों से प्रभावित था। यह युग राष्ट्रीय क्रांतिकारी युग था। सन् 1920 में गांधी जी का असहयोग आंदोलन चल रहा था।

छायावाद पर अंग्रेज़ी के स्वच्छंदतावाद का प्रभाव अवश्य है और इन दोनों में बहुत कुछ साम्य भी है, पर छायावाद केवल स्वच्छंदतावाद की अंधानुकृति मात्र नहीं है। छायावाद का उद्‌भव भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप हुआ। छायावाद की मूल चेतना औद्योगिक

युग से जन्मी व्यक्तिवादी चेतना है।

व्यक्तिवाद की प्रधानता, प्रकृति चित्रण, नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण, रहस्यवाद-अलौकिक प्रेम चित्रण, रहस्य भावना एवं स्वतंत्रता प्रेम, स्वच्छंदतावाद, वेदना और निराशा, मानवतावाद, आदर्शवाद, युग का प्रभाव, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली, गेयता आदि छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं। द्विवेदी-युग खड़ीबोली का स्थापत्य-काल था और छायावाद ललित काल हो गया।

छायावादी कवियों में प्रसाद, निराला, पंत और कवयित्री महादेवी वर्मा प्रमुख हैं। जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में स्वस्थ्य छायावाद के दर्शन होते हैं। विद्रोही कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की उक्तियों में स्वच्छंदतावाद के संकेत मिलते हैं। प्रकृति के कवि सुमित्रानंदन पंत में स्वस्थ, सुन्दर प्रकृति का संसार दिखाई देता है और विरह की कवयित्री महादेवी वर्मा में रहस्यवाद की प्रतिष्ठा मिलती है।

महादेवी वर्मा (1907-1987) का जन्म उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ। ये आरंभ में ब्रजभाषा में कविता लिखती थीं, बाद में खड़ीबोली में लिखने लगीं और शीघ्र ही इस क्षेत्र में इन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। ये एक कुशल चित्रकर्त्री भी थीं। महादेवी का काव्य रचना काल प्रधान रूप से सन् 1924 से 1942 तक है। छायावाद युग में इनके 'नीहार' (1930), 'रश्मि' (1932), 'नीरजा' (1935) और 'सान्ध्यगीत' 1936)

आदि काव्य संकलन प्रकाशित हुए। 'यामा' (1940) में 'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' के सभी गीतों का संग्रह है। इस संग्रह को आगे चलकर ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया। 'निहार' की भूमिका में 'हरिऔध' जी ने लिखा है, "थोडे समय में ही कतिपय छायावादी कवियों ने हिन्दी संसार में कीर्ति अर्जन की है और उनमें पर्याप्त भावुकता का विकास देखा गया है। उन्होंने अपने गहनपथ को सरल बनाया है और कोमलकांत पदावली पर अधिकार करके बड़ी भावमयी कविताएँ की हैं। उन्हीं में से एक श्रीमती महादेवी वर्मा, कवयित्री भी हैं।"[1] इनके काव्य को लेकर एक विचित्र उदासीनता दिखाई देती है। छायावाद के एक सीढ़ी ऊपर, यानी रहस्यवाद। महादेवी रहस्यवादी कवयित्री हैं, अर्थात् उनकी पीड़ा आध्यात्मिक है, इस मिट्टी की नहीं है। जब उनकी गद्य रचनाओं की बात की गयी तो सिद्धांत निकला, उनका काव्य रहस्यवादी है, गद्य यथार्थवादी। रहस्यवाद का ज़िक्र करते हुए हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि कबीर भी हिन्दी साहित्य के घोषित रहस्यवादी हैं, लेकिन उनके जैसा निचाट यथार्थबोध शायद किसी का नहीं है। सच तो यह है कि साहित्येतिहास में अभी महादेवी को खोजा ही नहीं गया है। क्योंकि उनके काव्य में स्त्री चेतना की आहट सुनायी देती है।

इस ऊहापोह का एक कारण तो यह भी है कि महादेवी जी की प्रारंभिक एवं कुछ बाद की रचनाएँ प्रकाशित ही नहीं हुई थीं। 'अग्निरेखा' महादेवी जी की मृत्यु के बाद प्रकाशित उनका अंतिम कविता संग्रह है, जो

---

1. हरिऔध - नीहार की भूमिका

सर्वथा एक नये काव्य लोक को उद्घाटित करता है। इनकी प्रारंभिक कविताएँ जो, 'प्रथम आयाम' शीर्षक से प्रकाशित हुई हैं, विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसी संग्रह में उनके अत्यंत सुन्दर एवं ओजस्वी देशगीत हैं जिनके विषय में संपादक की टिप्पणी है कि वे स्वतंत्रता आंदोलन के समय 'प्रभात फेरियों' में गाये जाते थे। स्वतंत्रता-संग्राम के आसपास रची गयी कविताओं में 'भारतमाता' की बहुरंगी छवियाँ मिलती हैं। राष्ट्रीय-चेतना कोई अलंकरण नहीं है, जिसे काव्य में बुना जा सके, वरन् कार्यक्षेत्र से जुड़ी एक अभिन्न प्रक्रिया है। महादेवी का कार्यक्षेत्र कर्म का जनतंत्र है जिसमें अबोध अशिक्षित बालक हैं, विधवाएँ हैं, बालिकाएँ हैं और है पीड़ा की अकथगाथा।

सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जैसी कवयित्रियों के आस-पास महिला रचनाकारों का एक पूरा संवर्ग अपनी उपस्थिति दर्ज कराने केलिए अभी भी प्रतीक्षारत है । महादेवी का रचनाकाल एक लंबी कालावधि तक फैला है, लेकिन उनकी समकालीन कवयित्रियाँ उनसे बहुलांश में प्रभावित नहीं हैं। खासतौर पर भाषा और शैली में तो बिलकुल नहीं। कुछ नाम उल्लेखनीय हैं।

पुरुषार्थवती (1854- 1931 ई.) जिनका असमय निधन हो गया। इनके संबंध में कहा गया है कि एक आश्चर्यमयी प्रतिभाशालिनी स्त्री कवि ऐसी सुन्दर, सरस और भावुकतापूर्ण कविताओं को लिखकर इहलोक सिधार भी चुकी और हम उनके नाम से भी परिचित न रहे, इस अक्षम्य दोष केलिए हमारी उदासीनता बहुत कुछ अंश में उत्तरदायी हो सकती है और वे

आलोचक भी जो अपने किसी विशेष गुट्ट के लेखक अथवा लेखिकाओं की प्रशंसा के नारे लगाते रहते हैं और पक्षपातहीन होकर वास्तविक योग्यता की खोज केलिए कभी लालायित नहीं रहते। पुरुषार्थवती के बहाने यहाँ हिन्दी-जगत् का एक सत्य स्वीकार किया गया है। इनकी रचनाओं में प्रकृति केलिए एक विशेष अनुरक्ति दिखाई पड़ती है। एक प्रकार का आत्मभाव मुखर हो उठा है जिसके बीच-बीच में राष्ट्रीय भावना गुंथी हुई है।

कानपुर में जन्मी रामकुमारी चौहान (1899) - ये 'निश्वास' काव्य संग्रह पर सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। कवयित्री का मूल स्वर वेदना का है। उनकी कामना भी वेदना से मुक्ति पाने की नहीं है।

होमवती देवी (1906) - बचपन में माता-पिता का स्वर्गवास और युवावस्था में पति का देहावसान ऐसी दुर्घटनाएँ हैं जिन्होंने कवयित्री को करुणाक्रांत बना दिया। 'उद्गार', 'निसर्ग' और 'अर्ध' काव्य संग्रहों के अतिरिक्त आपने कहानियाँ भी लिखी हैं।

राजेश्वरी देवी त्रिवेदी 'नलिनी' (1914) - इनकी थोड़ी सी कविताएँ उपलब्ध हैं, वे भी एक पारदर्शी वेदना से बौझिल हैं। वेदना उस युग के महिला लेखन की पहचान प्रतीत होती है, यद्यपि सभी ने उसका दार्शनिकीकरण नहीं किया है। इस वेदना के स्वर में भी राष्ट्रीय स्वर मिला हुआ है।

विद्यावती कोकिल (1914 ई) उन कवयित्रियों में से है जिन्होंने

कविता-लेखन के साथ-साथ मंच पर कविता-पाठ में भी प्रसिद्धि प्राप्त की। उनके कविता संग्रह के नाम हैं - 'अंकुरिता', 'माँ', 'सुहागिन', 'पुनर्मिलन', 'आरती'। कोमल अनुभूतियों में स्नेह, वात्सल्य प्रणय आदि उनकी कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं। डॉ. शिवकुमार मिश्र ने इनकी गणना निस्संकोच रूप में आधुनिक गीतकारों की प्रथम श्रेणी के अंतर्गत की है।

रामेश्वरी देवी 'चकोरी' (1916-1935) आत्मव्यंजना उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है, जिसमें रहस्य का कोई आवरण नहीं पड़ा है। जहाँ तक दीन दलितों की शक्ति बनने की बात है, रचनाएँ इसकी पुष्टी नहीं करतीं। चकोरी जी का एकमात्र काव्य-संग्रह 'किंजल्क' है। 1935 ई. में असामयिक मृत्यु ने और कुछ कर सकने का अवसर ही नहीं दिया।

सुमित्रा कुमारी सिन्हा (1914) - उनके रचना संसार में भी पर्याप्त विविधता है। 'विहाग', 'आशापर्व', 'पन्थिनी' और 'बोलों के देवता' उनके गीत संग्रहों के नाम हैं। 'अचल-सुहाग' में उनकी कहानियाँ संकलित हैं। प्रणय और प्रणयजन्य पीड़ा यहाँ भी कविता के केन्द्र में है। इनके बारे में भी कहा गया है कि ये हिन्दी की सबसे अधिक प्रगतिशील कवयित्री हैं। युग का हाहाकार इनके काव्य में स्वयं झंकृत होता सुनाई पड़ता है । ऐसा जान पड़ता है कि कवयित्री एक अटूट अतृप्ति लिए संसार के अंधकार में आशा की किरण खोज रही हैं। मीरा की अतृप्ति को सुमित्रा जी संसार में फिर दोराना चाहती हैं। शोषित-पीडित नारी की वेदना आप के काव्य में अत्यंत सुघटता के साथ अंकित मिलती है।

तारा पांडे (1915) श्रीमती तारा पाण्डेय के उल्लेखनीय कविता - संग्रह 'सीकर', 'शुक-विक' 'आभा', 'वेणुकी', 'अंतरंगिणी' हैं। वेदना उनकी काव्यधारा का भी मूल स्वर है। उनकी कविता में वेदना की ऐसी झंकार है जो प्राणों को स्पर्श करनेवाली है। अप्रत्यक्ष जगत् से उनका उतना नाता नहीं है, जितना प्रत्यक्ष जगत से। 'मैंने दुख अपनाया' उनके काव्य की मूल स्वर लहरी है। परवर्ती रचनाएँ संयत और परिणति तक पहुँची हुई प्रतीत होती है।

कुछ और नाम भी उल्लेखनीय हैं - रामेश्वरी देवी गोयल (1911), रत्नकुमारी देवी - 'काव्यतीर्थ' (1912), हीरादेवी चतुर्वेदी (1915), शकुंतला देवी खरे, (1917), राजकुमारी श्रीवास्तव (1920) विष्णु कुमारी श्रीवास्तव 'मंजु' (1903), रत्नकुंवरि देवी, लीलावती झंवर 'सत्य', रामप्यारी श्रीवास्तव, प्रेमप्यारी देवी, चंचल कुमारी आदि। ये सभी कवयित्रियाँ वे हैं जिनकी लेखन प्रक्रिया बहुत काल तक जारी नहीं रह सकी। कारण कुछ भी हो सकता है किन्तु जितनी कविताएँ लिखी हैं वे मूल्यांकन योग्य समझी जा सकती हैं।

महिला लेखन में सबसे बड़ी कठिनाई उसकी निरंतरता का न होना ही है। इन स्फुट रचनाओं में दो छोर स्पष्ट हैं, वैयक्तिक करुणा और राष्ट्रीय चेतना जिसमें स्त्री चेतना की अधिकांश तहें जुड़ी हुई हैं।

मध्ययुगीन कवयित्रियों से ये कविताएँ कई अर्थों में भिन्न हैं। बात सिर्फ 'मध्ययुगीन बोध' और 'आधुनिक बोध' की नहीं है। बात वर्ग-परिवर्तन

की है। समंती वर्ग के स्थान पर ये मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की स्त्रियाँ हैं। कविता इनकेलिए मात्र भक्ति का साधन नहीं है बल्कि वह कंधा है, जिस पर सिर रखकर वे आंसू बहा सकती है और बिना 'कृष्ण', 'वह' का नाम देते हुए हृदय की गूढ़ भावनाओं को व्यक्त कर सकती हैं। कविता ने उन्हें अभिव्यक्त करना ही नहीं सिखाया है बल्कि सलीके से अनुभव करना भी सिखाया है। यह पहला अवसर है जब लोकगीतों से बाहर निकलकर जगत को उन्होंने भौतिक ही नहीं राजनीतिक रूप में भी पहचाना है। उनका सीधा रिश्ता परिवार से इतर समाज से बना है। इससे भी बड़ी क्रांतिकारी बात घटित हुई है 'समूह' के रूप में स्त्री की पहचान और समूह की शक्ति के रूप में अपनी शक्ति की पहचान। इसने स्त्री के स्त्री से रिश्ते को ही नहीं कविता और स्त्री के रिश्ते को भी बदल दिया। वे अब कलम को कभी ढाल की तरह इस्तेमाल करती हैं कभी तलवार की तरह।

समाजिक स्थितियाँ अब भी बदली नहीं है। दो-एक नाम छोड़ दीजिए तो औपचारिक शिक्षा किसी के पास अधिक नहीं थी। ग्यारह वर्ष से लेकर अठारह वर्ष तक सभी के विवाह भी हुए। कुछ ने अपनी पढ़ाई विवाह के बाद भी ज़ारी रखी। विवाह को उन्होंने बाधा की तरह स्वीकार नहीं किया। कहीं-कहीं तो उसे सहयोग माना है। स्त्री को उसके संपूर्ण रूप में यदि कहीं अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है, तो इस युग में। कविता के साथ-साथ बाहरी दुनिया के द्वार उनकेलिए खुल गए। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वे एक व्यापक रचनात्मक संसार से जुडी हैं, स्वयं पत्रिकाएँ निकालीं भी। देशभक्ति की

भावना ने सुभद्रा कुमारी चौहान में एक रूप ग्रहण किया और महादेवी वर्मा में दूसरा। असल में महादेवीजी का मूल्यांकन अभी इस दृष्टि से किया ही नहीं गया है। जिस स्तर की शिक्षा उन्होंने प्राप्त की थी, चाहतीं तो वे किसी विश्वविद्यालय में सम्मानित पद प्राप्त कर सकती थीं। परंतु उस सुविधाजनक रास्ते को न अपनाकर उन्होंने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में अलख जगाया ।

आधुनिक युग में महिला-लेखन का एक और प्रक्षेपण है कवि-मंचों पर महिलाओं का प्रवेश। एक जीवंत और वाचिक परंपरा से जुड़ने के कारण उनके रचना संसार में व्यापकता तो आयी ही, उसने उनकी रचनाओं को विधागत विशिष्टता भी दी। उस समय 'मंच' रचना की ज़रूरत थी और उसे लेकर कवियों में विभाजन नहीं हुआ था। महादेवी वर्मा भी शुरु में इन सम्मेलनों में शिरकत किया करती थीं।

क्षेत्र विस्तार का एक दूसरा आयाम गद्य के क्षेत्र में पदार्पण के रूप में हुआ। आधुनिकता के साथ वैचारिक आग्रह ने कविता के साथ गद्य की ज़रूरत भी महसूस की ।

1.2.3. छायावादोत्तर कवयित्रियाँ

छायावादोत्तर स्त्री काव्य विश्लेषण के इस संदर्भ में इस तथ्य का अनावरण अनिवार्य है कि छायावादी काव्यधारा के समानांतर प्रवहमान एक काव्यधारा है 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा' जिसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद के बाद रेखांकित किया है। इस बात को ध्यान में रखकर इस

धारा की कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान, मात्र जिनके लिए साहित्येतिहास में एक छोटी-सी जगह मिली है, उनकी चर्चा आलोच्य युग के अंतर्गत किया जा रहा है।

लगभग तीन वर्षों के अंतराल मात्र से साहित्येतिहास के क्षितिज पर सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जिनके जन्म क्रमशः सन् 1904 प्रयाग (1904-1948) एवं 1907 फर्रूखाबाद में हुआ। राष्ट्रीय काव्यधारा की यदि किसी कवयित्री का नोटिस लिया गया तो वह सुभद्रा कुमारी चौहान है। सुभद्रा कुमारी चौहान की हर रंग की कविता में राष्ट्रीयता एक अनिवार्य बुनावट की तरह शामिल है। वह कविता कागज़ से कर्मक्षेत्र तक उतरती है। कविता के साथ उन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं। 'मुकुल' काव्य संग्रह और 'बिखरे मोती' कहानी संग्रह पर 'सेकसरिया पुरस्कार' प्राप्त कर चुकी हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता का सबसे बड़ा गुण उसकी सहजता एवं स्त्री चेतना है। उनका और उनकी कविता का हर चुनाव स्त्री के पक्ष में है, यद्यपि उसका गन्तव्य राष्ट्रप्रेम है। स्त्री जीवन के छोटे-छोटे पल किस प्रकार राष्ट्रीय स्फुरण में बदल जाते हैं, यह देखने की वस्तु है। सभी कवियों ने वीरों और महापुरुषों के स्तुति-गान किये हैं, परंतु कवयित्री ने चुना 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' जो एक नारी हैं, पत्नी हैं, रानी हैं, शासक हैं, वीर हैं, माँ हैं और अमर बलिदानी हैं। स्त्री की मुक्ति वे इसी रूप में देखती हैं। इसीलिए 'झाँसी की रानी' कविता कालजयी कविता बन सकी है। उन्होंने प्रेम

कविताएँ भी लिखी हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएँ कई अर्थों में विशिष्ट हैं।

यों तो श्रीमती चौहान का स्वरूप, वीरकाव्य के प्रणेता उन वीरों का रहा है। जिनके एक हाथ में कलम और एक हाथ में तलवार रहती थी। उद्‌बोधन का स्वर, जागरण का संदेश देता था तो कर्म की हुँकार स्वतंत्रता की देवी के चरणों में अपना सर्वस्व होम करने केलिए तत्पर रहती थी। इस ज्वलंत राष्ट्रीयता में नारी चेतना ने अनोखी प्रदीप्ति उत्पन्न कर दी है।

छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तर छायावाद युग में नूतन प्रवृत्तियों का उदय होता है। अतः आधुनिक हिन्दी कविता के प्रवृत्त्यात्मक विकास में छायावाद एक प्रकार के केन्द्र-बिन्दु का काम देता है। "छायावाद व्यक्तिवाद की कविता है जिसका आरंभ व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकार करने और करवाने से हुआ, किन्तु पर्यवसान संसार और व्यक्ति की स्थायी शत्रुता में हुआ।"[1] अर्थात् छायावादी काव्य में प्रत्यक्ष रूप से समाज का दर्शन नहीं होता। छायावाद के समाप्ति काल (1936) के आसपास सामाजिक चेतना को लेकर उस काव्य का निर्मति होना प्रारंभ हुआ जो समाज के सुख-दुख को अपना लक्ष्य मानता है। इस काव्य को प्रगतिवादी काव्य की संज्ञा दी गई। राजनीति का साम्यवाद (मार्क्सवाद) साहित्य का प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी काव्य के उद्‌भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ तो सहायक हुईं ही, साथ ही छायावाद का जीवन शून्य होती हुई व्यक्तिवादी

---

1. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 19

वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उसमें निहित थी।

प्रगतिवादी, जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ता है, जहाँ ईश्वर, आत्मा आदि की सत्ता को अस्वीकार करके भौतिक विधान को स्वीकृति मिलती है। इसमें अहिंसात्मक आदर्श-स्वीकार नहीं होता वरन् क्रांति से परिवर्तन का स्वप्न देखा जाता है। शोषकों के प्रतिविद्रोह, मानवतावाद, वेदना और निराशा, क्रांति की भावना, शोषित नारी का चित्रण सामाजिक जीवन के यथार्थ का चित्रण आदि इस काव्य को मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं जिन्हें आधार बनाकर कविता करनेवाले प्रमुख कवि थे नागार्जुन (1911), त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल (1911), रामविलास शर्मा, शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि। परंतु इस अवधि में किसी 'प्रगतिवादी' कवयित्री की सूचना हमारे पास नहीं है।

प्रगतिवाद के पश्चात साहित्य के क्षेत्र में जो दूसरी प्रतिक्रिया हुई वह 'प्रयोगवाद' कहलाई। प्रयोगवाद का आरंभ अज्ञेय के 'तारसप्तक' के सन् 1943 में प्रकाशन से माना जाता है। प्रयोग तो प्रत्येक युग में होते आए हैं, किन्तु 'प्रयोगवाद' नाम उन कविताओं केलिए रूढ़ हो गया है जो कुछ नये बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेषित करनेवाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरु-शुरू में 'तार सप्तक' के माध्यम से प्रकाशन जगत में आयी और जो प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती गयीं जिनका पर्यवसान नयी कविता में हो गया। प्रयोगवादी कविता को एक अर्थ में छायावाद और प्रगतिवाद

की प्रतिक्रिया स्वीकार किया है। प्रगतिवादी काव्यधारा की भाँति प्रयोगवादी काव्य का स्रोत भी छायावाद ही है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों ने अपने को उससे अलगाने का प्रयास किया है। प्रगतिवाद ने समाजवादी यथार्थवाद का अनुसरण किया और प्रयोगवादी ने व्यापक अर्थ में अस्तित्वमूलक यथार्थवाद का। प्रयोगवादी कवि व्यापक जन-जीवन के अंकन के फेर में न पड़कर अपने जिये हुए जीवन के ही विभिन्न दर्दों को अंकित करना पसंद करते हैं। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं। 'तारसप्तक' में सात कवियों की कविताओं को रखा गया है - अज्ञेय गजानन माधव 'मुक्तिबोध', गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द जैन, भारत भूषण अग्रवाल और रामविलास शर्मा। उसमें भी कोई कवयित्री शामिल नहीं है।

'दूसरा सप्तक' 1951 में प्रकाशित हुआ। इस समय तक कविता को नयी कविता कहा जाने लगा। 'नयी कविता' भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परंपरागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्पविधानों का अन्वेषण किया गया। भाषा का नया प्रयोग (प्रतीक, बिम्ब, फांतेसी, नए अप्रस्तुत, विसंगति, विडंबना और संप्रेषण की समस्या), वैयक्तिकताः आत्मकेन्द्रित और खंडित, परंपरा की नई व्याख्या, बौद्धिकता का आग्रह, आधुनिक संवेदनाः क्षणवाद और अजनबियत की नियति, यथार्थवादी नवीन मानवीय मूल्य, इहलौकिकता जिजीविषा और प्रगतिशील जीवनदृष्टि आदि नयी कविता की

प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। 'दूसरा सप्तक' में भवानी प्रसाद मिश्र, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवी सहाय और धर्मवीर भारती के अतिरिक्त शकुंत माथुर (1922) भी शामिल की गयी थीं।

'तीसरा सप्तक' (1959) में प्रयागनारायण त्रिपाठी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवरनारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के अतिरिक्त कीर्ति चौधरी (1935) थीं। तास्सप्तकों को लेकर काफी वाद-विवाद संवाद हुए परंतु शकुंन माथुर और कीर्ति चौधरी का कोई खास नोटिस नहीं लिया गया। ऐसा नहीं लगता कि इसे स्वयं कवयित्रियों ने भी 'अतिरिक्त' महत्व दिया हो। शकुंत माथुर अपने सप्तकीय वक्तव्य में लिखती हैं, "काव्य संबंधी अपने विचार प्रकट करने से पूर्व मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि यद्यपि मैंने पिछले दस वर्षों में ढेर सारी कविताएँ लिखी हैं, पर मैंने आरंभ से यह कभी नहीं सोचा कि मैं कवि हूँ, और मेरी रचनाएँ औरों केलिए भी कुछ महत्त्व रख सकती हैं। मैंने जब भी कुछ लिखा, उसे मन की एक मौज समझकर छोड़ दिया और मेरे पति ने भी उसे सदा हँसी में टाल दिया। इसके आतिरिक्त जब भी मैं कविता लिखती इनकी कोई न कोई रचना सामने आकर खड़ी हो जाती और मेरी कविता शर्मिन्दा हो जाती।"[1] और अंत में उन्होंने शुभाशंसा भी प्रकट की है।

उनकी अधिकांश कविताएँ 'क्षण' की कविताएँ हैं। क्षणों के 'मुड्स' की कविताएँ हैं, उन वैज्ञानिक विशेषज्ञों की तरह जो मौसम का पूर्वानुमान

1. शकुंत माथुर - दूसरा सप्तक (वक्तव्य), पृ. 44

कर बता देते हैं कि वर्षा आएगी, कब आएगी, तापमान बढ़ेगा या नीचे चला जाएगा। 'दूसरा सप्तक' के बाद 'चाँदनी चूनर' उनका पहला काव्य संग्रह है। 'अभी और कुछ', 'लहर नहीं टूटेगी' आदि उनके अन्य काव्य संग्रह हैं। इनकी कविताओं में सहज स्वाभाविकता है। ये कवयित्री के व्यक्तित्व को सामने रख देती हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ सुखी गृहस्थिन की अनुभूतियों को लेकर लिखी गयी हैं। भाषिक विशिष्टता में नवीनता विद्यमान है।

कीर्ति चौधरी 'तीसरा सप्तक' की कवयित्री हैं। वे कविता के मुकम्मिल माहौल में पैदा हुई थी। अपने सप्तकीय वक्तव्य में वे लिखती हैं - "कविता लिखना कैसे आया? यह मैं स्वयं ठीक नहीं जानती।............... पिता में विशिष्ट साहित्यिक रुचि है। माँ ने साहित्य क्षेत्र में प्रसिद्धि पायी है। बड़े भाई भी अपने को लेखक कहते हैं। ऐसे वातावरण में कविता मेरेलिए शायद एक अनिवार्यता बन गयी। घर, परिवार, वातावरण, संस्कार और वृत्ति सभी में साहित्य था। मैंने चाहा होता तो भी संभवतः मेरे पास कोई दूसरा उपाय न था।"[1] 'तीसरा सप्तक' में संग्रहीत कीर्ति चौधरी की कविताएँ उनकी कच्ची उम्र की कविताएँ हैं और उनमें आधुनिक मनोवृत्ति की अपेक्षा सहज रोमाण्टिक भावना अधिक है। 'खुले हुए आसमान के नीचे' इनका एकमात्र कविता संग्रह है जिसमें सप्तक की कविताएँ भी संकलित हैं। कीर्ति चौधरी प्रकृति से गहरे सरोकार रखनेवाली कवयित्री हैं। बोध और कलात्मक स्तर, दोनों ही स्तरों पर सप्तक की कविताओं से परवर्ती युग की कविताओं को

1. कीर्ति चौधरी - तीसरा सप्तक (वक्तव्य) पृ. 48

विलगाया जा सकता है। वे एक ही भावबोध की समानान्तरता की कविताएँ होने के साथ परिपक्व नज़र आती हैं।

डॉ. रमासिंह का नाम उल्लेखनीय है। 'समुद्रफेन' उनका कविता संग्रह है। यही उपलब्ध है। इतिहासकार केलिए यह स्थिति एक समस्या खड़ी कर देती है। जानते हुए भी कि लिखा जा रहा है, अच्छा लिखा जा रहा है, अपनी बात प्रमाणित करने के लिए उसके हाथ में ज़्यादा कुछ नहीं है। रमासिंह की कविताओं में एक प्रखर दृष्टि है परंतु कहीं भी उसने मतवाद का रूप नहीं लिया। इनकी कविताओं में एक खास तरह का चुटीलापन है, मुहावरे में हल्कि-सी शरारत है जो कभी-कभी व्यंग्य में भी बदल जाती है। कविता उसके भीतर गुज़रकर ही विस्तार पाती है।

किरण जैन की कविताएँ अपने परिवेश के साथ थोड़ा अधिक जुड़ी हैं। ये जुड़ाव कहीं-कहीं वस्तविक है, कहीं फैशन। 'स्वर परिवेश के' किरण जैन की कविताओं का पहला संग्रह है। महानगरीय जीवन की ऊब और कर्मरत ज़िन्दगी ने जैसी व्यस्तता दी है, वैसे ही तनाव भी। परंतु कवयित्री ने इन सबको अपनी निजी ज़िन्दगी के आईने में अधिक देखा है।

इसी श्रेणी में आनेवाली कवयित्री हैं कांता। 'जो कुछ भी देखती हूँ', 'समयातीत' इनके कविता संकलन हैं। वे वर्षों तक 'कल्पना' के संपादक मंडल में रही है। सीमित भावबोध और अपेक्षाकृत एकरस कथ्य के बावजूद, शिल्प की कुछ एक नयी भंगिमाएँ नये स्रोत को उद्घाटित करती हैं। छोटी कविताओं

का सीमित और सफल निर्वाह कवयित्री की विशेषता है।

लगभग 'नयी कविता' की समयावधि में ही लिखना शुरू किया था इन्दु जैन और अमृता भारती ने। लेकिन दोनों के दो भिन्न तरह के कविता संसार हैं। अमृता भारती के अब तक चार कविता-संग्रह देखने में आये हैं - 'मैं तट पर हूँ' (1971), 'मिट्‌टी पर साथ-साथ' (1976), 'आज, कल या सौ बरस बाद' (1975) और 'मैंने नहीं लिखी कविता' (1978)। 'आज, कल या सौ बरस बाद' अमृता भारती की एक लंबी कविता है, जिसमें अनेक छोटी-छोटी आवृत्तियाँ मिलकर एक श्रृंखला का निर्माण करती हैं। कविता आत्मान्वेषण से शुरु होती है और वैयक्तिक-सामाजिक दृष्टियों को फैलाती हुई चलती है। विद्रोह और संघर्ष की वैयक्तिक परिकल्पना में पहला तीव्रतम अनुभूत बिन्दु यातना का ही है। अमृता भारती का अपना अलग व्यक्तित्व है। खासतौर से एक ऐसे समय में जो अकविता का समय कहा जाता है और अपने उग्र मुहावरे के कारण ही पहचाना जाता है। कविता के इस स्वतंत्र व्यक्तित्व को गढ़ने में अमृता भारती की रचनात्मक भाषा की बड़ी हिस्सेदारी है।

इंदु जैन का रचनाकाल नयी कविता से प्रारंभ होकर समकालीन कविता तक फैला है। 'चौसठ कविताएँ' (1964) उनका पहला कविता संग्रह है। उनका एक और संग्रह उपलब्ध है - 'सबूत क्यों चाहिए'। इसमें उन्होंने अपनी अलग ही कथन शैली विकसित की है। स्त्री की तरह लिखना

तो नैसर्गिक कहा जाएगा किन्तु इन्दु जैन ने कुछ कविताओं में पुरुष की तरह भी कहा है।

सन् 1979 में 'चौथा सप्तक' प्रकाशित हुआ। इसमें अवधेश कुमार, राजकुमार कुंभज, स्वदेश भारती, नंद किशोर आचार्य, श्रीराम वर्मा, राजेन्द्र किशोर के साथ सुमन राजे की कविताएँ भी संकलित हैं। 'चौथा सप्तक' में अपनी रचना-प्रक्रिया पर टिप्पणी करते हुए सुमन राजे लिखती हैं - "जो जीवन हमें जीने केलिए मिला है, उसकी अनिवार्य नियति है - निरंतर चुभती हुई जूते की कील। हर कदम उस जूते को और जर्जर करता है और जख्म को गहराता जाता है, लेकिन चलना ही तो हमारा अस्तित्व है। पैरों और पैरों में कोई भेद नहीं होता इसीलिए सबके जख्म भी एक होते हैं। उन जख्मों के आस-पास पकती और फूटती रहती है कविता।"[1]

'चौथा सप्तक' के बाद सुमन राजे ने कविता की ज़मीन पर एक लंबी यात्रा की है। 'सपना और लाशघर', 'उगे हुए हाथों के जंगल', 'यात्रादंश', 'एरका' और इक्कीसवीं सदी का 'गीत' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। किसी भी कवि केलिए यह महत्वपूर्ण बात है कि वह कविता की निरंतरता को बनाये रखे और अपनी पहचान भी बनाये जो यहाँ सुमन राजे के संदर्भ में सार्थक है। उनकी पहचान सप्तक के कवियों के मध्य भी है और समकालीन कवियों के साथ भी।

सुमन राजे के रचना संसार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने

1. सुमन राजे - चौथा सप्तक, (वक्तव्य), पृ. 155

कहीं भी अपने को दोहराया नहीं है। 'उगे हुए हाथों के जंगल' में महानगरीय बोध गहराता है। 'यात्रादंश' में वे इतिहास और संस्कृति की विरूपता और अमानवीय अंतर्विरोधों को सिलसिलेवार सजाती हैं, अनेक सवाल उठानेवाले अंधेरे को सावधानी से देखती हैं और संवेदना के स्तर पर विकल्प खोजने के प्रयास करती हैं। 'एरका' कवयित्री के महाकाव्यात्मक बोध की रचना है। महाभारत कालीन संदर्भों पर लिखी हुई यह प्रलंब कविता सर्वथा नये मिथकों का प्रयोग करते हुए अर्थ का अतिक्रमण करती है। चारवाक्, शिखण्डि, उतंकमेघ और बालखिल्यादि जैसे चरित्र-रूपक वर्तमान के प्रकाश में नये रूपाकार ग्रहण करते हैं। दो मूल विशेषताएँ सुमन राजे को समकालीन कवयित्रियों से अलग करती हैं - एक तो उनका इतिहास बोध जो उनकी रचना को जटिल बनाता है और दूसरा लोकबोध जो उनकी भाषा को रचनात्मक बनाता है।

लगभग इसी रचना काल में कुछ नाम और उल्लेखनीय हैं। स्नेहमयी चौधरी - इनको कविता पारिवारिक विरासत में मिली है, कीर्ति चौधरी की तरह। 'पूरा गलत पाठ', 'चौतरफा लड़ाई', 'एकाकी दोनों' (1966) आदि उनके काव्य संकलन हैं। इनकी कविताओं में पुरुष के प्रति मात्र गिले-शिकवे नहीं, नारी जाति की तह-दर-तह जमी सदियों पुरानी चीखों की दबी महीन ध्वनियाँ हैं, जो कहीं मुखर तो कहीं सीधे ढंग से, तो कहीं संकेतों-व्यंजनाओं में व्यक्त है। सामान्यतः स्नेहमयी चौधरी का शिल्प सपाट बयानी का है और लगभग तनावहीन है।

इस पूरी काव्य-धारा के समानांतर 'किसिम-किसिम की कविता' का दौर चलता रहा है जिनमें 'अकविता' का नाम भी लिया जाता है। वस्तुतः यह विकृति का काव्य है तथापि हिन्दी की व्यावसायिक पत्रिकाओं के बल पर इसने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। अकविता मनुष्य की गोपन करने की प्रवृत्ति को समाप्त कर देना चाहती है। अकविता के भाव वैसे ही पुराने हैं, व्यक्त करनेवालों की शैली मात्र में परिवर्तन हुआ है। सन् 1962 में नयी कविता की रूढियों, परंपराओं और रूमानियत को मिटाने केलिए डॉ. श्याम परमार ने अकविता काव्यांदोलन की शुरुआत की। उन्होंने अकविता को निषेध अर्थ में नहीं माना।

भारतीय संविधान में व्यक्ति-स्वातंत्र्य और उसके दायित्व को रेखांकित किया गया। पर व्यक्ति स्वातंत्र्य भ्रष्टाचार का दूसरा नम हो गया। वर्तमान लोकतंत्र अपनी विसंगतियों में प्रतिदिन धुंधलके की ओर बढ़ता रहा। पूँजीवादी और लोकतंत्र की साठगाँठ के कारण मनुष्य की रही-सही आशा भी क्षीण हो गई। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया वर्ग-भेद, जाति-भेद, भाई-भतीजावाद का बाज़ार गरमाता गया और राष्ट्रीय चरित्र गिरावट की सीमा पार कर गया। फलस्वरूप स्वतंत्रता के पाले हुए सपने का मोहबन्ध टूट गया। ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी के पास दो विकल्प थे - एक तो यह कि वह व्यवस्था में अपने को ढाल ले, दूसरा यह कि बदलाव केलिए संघर्षरत हो। व्यवस्था में अपने को ढाल लेने पर बुद्धिजीवी बुद्धिजीवी नहीं रह जाता।

अतः बदलाव ही एकमात्र विकल्प बचता है। इस बदलाव के प्रति दो दृष्टिकोण दिखाई पड़ते हैं - हताशा की नियति और बदलाव की गत्यात्मकता। इस दशक की मूल प्रवृत्तियाँ ये ही हैं।

कविता के क्षेत्र में अकविता ने सेक्स-अनुभूतियों की झिझक और झेंप को समाप्त कर दिया। आज़ादी के बाद रामराज्य और प्रजातंत्र का जो मिथ गढ़ा गया था वह ध्वस्त हो गया। समाजवादी चिन्तन से आम आदमी को समता-समानता, न्याय आदि का दिखाया गया सपना टूटा। सपनों का टूटना युवा-रचनाकारों केलिए मार्मिक पीड़ा का कारण बना। हिन्दी कविता में विद्रोह का यह असंयमित रूप मुख्यतः सन् 60-70 के बीच अपनी पराकाष्ठा पर था, जो रचनात्मक न होकर ध्वंसात्मक था, जिसके कारण कोई मूल्य स्थापित न हो सका।

अकविता के इस क्षण स्थायी आंदोलन में श्याम परमार, राजकमल चौधरी, मुद्राराक्षस, जगदीश चतुर्वेदी, गंगा प्रसाद विमल, घूमिल, अजित कुमार आदि कवियों के साथ इतिहास में इतना अवश्य बताया गया है कि इस आंदोलन में कवयित्रियाँ भी आती हैं परंतु किसी के नाम का उल्लेख भी नहीं है। यद्यपि यह आंदोलन स्वयं भी दीर्घजीवि नहीं रहा, लेकिन उसके प्रभाव के दायरे में कवयित्रियों के दो नाम किये जा सकते हैं - मोना गुलाटी और मणिका मोहिनी। ‘महाभिनिष्क्रमण’ मोना गुलाटी के काव्य संग्रह का नाम है। मणिका मोहिनी की अकविता दौर की कविताएं सन् 1992-93 में

संगृहीत हुईं। उनके काव्य संग्रह हैं - 'प्रेम प्रहार', 'मेरा मरना' और 'कठघरे में।'

निषेध, विध्वंस, उग्र-विद्रोह, मारणेच्छा और बेहद्दी मैदान का खुलापन अकविता मात्र की विशेषताएँ हैं और वे अपनी पूरी शक्ति और सीमाओं के साथ दोनों कवयित्रियों में पायी जाती है।

1.2.4 समकालीन कवयित्रियाँ

'समकालीन' शब्द को लेकर विभिन्न तर्क बरकरार हैं। यह एक ओर समय विशेष को सूचित करता है तो दूसरी ओर अपने समय के साथ के सरोकार को। जिस समय की चर्चा हम करते हैं उस समय के सब के सब समकालीन यानी कि समसामयिक है। समकालीन वह भी है जो समय सीमा को पार करके हर समय के साथ चलने की क्षमता रखनेवाला है। अर्थात् क्लासिक। लेकिन 'समकालीनता' एक जीवन दृष्टि है जिसका मूल स्वर प्रतिरोध है। समकालीन साहित्य में समकालीनता का मतलब अपने समय की असंगतियों को समझना और उस समझ के साथ ही उसके प्रति प्रतिरोध जाहिर करना है। समकालीनता को समझने केलिए सबसे पहले आधुनिकता को पहचानना ज़रूरी है।

आधुनिकता एक मानसिकता है। वह मनुष्य के आधुनिक बनने के परिणामस्वरूप उत्पन्न एक विशाल मानसिकता है जिसमें अंधविश्वासों, रूढ़ियों, जड़ परंपराओं और प्रतिगामी तत्त्वों के खिलाफ का सख्त विद्रोह

वर्तमान है। आधुनिक, आधुनिकता और समकालीनता मानवीयता के विकास क्रम की सीढ़ियाँ हैं।

'आधुनिक' 'मध्यकालीन' से अलग होने की सूचना देता है। बच्चन सिंह के शब्दों में "'आधुनिक' वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगीकरण का परिणाम है जब कि 'आधुनिकता' औद्योगीकरण की अतिशयता, महानगरीय एकरसता, दो महायुद्धों की विभीषिका का फल है। वस्तुतः नवीन ज्ञान-विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न विषम मानवीय स्थितियों के नये, गैर-रोमैंटिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम 'आधुनिकता' है।"[1] आधुनिकता एक मानसिकता है जिसमें प्रश्न चिह्नों की निरंतरता है। आधुनिकता आधुनिक मनुष्य में ही निहित जड़ विहीन आधुनिक मनुष्य तथा जडोंवाले पुराने मनुष्य के बीच का संघर्ष है।

असल में हिन्दी साहित्य में आधुनिक बोध यानी कि आधुनिकता की सशक्त अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में दिखाई देती है। यहाँ आधुनिकता की दो धाराएँ दिखाई देती हैं। एक पाश्चात्य अस्तित्ववाद से प्रभावित आधुनिकता है तो दूसरी धारा सामाजिक यथार्थ से प्रभावित आधुनिकता।

आधुनिकता में वैज्ञानिकता और उसकी उपज औद्योगीकरण से ईश्वर और प्रकृति से मानव अलग हो गया। अर्थात् आधुनिकता मानव केन्द्रित थी। व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं अस्तित्व केलिए भटकनेवाले साहित्यकार हैं आधुनिकता के साहित्यकार। समकालीनता में यह केन्द्रीयता टूट गयी। आधुनिकता

1. बच्चन सिंह - आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 37

सत्ता, विचार आदि हमारे ऊपर लाद देती थी। अन्यों को हाशिए पर डाला गया । अन्य से तात्पर्य है अल्पसंख्यक, पिछड़े लोग, स्त्री, दलित, प्रकृति आदि। अर्थात् समकालीनता परंपरागत विविधता को बनाये रखना चाहती है। इसकेलिए उत्तर-संरचनात्मक या देरिदा के विखंडनवाद की रणनीति अपनाई जाती है। समकालीन साहित्य में स्त्री जीवन, दलित जीवन, लोकजीवन, आदिवासी जीवन, पारिस्थितिक सजगता जैसी कई कई प्रवृत्तियों के साथ संघर्ष करते हुए अपने सामाजिक सरोकार को प्रमाणित करनेवाला साहित्य है । यह साहित्य अपने समय के यथार्थ का अनावरण करता है साथ ही उन मानव विरोधी यथार्थों के खिलाफ प्रतिरोध ज़ाहिर करता है जो मनुष्य को मानवोचित जीवन जीने के अधिकार से वंचित रखता है। समकालीनता के निर्माण में समकालीन परिवेश की भूमिका बड़ी है।

आज हम विश्व अर्थ व्यवस्था का अंग बन रहे हैं, जहाँ बाज़ार की शक्तियाँ, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्वबैंक और विश्वव्यापार संगठन इसका नियमन और संचालन करते हैं। इनके कर्ज से दबे देश इनकी शर्तों को मानने केलिए विवश हो जाते हैं। आज सभी चीज़ें बिकाऊ हो गयी हैं - हमारे गांव, खेत-खालिहान, पानी सब। यहाँ तक कि हमने अपनी संवेदनाओं और कल्पनाओं की भी बिक्री की। इससे भाषा और संस्कृति पर गहरी चोट पड़ी। प्रकृति का भी संतुलन नष्ट हो गया। आज की सबसे बड़ी चालक शक्ति भूमंडलीकरण है।

भूमंडलीकरण का गहरा असर समकालीन साहित्यिक क्षेत्र में भी पड़ा। इस पूंजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं के प्रतिरोध करने और उसके गुणनफल को संवर्द्धित करने का कार्य भी समकालीन साहित्य कर रहा है। समकालीनता की जो सोच है उसके निर्माण में भूमंडलीकरण की ही मुख्य भूमिका है। इसकी वजह यह है कि भूमंडलीकरण मूलतः एक राजनीति है। आज उसका उपयोग विकास के नाम पर विकासशील एवं गरीब देशों के शोषण से जुड़ा हुआ है। भूमंडलीकरण से भारत के संदर्भ में रोज़गार के अवसर, स्त्री और दलित की पराधीनता का निराकरण आदि कुछ सकारात्मक विकास हुआ है तो भी भूमंडलीकरण कितना मानवीय बन पाएगा यह भविष्य ही बता पाएगा। इसलिए समकालीन साहित्य इसे संदेह की दृष्टि से देखता है।

समकालीन कविता सचमुच अपने समय के यथार्थों की सही समझ हैं। वर्तमान समाज के बहुआयामी यथार्थ समकालीन कविता में अनावृत हो उठे हैं। उनमें प्रमुख हैं नव औपनिवेशिक स्थितियाँ, विस्थापितों का यथार्थ, स्त्री विमर्श दलित विमर्श आदि। इन विषयों को लेकर जितना कवि लोग लिख रहे हैं उतना ही या उसके मुकाबले कवयित्रियाँ भी लिख रही हैं। कवियों में लीलाधर जगूड़ी, अशोक वाजपेयी, विनोदकुमार शुक्ल, कुमार विकल, चन्द्रकांत देवताले, बलदेव वंशी, विनय, ज्ञानेंद्रपति, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी। आलोक धन्वा, उदयप्रकाश, मंगलेश डबराल, पवन करण, राजेश जोशी, अरुण कमल आदि।

कवयित्रियों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। नौवें दशक में कवयित्रियों की एक लंबी कतार उभरी है जो दो तरह से ताजगी का एहसास कराती है। इससे पहले की कविताएँ स्त्री के स्वर में लिखी गयी थी परंतु अब वे 'स्त्रीवाद' के तहत अधिक तल्खी और आक्रोश के साथ लिखी जा रही है। उनके पीछे विचारधारा का पुख्ता आधार भी है। कवयित्रियों में एक सजग शिल्प उभरा है और वे पिछली पीढ़ी से अधिक प्रचार-प्रसार के क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। कवयित्रियों में प्रमुख हैं-

गगन गिल- इन्होंने अपनी कविता की शुरुआत 'एक दिन लौटेगी लड़की' के साथ की थी। शहर की मध्यवर्गीय लड़कियाँ उनकी कविता में आवाजाही कर रही थीं। 'अंधेरे में बुद्ध' की कविताएँ व्यक्तिवाद की तरफ लौटती हुई रचनाएँ हैं। 'यह आकांक्षा समय नहीं' में उसी का विस्तार है। इसमें नयापन यही है कि 'नारीवाद' के चलते जहाँ 'प्रेम संबंध' संघर्ष और ओछेपन की गंध देते हैं, वहाँ गगन गिल प्रेम को पूरी संलग्नता और तन्मयता के साथ जी लेना चाहती हैं। अनामिका- 'बीजाक्षर', 'समय के शहर में' 'अनुष्टुप', 'खुरदुरी हथेलियाँ' आदि इनके काव्य संग्रह हैं। इनकी कविताओं में नारी की आर्थिक समस्याओं एवं सामाजिक पक्ष का विस्तृत विवेचन हुआ है। साथ ही समाज व्यवस्था में नारी की स्थिति को देखकर आक्रोश भी व्यक्त किया गया है।

कात्यायनी-'सातभाइयों के बीच चंपा', 'इस पौरुषपूर्ण समय में', 'जादू नहीं कविता' आदि इनके काव्यसंग्रह हैं। इनकी कविताओं की

पृष्ठभूमि राजनीतिक सामाजिक संघर्ष की है। इनकी अधिकांश कविताएं बयानबाजी पर निर्भर हैं, जिसमें कथावाचक का संपूर्ण जगत् प्रतिपक्ष के रूप में होता है।

नीलेश रघुवंशी - 'घर निवासी' उनका प्रमुख काव्य संग्रह है। इनकी कविताओं में प्रेम को भावनात्मक स्तर में अभिव्यक्ति मिली है। इन्होंने प्रेम को एक मधुर, मोहक भावना माना है। आर्थिक समस्या से जूझती स्त्री का चित्रण इनकी कविताओं में है। इनकी कविताओं का धार्मिक आयाम भी है।

प्रभा खेतान - 'अपरिचित उजाले' इनका काव्य संग्रह है। समाज में नारी की स्थिति, परिवार में पुत्री, बहन एवं माँ के रूप का विविध आयामी चित्रण किया है। धार्मिक विचारों को लेकर उनकी दृष्टि अधुनातन है।

सविता सिंह - 'अपने जैसा जीवन', 'नींद थी और राथ थी' इनके काव्य संग्रह हैं। इनकी कविताओं में भी प्रेम की अभिव्यक्ति है। इनके काव्य संग्रह की अधिकांश कविताएँ नारी जीवन की विवशता पर आधारित है।

निर्मला गर्ग - 'कबाड़ी का तराजू' (2000) काव्य संग्रह। पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष की तुलना में प्रकृति के साथ अधिक जुड़ी हुई स्त्री का चित्रण इनकी कविताओं की विशेषता है।

सुशीला टाकभौरे -'स्वाति बूँद और खारे मोती', हमारे हिस्से का सूरज', 'तुमने उसे कब पहचाना', 'यह तुम भी जानो' आदि उनके काव्य

संग्रह हैं। कवयित्री स्त्रियों की अस्मिता के साथ-साथ दलितों के जीवन की विडम्बनाओं पर भी लिखती हैं। वे दलित चेतना और नारी चेतना दोनों पर लिखती हैं। इनकी रचनाओं में गैर समझौतावादी रुख प्रखर है। निर्मला पुतुल - 'अपने घर की तलाश में', 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' इनके काव्य संग्रह हैं। इनकी कविताएँ आदिवासी समाज और आदिवासी स्त्री पर केन्द्रित हैं।

ऐसी और भी अनेक कवयित्रियाँ हैं जिनके नाम गिनाए जा सकते हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य में नारी मुक्ति, नारी चेतना, नारी अस्मिता को ही एक दिशा नहीं दी बल्कि एक व्यापक आयाम को छुआ है।

इनमें ममता कालिया (खांटी घरेलू औरत), सविता सिंह (अपने जैसा जीवन), अर्चना वर्मा (कुछ दूर तक), रमणिका गुप्ता (भीड़ सतर में चलने लगी है, प्रतिनिधि कविताएँ), ज्योति चावला (माँ का जवान चेहरा), अनीता वर्मा (रोश्नी के रास्ते पर) चंपा वैद (स्वप्न में घर), रजनी तिलक (हवा सी बेचैन युवतियाँ), सरिता बडाइक (नन्हे सपनों का सुख) आदि प्रमुख हैं।

इस तरह समकालीन संदर्भ 'नारी लेखन की दृष्टि' से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

निष्कर्ष

अब तक हिन्दी में स्त्री-लेखन का लंबा तथा व्यापक इतिहास नहीं था। परंतु अब है। भारत में आधुनिक युगीन नवजागरण आज़ादी की लड़ाई

के साथ स्त्री-जागरण की लड़ाई भी लड़ रहा था। इसमें महिलाएँ पृथक नहीं थी। यह एक सामान्य सूत्र है कि भारतीय इतिहास के प्रवाह में जब-जब रिनेसां घटित होते हैं, तब-तब सामाजिक सतह में भारी फेर-बदल होता है। समाज के कमतर समझे जानेवाले वर्ग और स्त्री एक उर्वर धरती की तरह विस्तारित होते हैं। बौद्ध - जैन युग में भी यह घटित हुआ था और मध्ययुगीन नवजागरण में भी ये स्थितियाँ बनीं-संघटित हुई यही कारण है कि इन युगों में स्त्री लेखन हुआ भी संकलित भी हुआ और मूल्यांकित भी ।

हिन्दी का स्त्री काव्य वैविध्यपूर्ण रहा है। मध्यकाल की ज़्यादातर लेखिकाएँ अनौपचारिक, घरेलू और भक्ति के माहौल में लिखती रही हैं। आधुनि काल की लेखिकाओं की कविताओं पर सामाजिक, राजनीतिक प्रक्रियाओं, आंदोलनों को गहरी छाप मिलती है। मध्यकाल की स्त्री कविता में धार्मिकता और भक्ति के आवरण में स्त्री चेतना की जंग लड़ी गई है। इससे चेतना और चिन्ता के अलग-अलग क्षेत्र सामने आते है किन्तु स्त्री की वास्तविक अवस्था में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण कथा और राम कता के विषयों पर ही मध्यकालीन स्त्री कविता लिखी गई। लेखिकाएँ कृष्ण के बहाने पुंसवादी सत्ता को चुनौती देना चाहती हैं। किन्तु आदर्श पुरुष के रूप में कृष्ण को ही चाहती हैं। वे कृष्ण के देवता रूप को अस्वीकार करती हैं। वे यह भी रेखांकित करती हैं कि मध्यकाल में स्त्रियाँ अपमानित हो रही थीं। औरत के आहत मन और अपमान का व्यापक रूप में चित्रण किया गया है। इस असंतुलन के कारण वे बार-बार धर्म की शरण में जाती हैं। मध्यकालीन कवयित्रियाँ अपने घर नहीं लौटतीं।

आधुनिक स्त्री कविता इससे भिन्न है। आधुनिक स्त्री कविता में स्त्री, ईश्वर का पुनर्निर्माण नहीं करती और न उसे ठुकराती है, बल्कि उसकी मूल चिन्ता यह है कि स्त्री की निष्क्रिय छवि को कैसे तोड़ा जाय। आधुनिक स्त्री काव्य में सार्वजनिक विषयों का प्रवेश ईश्वर की सत्ता को अपदस्थ करता है। ईश्वर की सत्ता पुंसवादी सत्ता है। ईश्वर का कविता से छूट जाना स्त्री को अपनी अस्मिता और सामाजिक अधिकार प्राप्त करने में बड़ी मदद करता है।

आधुनिक स्त्री काव्य में सामाजिक, राजनीतिक, निजी, प्रकृति, पारिवारिक, लिंग आदि के सवालों पर व्यापक पैमाने पर कविता लिखी गई। इसमें स्त्री के नए-पुराने रूपों का द्वन्द्व है। नए के प्रति आग्रह ज़्यादा है। स्त्री की दुविधा यह है कि वह पीछे मुड़कर देखे या आगे की ओर देखे। वह क्या देखे और क्या न देखे, वह क्या सुने और क्या न सुने। सामाजिक प्रथाएँ और बंधन स्त्री को नए की ओर जाने से रोक रहे थे और भविष्य का कोई नया संस्कार उसे सूझ नहीं रहा था। स्त्री स्थायी युद्ध की अवस्था में थी। स्त्री कविता अनुभूति और विचारधारा के अद्‌भुत मिलन की कविता है।

❖ ❖ ❖

दूसरा अध्याय

पूर्व छायावाद युगीन स्त्री-काव्यधारा

छायावाद के पहले उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों का समय आधुनिक हिन्दी काव्य केलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस समय खड़ीबोली का काव्यभाषा के रूप में उपयोग बड़ी तेज़ी और विश्वास के साथ होने लगा था। यह समय विचार, भाव और भाषा के संघर्ष का रहा । रीतिकालीन कवियों का व्यक्तिवादी भोगमिश्रित अकर्मण्य राज्याश्रित साहित्य, जीवन के नये जागरण को गति, विश्वास और शक्ति देने में असफल था। सन् 1857 ई. की क्रांति के बाद जब भारतवर्ष ब्रिटीश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया, तब अंग्रेज़ों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। इस देश के लोग भी नये संदर्भ में कुछ नया सोचने और करने केलिए बाध्य हुए। साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुःख के साथ पहली बार जुड़ा। साहित्य अपने नवीन पर्यावरण से जुड़कर मध्यकालीन प्रवृत्तियों से पृथक हो गया। अपने युग की संवेदनाओं को आत्मसाथ करते हुए जितने कविगण भारतेन्दु और द्विवेदी युग में हुए उनका नाम साहित्य के इतिहास में दर्ज किया गया है। इस समयावधि में जो कवयित्रियाँ हिन्दी काव्य क्षेत्र में कार्यरत थीं उनके प्रति इतिहास ने उपेक्षा दिखाई है। इन कवयित्रियों में कुछ नाम हैं- राजरानी देवी, तोरन देवी शुक्ल 'लली', गुजराती बाई 'बुंदेलबाला', गोपालदेवी, हेमंतकुमारी चौधरानी, रमदेवी, राजदेवी, रामेश्वरीनेहरू रणछोर कुंवरि, प्रियंवदा देवी, सत्यवती मलिक, कमला चौधरी आदि। प्राप्त कविताओं के आधार पर इन कवयित्रियों की कविताओं का विश्लेषण इस अध्याय के तहत किया जा रहा है। कविताओं के अध्ययन के दौरान कुछ सामान्य

प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आई हैं। यही इस अध्याय के मूल में है।

2.1 देशप्रेम की भावना

आलोच्य युग में जन चेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित थी। आधुनिक काल में मुसलमानों के प्रति जो विरोधी स्वर था वह अंग्रेज़ी शासन में धीमा पड़ गया। जबकि अंग्रेज़ों के विरुद्ध तीव्र हो गया। मुसलमान एवं हिन्दु एक हो गए और इस भेद को विस्मृत कर अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ कार्य करने लगे। इस काल में हिन्दु और मुसलमान दोनों जातियाँ शासित बन जाती है और अंग्रेज़ शासक हो जाते हैं। आधुनिक काल के प्रारंभिक हिन्दी कवियों ने अंग्रेज़ों के विरोध में आवाज़ उठाते हुए उन राष्ट्रीयता के भावों का पोषण किया है, जिसमें हिन्दु और मुसलमान दोनों केलिए समान स्थान है। इस युग के प्रायः सभी कवियों ने देशभक्तिपूर्ण कविताओं का प्रणयन किया। उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति केलिए क्रांति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी।

2.1.1 अतीत का गौरवगान एवं वर्तमान दुर्दशा की चिन्ता

हम कौन थे? किन परिस्थितियों में पड़कर आज क्या हो गए हैं? और यदि हमने अपनी वर्तमान दुर्दशा को सुधारने का प्रयत्न न किया तो और क्या होंगे? यह सब अतीत गौरवगान की नींव में दबा पड़ा होता है। इसी की नींव पर भविष्य का उत्थान-पतन खड़ा करना युग स्रष्टा और युगद्रष्टा कवि का काम है। कवयित्रियों ने प्राचीन गौरवगाथा की कलात्मक

अभिव्यक्ति से देशवासियों के सोये हुए विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। अतीत के प्रति देश को सचेतकर वर्तमान अधोगति के चित्रण को कवयित्रियों ने ओजपूर्ण शब्दों में वर्णित किया। कवयित्री तोरनदेवी शुक्ल 'लली' ने अपने आर्त्तनाद में वर्तमान अधोगति का स्मरण कर अपने आध्यात्मिक वीर पुरुषों का आह्वान किया है -

"अब उठो चलो बढ़ चलो वीर ! है यही तुम्हारी कर्मभूमि
इसपर भगवान अवधपति ने
निश्चर कुल का संहार किया
इस पर करुणानिधि केशव ने
श्री गीता ज्ञान प्रसार किया।
इस पर ऋषि गौतम बुद्ध हुए
प्रभु शंकर की यह पुण्यभूमि
अब उठो चलो बढ़ चलो वीर ! अब इस पर रणवीर शिवाजी से
सारे अरिगण श्री हीन हुए।"[1]

इन वीर पुरुषों का नाम स्मरण ही हर हिन्दू केलिए वीरता एवं राष्ट्रीयता के भावों को उत्पन्न करनेवाला है। जब निराशा का घोर अंधकार मानव-हृदय को तमसाच्छन्न कर, उसे किंकर्तव्यविमूढ़-सा कर देता है, तब अतीत की स्मृति उसमें नवीन साहस का संचार करती हुई उसे परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा देती हुई दीखती है तथा भविष्य के प्रति अन्वित करके उन्नति की ओर अग्रसर करती है। इसी दौर में कवयित्री कमला चौधरी मानवता को स्थापित करने की चाह लेकर उतर आयी है। वे कहतीं हैं-

1. तोरनदेवी शुक्ल 'लली' -स्त्री काव्यधारा, पृ. 172

"यही चाह गौतम में जागी, राज भोग ममता सब त्यागी
युद्ध कृष्ण ने किया इसी हित, किया ज्ञान गीता का विस्तृत
पी सुकरात गरल की प्याली, ईसा ने सूली हँस पा ली
राम बने थे वलकल धारी, त्यागी थी अपनी प्रिय नारी
किए इसी हित जीवन अर्पण, बन जाए मानवता - दर्पण।"[1]

स्वर्णिम अतीत के माध्यम से अपने वर्तमान को सुधारने और पुनरुद्धार करने केलिए देशवासियों के आत्मसमर्पण की और कवयित्री ने इशारा किया है। देश के वीर योद्धा ही नहीं प्रकृति भी, विशेषतः हिमालय भी हमारे लिए एक रक्षा कवच बनकर हमेशा से खड़ा रहा है। भारतीय पर्वतों में हिमालय पर्वत का सर्वाधिक गुणगान कवयित्रियों ने इसी कारण से किया है। उन्नत हिमालय को भारत का मस्तक कहा गया है। कवयित्री बुन्देलवाला की राष्ट्रीय भावना एक नये अन्दाज़ से सामने आयी हैं। समूचे भक्तिकाव्य में जो 'बच्चा' उपेक्षित ही रहा, कवयित्री ने बच्चे से संवाद कायम करते हुए जो भारत वन्दना की हैं वह अनूठी हैं:-

"हे प्यारे कदापि तू इसको तुच्छ श्याम रेखा मत मान!
यह है शैल हिमाचल इसको भारत-भूमि पिता पहिचान
नेह सहित ज्यों पितु-पुत्री को सादर पालन करता है
यह हिम-गिरि त्योंहि भारत-हित पितृ-भाव-हिय धरता है।"[2]

हिमालय का अत्यंत मनोहारी ढंग से चित्रण करके कवयित्री ने देश के सांस्कृतिक गौरव के गीत गये। इसीप्रकार कवयित्री राजदेवी ने भारत की

1. कमला चौधरी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 144
2. बुंदेलबाला - स्त्री काव्यधारा, पृ. 192

अतीतकालीन आर्थिक समृद्धि का बखान जगह-जगह पर अपनी कविताओं में किया है। कवयित्री पूछती हैं -

"कहाँ गया पहले का वैभव कौन विपत अब घेरी है।
हाय वीर भारत इस अवसर हुई दशा क्या तेरी है ?
केसर कहाँ और कस्तूरी, कहँ कपूर की ढेरी है।
गूगुल गाद, दोष हरणी मधु भी अब नहीं धनेरी है ?"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवयित्री भारत के प्राचीन वैभव का गान करते हुए हमारे प्राकृतिक वैभव के नष्ट होने पर खेद भी प्रकट करती है। यह एक वास्तविकता है कि अतीत गौरव का गान वर्तमान की ही दुर्दशा से फूटता है।

वास्तव में अतीत के गौरवगान और भारत की वर्तमान दुर्दशा दोनों ही के चित्रण इस युग के काव्य में प्रायः साथ-साथ ही देखने को मिलते हैं। देश की दुर्दशा पर विचार करते समय यह तथ्य साफ है कि देश के राजाओं ने आपसी फूट के कारण एकता से मुख मोड़कर मातृभूमि को परतंत्रता में डाल दिया। इस परिणाम की ओर इशारा करते हुए कवयित्री राजरानी देवी अपना क्षोभ प्रकट करते हुए कहती हैं-

"आर्य दल का शौर्य ठंडा पड़ गया
यवन दल में बढ़ चली कुछ वीरता
ह्रास से यह देश हाय! पिछड़ गया,
आज भी इतिहास देता है पता

---

1. राजदेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 223

हाय, कैसे फूट थी इस देश में
हो गया कैसे महा अपकर्ष है,
दीनता दिखती हमारे वेष में
यह इसी का क्रांतिमय निष्कर्ष है।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में तत्कालीन हीन दशा के प्रति कवयित्री का क्षोभ तो प्रकट होता ही है साथ ही उनके ऐतिहासिक ज्ञान का भी पता चलता है।

भारत अंग्रेज़ों केलिए ऐसा उपनिवेश था, जो उन्हें कच्चा माल देता था। यह खेती का देश था। अंग्रेज़ों ने गाँवों की आर्थिक अवस्था छिन्न-भिन्न कर दी। विदेशी कम दाम पर यहाँ का माल अपने यहाँ ले जाने लगा। जनता गरीब थी। शासन और सुरक्षा के खर्च, कर, शोषण और ज़मीन्दारी-प्रथा से भारत और दरिद्र हो उठा।

किस प्रकार भारत की वस्तुएँ विदेश को निर्यात हो कर फिर भारत में अधिक मूल्य पर बेची जाती हैं और भारतीयों का आर्थिक शोषण होता है, इसपर कवयित्री राजदेवी कहती हैं-

"देखो विदेशों में अहा। व्यापार कितना बढ़ रहा
हर साल ही दिन-दिन निहारो लाभ कितना हो रहा
हर साल ही इस देश की संपत्ति सब वे हर रहे
वे देश अपना भर रहे व्यापार अपना कर रहे
प्रति अंग उन्नति केलिए मस्तिष्क उन्नति केलिए।"[2]

कवयित्री ने भारतीय पूँजी के विदेश चले जाने पर अपना अपार दुःख

---

1. राजरानीदेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 233
2. राजदेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 222

और क्षोत्र यहां व्यक्त किया है। साथ ही देश की जनता की अकर्मण्यता पर व्यंग्य भी कर रही है। कहाँ वह प्राचीन काल का शक्तिशाली भारत, जिसकी और कोई दृष्टि तक उठाकर देखने का साहस नहीं करता था, और कहाँ आधुनिक काल का निर्बल तथा पद चलित देश जिस पर सभी अत्याचार कर रहे हैं। स्वयं देशवासियों को अपने अधःपतन का कारण माननेवाली कवयित्री के स्वर में जनता की निष्क्रियता के प्रति गहरा असंतोष है। प्रस्तुत पंक्तियों में कवयित्री ने अंग्रेज़ों द्वारा किये जा रहे भारतीयों के आर्थिक शोषण, विदेशी वस्तुओं के प्रचार इत्यादि का घोर विरोध करके अपने देशप्रेम का ही परिचय दिया है।

देश में राष्ट्रीय स्तर पर एकता स्थापित करने केलिए आर्थिक स्तर पर भारतवासियों की एकता को स्थापित करना भी अत्यंत आवश्यक हुआ करता है। जब तक देशवासियों को निर्धनता और आर्थिक अन्तर की मार को सहना पड़ेगा, तब तक परस्पर भेदभावों को पूरी तौर से भुलाकर एक साथ होना, कदापि संभव न रहेगा। दूसरी बात यह कि बेकारी, महँगाई जैसी मुसीबतों से अपने को बचाने केलिए भी देश में निर्धनों और धनियों की परस्पर दरारों या खाइयों को पाटना आवश्यक हो गया था। उस समय प्रचलित भारी राज्यकर और सरकारी अफसरों के भारी-भरकम वेतनों पर काराारा कटाक्ष करते हुए उन्हें भारतीय निर्धनता का मूल कारण मानती है कवयित्री रमादेवी -

"तंग गलियों में कभी तो आप हैं जाते नहीं
मेम्बरी के वक्त तो चक्कर लगाया आपने
चाल चलते कौंसिलों में आप जाने केलिए
सर हिलाने के सिवा क्या कर दिखाया आपने।
देश के हित केलिए एक दो कदम चलते नहीं
घिस न जावें पाँव खुद पै रहम खाया आपने
बन्द बहुयें मर गईं पर सांस नहिं लेने दिया।
खुदबखुद को शर्म का शानी जनाया आपने
जुल्म कितने हो गए इस देश में देखो 'रमा'।
किन्तु बस लाली लहू को गुल है समझा आपने।"[1]

देश में चाहे कितने भो अत्याचार हो जाए, अमीरों के पत्थर का दिल नहीं पिघलता। चाल चलके उनकी कोठियाँ खनाखन से भरी है। इतना सब करके इन लोगों ने देश की क्या कम भलाई की है? बेगुनाहों का गला घोटकर तरक्की पा गये। कवयित्रियों ने भारत की तत्कालीन हीन दशा के प्रति, क्षोभ को अनेक कविताओं में मुखरित किया है। राजदेवी की 'देश की दुर्दशा', राजरानी देवी की 'वंश परिचय' आदि इसी भाव को लेकर लिखी गयी कविताएँ हैं।

2.1.2 राष्ट्रोद्बोधन के स्वर

वास्तव में पराधीनता या दासता का बोध कराने से ही यह बात भी जुड़ी हुई है। क्योंकि उसी बोध के कारण ही तो राष्ट्रोद्बोधन की आवश्यकता पड़ी थी। राष्ट्र का सर्वतोमुखी पतन पराधीनता से होता है। देश के हर प्रकार की अवनति का मुख्य कारण परतंत्रता है। भारत हमारा देश है, वह हमारी

---
1. रमादेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 215

जन्म भूमि है, उस पर हमारा स्वत्व है। हमारी जन्मभूमि पर विदेशी आकर शासन करें, अपने घर में हम ही बंदी रहे, यह घोर लज्जा की बात है। देश वासियों में जब तक अपनी दासता की अनुभूति न हो राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन प्राप्त होना कठिन था। इस तथ्य को जानकर इस युग के कलाकार देशभक्ति से प्रेरित होकर पराधीनता पर विक्षोभ प्रकट करते हैं और जनता की भावनाओं को उद्वेलित करके उन्हें स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए निरंतर संघर्ष करने केलिए प्रेरणा देते हैं। वर्तमान की दुर्दशा में जब असहाय स्थिति होती है, तब उस गान में कसक के साथ उद्‌बोधन की प्रेरणा भी छिपी रहती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का तो विकास ही उस समय हुआ जबकि समूचे राष्ट्र में ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध स्वतंत्रता का आंदोलन चल रहा था। देश पराधीन था और समाज निर्बल, हीन। न जाने देश धर्म की लाज कहाँ छिपी हुई थी। ऐसे में विजयदशमी के पर्व के शुभ अवसर पर जब असत् पर सत् की जीत मनायी जाती है। कवयित्री अपने मन के अंगारों को वाणी दे रही हैं -

"आती हो प्रति वर्ष सदाही, लेकर सुख का साज।
किन्तु बता दो तुम्हीं देश में, कौन सुखी है आज ।।
मेरी विजयादशमी आज।
क्या कह कर गुणगान तुम्हारा, करें विजयिनी आज।

x x x

कह दो उन अवधेश कुंवर से, रख लें अब भी लाज।
नित्य पराजित हुए पुण्यतिथि, आवेगी किस काज।।
मेरी विजयादशमी आज।"[1]

---

1. तोरनदेवी शुक्ल लली - स्त्री काव्यधारा, पृ. 176

इन पंक्तियों में कवयित्री 'लली' एक बार फिर पृथ्वी पर प्रभु श्रीराम के अवतार की आशा करती है, नहीं तो इस पुण्य तिथि की लाज नहीं रहेगी। ये पंक्तियाँ देश लाज को बचाने केलिए, देश के भौजवानों का आह्वान करती है।

हमारे राष्ट्र के निर्माण केलिए कई ऐसे सुदृढ़ व्यक्तित्वों ने अवतार लिया जिन्होंने अपना धर्म समझकर स्वयं देश की सेवा की। जब भी भारत पर असुरों का अत्याचार बढ़ा, मानवता का अपमान हुआ, उस प्रत्येक युग में भगवान ने अवतार लिए हैं। देश रक्षा हेतु न जाने इन वीर पुरुषों को क्या-क्या सहना पड़ा। राष्ट्र निर्माण में ऐसे नौजवानों की ज़रूरत है जो निडर होकर सच्चाई के साथ कर्मरत होने केलिए तैयार हो और देश की भलाई जिनकी अभिलाषा हो, न कि डरपोक और स्वार्थी। कवयित्री की ये पंक्तियाँः-

''ओ देशप्रेम के मतवाले! मत प्रेम-प्रेम कह इतराना
जिसमें लालसा प्रधान रही,
वह प्रेम नहीं वह भक्ति नहीं।
जो सहम उठे बाधाओं से
वह वीर हृदय की शक्ति नहीं।।
विचलित हो मायाजालों से,
त्यागी की पूर्ण विरक्ति नहीं।
यदि स्वारथ का लवलेश रहा
माता की वह अनुरक्ति नहीं।''[1]

1. तोरनदेवी शुक्ल 'लली', स्त्री काव्यधारा, पृ. 169

-यह उजागर करती हैं कि व्यर्थ में देशप्रेमी कहने से कोई फायदा नहीं है। जिन्होंने निस्वार्थ भाव से, सभी बाधाओं को पारकर, अपने प्राणों को संकट में डालकर यहाँ तक कि प्राण त्यागकर देश की सेवा की है उन्हें ही ख्याति मिली है।

हमारे देश ने कितनी बार अपने सपूतों के पसीने एवं लहू को आजमाया है। देश की पराधीन स्थिति में केवल विचारक बनकर उपदेश देने का समय नहीं था यह। कवयित्री राजदेवी ने देश के नवयुवकों को जागृत होने का आह्वान दिया-

"है जागने का यह समय हे पाठकों, बहु सो चुके
जो कुछ बचा है धन समय उत्तम बनाना चाहिए
निजदेश-उन्नति जाति उन्नति में लगाना चाहिए
हे देश हितकारी सुनो यह सोचना अब चाहिए
x x x
होगा बहुत कुछ लाभ भी इस देश को इस रीति से
हर एक का जीवन नया हो जायगा इस रीति से।"[1]

इन पंक्तियों में कवयित्री राजदेवी ने यही उद्घोषित किया कि नष्टबोध की याद में, उसकी व्यथा में रोते रहने से किसी को कोई फायदा नहीं है। उससे प्रेरणा पाकर अपने देश हित केलिए कर्मपथ पर अग्रसर होने में ही सार्थकता है। बाकी जो कुछ हमारे पास बचा हुआ है, उसे संजोकर आगे बढ़ना चाहिए।

---

1. राजदेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 222

बुन्देलबाला की 'चाहिए ऐसे बालक' भी राष्ट्र के युवकों केलिए इसी उद्‌बोधन का स्वर लेकर उपस्थित होती है।

संक्षेप में, जब तक राष्ट्र स्वतंत्र न होगा, विदेशी सत्ता का प्रभुत्व बना रहेगा तब तक उस राष्ट्र निवासियों का आक्रोश विदेशी सत्ता के प्रति रहेगा ही। उन्हें अपने देश से निकालने केलिए उद्‌बोधन गीत गाए जाएंगे।

2.1.3 शहीदों के प्रति श्रद्धांजली

देश के प्रति अनुराग, भक्ति या श्रद्धा के भाव से ही राष्ट्रवीरों में बलिदान की भावना उत्पन्न होती है। यह 'देशभक्ति' और 'राष्ट्रीयता' की प्रवृत्ति में अंतर पाया जाता है। 'राष्ट्रीयता' का स्वरूप 'देशभक्ति' से अधिक व्यापक होता है, परंतु देशभक्ति के आधार पर ही 'राष्ट्रीयता' का स्वरूप निर्धारित होता है।

वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम समय में विदेशी सरकार जैसी सशक्त व्यवस्था से संघर्ष करनेवाले भारत जैसे राष्ट्र के पास उस समय शस्त्रास्त्र जैसे माध्यम तो थे नहीं, था तो केवल आत्मबल और बलिदान का सरल-सा, सीधा-सा मार्ग हमने वही अपनाया। श्रीमद् भगवद्‌गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने यद्यपि करने और मारने के विषय में दोनों ही पंथों का दार्शनिक दृष्टिकोण स्पष्ट किया था तथापि भारतीयों ने मारने की अपेक्षा 'मरने' का ही रास्ता चुनने में अपना भला समझा। जबसे लोकमान्य तिलक ने यह नारा लगाया कि 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है', कितने ही

कवियों ने अपनी कविताओं में इस आत्म-बलिदान के मार्ग को स्वतंत्रता-प्राप्ति के हेतु सर्वश्रेष्ठ मार्ग के रूप में चुन लेने का भारतीयों से स्पष्ट आह्वान किया था। द्विवेदी युग के लगभग सभी हिन्दी कवियों के हृदयों में यह भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। जिन लोगों ने देश केलिए बलिदान दिया उनका गौरवगान हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य का मुख्य विषय बन गया। कवयित्री तोरनदेवी शुक्ल 'लली' ने इन शहीदों के बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा करने हुए लिखी है-

"माता के चरण पुजारी थे
पुरुषों में थे वे पुरुष सिंह
कर्तव्य धर्म व्रत धारी थे
x x x
वे वीर हठीले सैनिक थे
तेजस्वी थे विद्वज्जन थे।
कर्तव्य कर्म की ओर चले, फल की सारी सुध-बुध बिसार
तमपूर्ण निशा में ज्योति हुए
पथ दर्शक कंटक मय जग के
मर कर भी हैं वे अमर हुए
आदर्श बने भावी जग के
मंगलमय हो बलिदान तेरा।"[1]

इन्हीं के बलिदान का परिणाम ही तो है यह राष्ट्र। कवयित्री इन पंक्तियों में शहीदों के चरणों पर शत-शत कोटि प्रणाम अर्पित कर रही हैं। वे यहाँ राष्ट्रप्रेम को ही मुखरित नहीं करती बल्कि आज़ादी केलिए यदि यह

1. तोरन देवी शुक्ल 'लली'- स्त्री काव्यधारा, पृ. 223

शांतिपूर्ण आंदोलन जीवन की बलि-माँगता है तो इसकेलिए भी जनता को तैयार रहना चाहिए, इस बात की ओर भी संकेत करती हैं।

इस प्रकार की रचनाओं के द्वारा कवयित्रियों ने जनता में देश के प्रति प्रेम और भक्ति की भावनाएँ उत्पन्न करने का प्रयास किया है। यहाँ उद्धृत सभी पंक्तियाँ यही ज़ाहिर करती है कि 'देशभक्ति और मातृभूमि के प्रति अपार प्रेम की अभिव्यक्ति देने में कवयित्रियाँ बिलकुल पीछे नहीं थीं।

2.2 स्त्री चेतना

किसी भी समज में नारी का क्या स्थान है, इससे उस समाज की स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। जिस समाज में नारी जाति का शोषण होता है, उसका अर्थ है, समाज का आधा अंग शोषित और पीड़ित है। यदि नारी के अधिकारों का हनन हो, उसे आगे बढ़ने से रोका जाय तो ऐसी स्थिति में संपूर्ण समाज की उन्नति संभव नहीं। प्राचीन काल से स्त्री की स्थिति समाज के विकास नापने का मापदंड रही है। नारी चेतना के विकास का अध्ययन करने केलिए भारतीय समाज में परंपरागत नारी की छवि एवं उसकी ऐतिहासिक रूपरेखा का ज्ञान परम उपयोगी है क्योंकि भारतीय संस्कृति हिन्दी साहित्य का अनिवार्य अंग है और उसके संदर्भ में ही नारी चेतना में आये बदलाव के विविध रूपों का अध्ययन किया जा सकता है। इस आधार पर पूर्व छायावाद युगीन स्त्री काव्यों में स्त्री-चेतना को किस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है, इसपर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है।

2.2.1 शोषित नारी की मनोवृत्ति

पहले अध्याय में इस बात का ज़िक्र हुआ है कि वैदिक कालीन स्त्रियाँ गृहस्थी से परे भी अपना अस्तित्व रखती थी। वैदिक काल में नारी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। इस युग में स्त्री की दशा समुन्नत थी। भारत के अवनति काल में जब ब्राह्मण पंडितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेद पाठ का अनाधिकारी घोषित किया तो साथ ही उन्होंने स्त्रियों के भी सभी अधिकार छीन लिए। नहीं तो, वैदिक युग में, उपनिषद युग में, देख सकते हैं - मैत्रेयी, गार्गी आदि प्रातः स्मरणीया स्त्रियाँ ब्रहमज्ञान में ऋषि तुल्य हो गयी थीं। इन सब महान स्त्रियों को यदि अध्यात्म ज्ञान का अधिकार था तो स्त्रियों का वह अधिकार इस समय क्यों नही रहेगा?

पुरुषों ने स्त्री को नियंत्रित करने केलिए सारे धर्म ग्रंथों की रचना की। 'नारी धर्म' बनानेवाले पुरुषों ने अपने लिए हर जगह स्वतंत्रता रखी। नारी की सुरक्षा के नाम पर परिवार एवं घर नामक संस्था का बीजारोपण हुआ। आदर्श नारी की जो रूढ़िबद्ध धारणा शास्त्रीय ग्रंथों ने प्रस्तुत की, नारी आज भी उस छवि में जीने केलिए अभिशप्त है। इस छवि से बाहर जाने पर उसे कुलटा कहा जाता है। समय के साथ-साथ नारी देह मात्र बनती गई और उस देह की भी वह स्वामिनी नहीं रही। इस तथ्य पर सीमोन द बोउवा की धारणा है कि "प्रत्येक संस्कृति में स्त्री को या तो देवी रूप में रखा गया है या गुलाम की स्थिति में।"[1] स्त्री का दुख, उत्पीडन एवं दमन हमेशा निजी रहा है।

1. सिमोन द बोउवार - स्त्री उपेक्षिता, पृ. 21

स्त्रियाँ इसे छिपाती रही हैं। कवयित्रियों ने इस व्यक्तिगत दमन को सार्वजनिक कर दिया। स्त्री के लेखन में आत्मकथ्य होता है, वह आत्मकथन के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त करती हैं -

"समय विपरीत निभा लूँगी
प्रेम की लाज बचा दूँगी
सीता प्रति श्रीराम निठुर हैं, राधा प्रति गोपाल
सती समक्ष निठुर शंकर हैं, यही सदा की चाल
अनोखी बात न कह दूँगी।
डाल दो पत्थर सह लूँगी।
सहन, क्षमा दो चरण हमारे, प्रेम हमारा लक्ष
साक्षी सर्व विश्व है मेरा, कहती ईश समक्ष
न तुमको ताना भी दूँगी।
बनेगा जैसा-जी लूँगी।"[1]

यहाँ प्रेम के लिए सबकुछ सहनेवाली नारी का चित्रण हुआ है।

प्रियंवदा देवी की ये पंक्तियाँ घर की चारदीवारी में बंद स्त्री की मानसिकता को उजागर करती हैं। यह वह मानसिकता है जहाँ सहनशीलता, लज्जा, कोमलता और परनिर्भरता को औरत का स्वभाव समझ गया है। उस समय तक नारी का कोई व्यक्तित्व नहीं था। उसके भाग्य में बस विवश होकर रोना लिखा था। स्त्रियों की स्थिति ऐसी हो जाती थी कि मार खाकर भी रोती नहीं है। वस्तुतः नवजागरण के इस समय में समाज को एक दृष्टि मिली। नारियों को भी अपनी विशिष्टता पहचानने और बदलने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी का परिणाम है उपर्युक्त पंक्तियाँ।

1. प्रियंवदा देवी -स्त्री काव्यधारा, पृ. 184

2.2.2 शोषण के प्रति सचेत नारी

भारत में नारी विषयक होनेवाले परिवर्तनों में उन्नीसवीं सदी का विशेष महत्त्व रहा। मुसलमानों के शासनकाल में नारी जाती के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। स्त्रियों की दशा और नारकीय हो गयी। पर्दा प्रथा, बालविवाह, सती प्रथा, जौहर प्रथा आदि का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया। इस काल में नारी के कामिनी रूप को हो प्रधान माना गया। साधु-संतों ने नारी को मोक्ष प्राप्ति में बाधक बताया। स्त्री की दशा सुधारने केलिए प्रारंभिक शुरुआत अंग्रेज़ों के भारत आगमन के साथ हुई। भारत में नारी शिक्षा का श्रेय विदेशी ईसाई मिशनरियों, ब्रिटिश सरकार एवं प्रगतिशील भारतीय मनीषियों को दिया जा सकता है। जितने भी सुधारकों ने स्त्री-शिक्षा को प्रश्रय, शिक्षा के प्रारूप और पाठ्यक्रम को लेकर सबकी एक राय कि आदर्श शिक्षा वही जो लड़की को सुघड़ गृहिणी, समर्पिता पत्नी और कर्तव्यपरायण माँ बनाए। किन्तु, यह तथ्य निर्ववाद है कि शिक्षा ने स्त्री की आत्मचेतना को पैदा किया। 'चेतना अर्थात् एहसास, ज्ञान, बोध। नारी चेतना से अभिप्राय नारी के अपने अस्तित्व बोध से है। समाज की एक इकाई के रूप में 'अपने होने के एहसास' से ही अस्तित्व की पहचान होती है। अपने जीवन में शिक्षा की महत्ता को स्वीकार करते हुए कवयित्री 'लली' कहती हैं -

"देकर विद्यादान बना दो, शिक्षित सुमति उदार
महिलाओं में ज्योति जगादो, जीवन की इकबार।"[1]

यहाँ एक सचेत नारी उभरकर आयी है जो अपने समान अपनी बहनों में भी जीवन ज्योति जगाने की आशा रखती है। 'चेतन' होने का अर्थ ही उत्तरदायी होना है। यह जागृत नारी चेतना ही है कि नारी की तंद्रा टूट रही है और वह इस दुष्चक्र से बाहर आ रही है। शिक्षित नारी अपने विरुद्ध रचे गये मिथकों को तोड़ रही है और अन्य स्त्रियों को आह्वान दे रही है-

"इस घूँघट ही के पट में
क्या-क्या न हुआ सदियों से
बना आज कर्त्तव्य तुम्हारा, जगना और जगाना।"[2]

घूँघट की आड़ में जिस बाहरी दुनिया से स्त्री को वंचित रखा गया था, जागृत नारी ने अपनी अस्मिता को पहचानकर विस्तृत भूमिका की माँग की है। नारी को अपने व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में अपना आपा पाने केलिए पुरातन स्थापित मिथकों से हर पल जूझना पड़ा है। राजदेवी और राजरानी देवी की कविताएँ इसी भाव को व्यक्त करती हैं।

2.2.3 मुक्ति केलिए आवाज़ उठाती नारी

स्त्री मुक्ति का अर्थ पुरुष हो जाना नहीं है। स्त्री की अपना प्राकृतिक विशेषताएँ हैं, इनके साथ ही समाज द्वारा बनाये गये स्त्रीत्व के बंधनों से मुक्ति

---

1. तोरन देवी शुक्ल 'लली' - स्त्री काव्यधारा, पृ. 172
2. वही, पृ. 172

के साथ मनुष्यत्व की दिशा में कदम बढ़ाना, सही अर्थों में स्वतंत्रता है। स्त्री शिक्षा जहाँ भी पहले पहुँची, परिदृश्य बदला। जब स्त्री शिक्षित बनेगी तभी वह कहेगी कि उसे किन सुधारों की आवश्यकता है। यदि शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियों में आत्मचेतना का विस्तार हुआ है तो समाज द्वारा बनाये गये स्त्रीत्व के बंधनों से मुक्ति केलिए आवाज़ उठाना बनता है। सब चीज़ों को दबाया जा सकता है लेकिन आवाज़ कभी नहीं दबती। नारी मुक्ति का प्रश्न, दलित मुक्ति का प्रश्न ऐसी ही आवाज़ हैं। स्त्री पराधीनता में 'पर्दा' प्रथा के अन्दर छटपटाते हुए प्राणों का आर्त्तनाद गूँज उठता है-

> "कहो बन्धु। अब क्या कहते हो
> कब तक मुक्ति करोगे?
> इस घूँघट की कड़ियों से।
> हम दुर्बल दीन मलीन हुई, सुख शांति स्वास्थ्य बलहीन हुई।"[1]

यहां स्त्री अपने अपदस्थ मुकाम को प्राप्त करने केलिए प्रयासशील दिखाई देती है। स्त्री ने पुरुष के भाग्य के अधीन अपनी किस्मत से असंतोष प्रकट किया है। साथ ही दूसरी नारियों को सचेत करते हुए कहती हैं-

> "देवियों। क्या पतन अपना देख कर
> नेत्र से आँसू निकलते हैं नहीं ?
> भाग्यहीना क्या स्वयं को लेख कर
> पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं?
> क्या तुम्हारी बदन-श्री सब खो गई
> इच्च गौरव का नहीं कुछ ध्यान है?

---

1. तोरन देवी शुक्ल 'लली' - स्त्री काव्यधारा, पृ. 171

क्या तुम्हारी आज अवनति हो गई?
क्या सहायक भी नहीं भगवान है?
हो रहे क्यों भीष्म अत्याचार है ?"[1]

यहाँ नारी जागरण और स्वदेश जागरण दोनों एक-साथ पर्याय बनकर उगे हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो नारी यह कह रही हो 'बस बहुत हो चुका जुल्म, आब और नहीं सहेंगे।' सदियों से सहते-सहते उसके सब्र का बाँध अब टूट चुका है। अब शोषण के प्रति वह अस्वीकर की मुद्रा में है। वह अपने साथ अपने साथियों को भी समाज में उतरने की प्रेरणा दे रही है। कवयित्री इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत हैं कि सभी नारियों के एकजुट होकर आने से ही पितृसत्ता पर तीखा प्रहार पड़ सकता है। इस विश्वास को बनाये रखते हुए पुँसवादी सत्ता को ललकार रही हैं -

"क्या शांति चाहते हो तुम, गृहणी गण को फुसलाकर?
बँधन कैसे रख लोगे, उस क्षण भी उन्हें भुलाकर-
जब प्रतिहिंसा का भाव उठेगा-
झूम सभी हृदयों से।"
अब भी यदि रखना चाहो, दृढ़ सदाचार सुविचार
कर दो दूर, आज परदे सा, अंतिम अत्याचार "[2]

यहाँ अधिकारों केलिए स्त्री-सजगता और तेजस्विता की एक महत्त्वपूर्ण छवि गढी गयी है। प्रियंवदा देवी की 'गिरफ्तारी' नामक कविता स्त्री चेतना को उजागर करनेवाली कविता है।

उपर्युक्त पंक्तियाँ यही ज़ाहिर करती हैं कि खुद को अबला समझनेवाली

---

1. राजरानी देवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 229
2. तोरदेवी शुक्ल 'लली'- स्त्री काव्यधारा, पृ. 172

नारी में अगर आत्म-चेतना का विस्तार हो जाए तो वह दुनिया में कुछ भी कर सकती है। यह चेतना इस युग की स्त्रियों में जन्म ले चुकी थी; जिसका परिणाम है कवयित्रियों की ये कविताएँ।

2.3 नीति और आदर्श

मानव-जीवन विविध मूल्यों द्वारा आलेडित है। जीवन और मूल्य एक दूसरे से युग-चेतनानुरूप जुडते रहे हैं। इन जीवन-मूल्यों का युगानुरूप उत्थान-पतन होता रहा है। युग-चेतना और जीवन-मूल्य का संबंध सृष्टि के प्रारंभ से विद्यमान है। समाज में मूल्यों का विशेष महत्व है। उसी प्रकार समाज का प्रभाव मूल्यों पर भी पड़ता है। मूल्य के द्वारा सामाजिक निर्माण एवं पतन संभव होता है। यह एक ऐसा मापदंड है जो समाज का दिशावहन करने के साथ ही साथ उसे महत्व भी प्रदान करता है। मूल्य उपयोगिता से संबंधित है। मूल्य बनते और बिगड़ते रहते हैं। बहुत से लोग आधुनिकता को मूल्य मानते हैं परंतु मूल्य के निर्धारण केलिए आधुनिकता एक परिप्रेक्ष्य है। आलोच्य युग में हुए उत्थान-पतन जीवन मूल्यों की सार्थकता को स्वीकार करते हैं। संपूर्ण मानव-व्यक्तित्व उस समय दिग्भ्रमित था। उसका अस्तित्व खतरे में था। इसलिए मनुष्य को अपनी क्षमता और अस्तित्व का विश्लेषण करना अनिवार्य था। तत्कालीन युगचेतना जीवन-मूल्य के आदर्शात्मक स्वरूप को व्याख्यायित करना चाह रही है। इसकेलिए ज़रूरत थी बिखरे हुए संवेदनाओं, अनुभूतियों और तनावों को एकत्र करके उन्हें पहचानने की।

मनुष्य अपने युगानुरूप चेतना प्राप्त कर क्रियाशील होता है। जीवन में अनेक प्रकार के मूल्यों का वरण उसे विभिन्न मार्गों का अनुवर्तक बना देता है। वह कभी खीजता है, जूझता है, टूटता है, पकता है और कभी-कभी नष्ट प्राय की स्थिति में पहुँच जाता है। जीवन के इन व्याघातों में स्थिर रहना ही मूल्य प्राप्ति है। मूल्यों के वर्गीकरण का विवेच्य आधार वैयक्तिक, समष्टिगत, आध्यात्मिक, भौतिक, नैतिक और सौन्दर्यमूलक है। इसी आधार पर मूल्यों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, सौन्दर्यगत आदि अनेक रूपों में अभिव्यंजित किया गया है। संदर्भ के परिवर्तन के साथ ही साथ मूल्यों में भी परिवर्तन हो जाते हैं। मूल्यों का उद्भव एक-दो दिन में नहीं होता बल्कि एक लंबी प्रक्रिया से छनकर नवीन मूल्यों का अस्तित्व दृष्टिगत होता है।

किसी भी युग की चेतना से उस युग का साहित्यकार प्रभावित अवश्य होता है। इसीलिए युग का प्रतिबिंब साहित्य में प्राप्त होता है। आधुनिक खंडित मानव चेतना को ऐक्य की सीमा में युगानुरूप आबद्ध करने केलिए साहित्यकार जीवनमूल्यों को साधन मानते हैं। परिवेशगत एवं परिस्थितिगत विघटित व्यक्तित्व में सौष्ठवता का संचरण मानव-मूल्यों द्वारा ही संभव है। उदार, व्यापक एवं मानवतावादी भावनाओं को विश्वमंच पर प्रतिस्थापित करना अति आवश्यक है। तत्कालीन सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए युगानुरूप चेतना-समन्वित जीवन-मूल्यों की प्रतिस्थापना को उस समय के साहित्यकारों ने लाभकारी माना। इसीलिए द्विवेदी युगीन काव्य

आदर्शवादी और नीतिपरक सिद्ध हुआ। इतिहास-पुराण से गृहीत कथा-प्रसंगों के आधार पर अथवा कल्पनाश्रित उज्ज्वल कथाएँ लेकर आदर्श चरित्रों पर अनेक प्रबंध काव्य लिखे गये। उन सभी में असत पर सत की विजय दिखाई गयी है- स्वार्थ-त्याग, कर्त्तव्य पालन, आत्मगौरव आदि उच्चादर्शों की प्रेरणा दी गयी है। आख्यानक कृतियों के अतिरिक्त इस काल में नीतिपरक एवं उपदेश प्रधान कविताओं की पुष्कल परिमाण में रचना की गयी। इस प्रकार के पद्य लेखकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिली शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि प्रमुख हैं। इनके बीच ये कवयित्रियाँ भी मौजूद थीं जिनकी ओर शायद किसी भी इतिहासकार का ध्यान नहीं गया। इन्होंने भी नीतिपरक एवं उपदेशात्मक कविताओं के ज़रिए युगानुरूप मानवमूल्यों को प्रतिस्थापित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। उनकी कुछ पंक्तियों को नीचे जोड़ा जा रहा है।

मानव समाज में सज्जन एवं दुर्जन दो प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं। सज्जन व्यक्ति सत्कार्य, प्रवृत्त होते हैं और दुर्जन व्यक्ति इससे परे होते हैं। समाज में रहकर कुछ कार्यों का समुचितरूपेण पालन अत्यावश्यक हो जाता है। समाज में अहितकर कार्यों का संपादन सर्वथा त्याज्य होना चाहिए। समाज के परिवेशानुसार सभी मान्यताएँ स्वयमेव बनती एवं बिगड़ती रही हैं। इन नैतिक भावनाओं के अभाव में समाज में अनेक प्रकार के दुर्गुण परिलक्षित होने लगते हैं। युगानुरूप परिस्थितियों को देखकर कवयित्रियाँ प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकीं। पतनशील जीवन-मूल्यों को देखकर उनकी

चेतना इनके परिष्कार-हेतु सन्नद्ध हुईं। अपनी कविताओं द्वारा उन्होंने नैतिक आदर्शों का समर्थन किया।

सज्जन पुरुषों द्वारा दोष-रहित व्यवहार ही शिष्टाचार है। शिष्टाचार-परिपालन द्वारा समाज-हित संभव है। समाज में अपने से बड़ों का सम्मान करना उचित है। इस प्रकार के कृत्य व्यक्ति के शिष्टाचार का परिचायक है। कवयित्री गोपालदेवी की ये पंक्तियाँ -

> "माता पिता जो आज्ञा देवें, उसको सिर माथे पर लेवें
> निसि-दिन में करें, आओ जी भाई आज।
> पढ़ने-लिखने में चित लावें, जिससे कभी न हम दुख पावें
> अच्छे गुण अनुहरें, आओ जी भाई आज।
> भाई बहिन सभी मिल बैठें, देख किसी को कभी न ऐंठें।
> नहीं किसी से लरें, आओ जी भाई आज।
> बुरे बालकों में नहिं खेलें, भले बालकों में नित मेलें।
> अच्छों को अनुसरें, आओ जी भाई आज।
> मिले दरिद्री दुखी कोई जो, चाहे ऊँच नीच-जैसा हो,
> उसके दुख को हरें, आओ जी भाई आज।
> औरों के दुख में दुख मानें, औरों के सुख में सुख जाने।
> ऐसा वृत आचरें, आओ जी भाई आज।"[1]

-शिष्टाचार के अनेक रूपों को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। यहाँ बड़ों का आदर करने के साथ ही कर्तव्य परायणता, भाईचारा, सत्संग, सहानुभूति तथा परदुखकातरता जैसे गुणों को भी प्रतिस्थापित किया है।

---

1. गोपालदेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 160

उत्साह मानव-विकास में सहायक होता है। उत्साह विहीन व्यक्ति अपने-अपने कर्मों में सफल नहीं होता है। लक्ष्यसिद्धि उत्साह का अंतिम सोपान है। किन्तु यह उत्साह जब उमंगे में परिवर्तित होता है और जब लोभ का पुट उसमें मिल जाता है तो वह बुद्धि विनाशिनी है। बुद्धि के विनष्ट होने पर मनुष्य दुष्कर्म-प्रवृत्त होता है। दुष्कर्म का परिणाम अलाभकर होता है। ऐसे जोश के शिकार ज़्यादातर युवागण ही होते हैं। इन युवक उमंगों को सचेत करते हुए कवयित्री बुन्देलबाला ने 'सावधान' नामक अपनी कविता में लिखा है -

"सावधान हे युवक उमंगों, सावधानता रखना खूब।
युवा समय के महा मनोहर विषयों में जाना मत डूब।।
सर्वकाज करने के पहले पूछो अपने दिल से आप।
"इसका करना इस दुनिया में, पुण्य मानते हैं या पाप।"
जो उत्तर दिल देय तुम्हारा उसे समझ लो अच्छी भांति।
काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दुखों की पांति।।"[1]

ये पंक्तियाँ इस ओर इशारा कर रही हैं कि उत्साह और अंग के भावावेग में विभिन्न प्रकार के पापों को प्रश्रय मिलता है। फलस्वरूप प्रयासकर्ता दोषयुक्त होकर समाज का अहित करता है। और जब इनसान अहंकारी बन जाता है तो वह मोक्ष का भागी नहीं हो सकता ।अहंकार निषेध एक नैतिक चेतना है। इस चेतना से संपुष्ट कवयित्री वाणी दे रही हैं -

"अहंकार सर्वदा जगत में मुँह की खाता आया है।
नय नम्रता मान पाते हैं सबने यही बताया है।।

---

1. बुन्देलबाला - स्त्री काव्यधारा, पृ. 189

है प्रत्येक भव्यता के हित इस जग में निकृष्टता एक।
विषय रूप मिष्ठान्न मध्य हैं विषमय आमय-कीट अनेक।
इंद्रिय-विषय-शिखर दूर हिं ते महा मनोरम लगते हैं।
निकट जाय जाँचे समझोगे, रूप हरामी ठगते हैं।
है प्रत्येक ऊँच में नीचा, प्रति मिठास में कडुआ स्वाद
प्रति कुकर्म में शर्म भरी है मर्म खोय मत हो बरबाद।।
प्रकृति-नियम यह सदा सत्य है, कैसे इसे मिटाओगे।
जग में जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल पाओगे।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों के द्वारा कवयित्री अहंकार विरोध को अभिव्यक्त करती हैं। संसार के संपूर्ण पाणियों में वैभिन्य है। भावावेग में आकर मनुष्य त्रुटियों से आपूर्ण होता है। परंतु यदि वह अपनी त्रुटि स्वीकार कर ले तो उसे क्षमा प्रदान करना धार्मिक चेतना का प्रतीक है। आलोच्य युग की कवयित्री ने दोष-परिष्करण रूप में क्षमा का समर्थन किया है। क्षमा सर्वोत्तम दंड माना गया। क्षमा के द्वारा अपराधी का हृदय परिवर्तित हो जाता है। ये पंक्तियाँ-

" 'रमा' क्रोध जड़ पाप की, क्षमा धर्म का बीज
योग क्षमा तप क्षमा सो, जाये शत्रु पसीज।"[2]

-यह ज़ाहिर करती हैं कि क्षमा अपराध विनाशक एवं आत्म-परिष्करण में सहायक है। क्रोध का आवेग पाप को जन्म देता है। जो कार्य दंड से संभव नहीं होता है, वह क्षमा से संभव हो सकता है। क्षमा का प्रभाव आत्मा पर होने से यह स्थायी होता है। इनसान को सद्वृत्तियों में संलग्न होने

1. बुन्देलबाला- स्त्री काव्यधारा, पृ. 189
2. रमादेवी 'स्त्रीकाव्यधारा' पृ. 215

का अवसर प्राप्त होता है ऐसा कवयित्री मानती है। हो सकता है कवयित्री के इन विचारों के पीछे गाँधी के दिखाये मार्ग का प्रभाव हो। उपर्युक्त पंक्तियों के अतिरिक्त गोपाल देवी की 'चमगीदड़' 'भेड़ और भेड़िया', 'धोबी और गधा' आदि कविताएँ भी जुल्मों के प्रति विरोध प्रकट करते हुए प्रेम की भावना को बढ़ावा देनेवाली है।

नीति और आदर्श को लेकर लिखी गयीं ये कविताएँ इस तथ्य की ओर संकेत कर रही हैं कि आलोच्य युगीन कविताएँ रीतिकालीन काव्यप्रवृत्तियों से भिन्न होकर इन मूल्यों का वहन करने की क्षमता रखती हैं। इसके साथ ही यह तत्व भी जोड़ना अनिवार्य है कि साहित्य में इन मानव मूल्यों की प्रतिस्थापना तत्कालीन परिवेश की अनिवार्यता थी। यह बात अवश्य विचारणीय कि नवजागरणकालीन इन कविताओं ने जिन मानव मूल्यों को प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया गया वे आज कहाँ तक सुरक्षित है? युगानुरूप साहित्य की प्रस्तुति से कवयित्रियों ने यह साबित कर दिखाया है कि वे समाज से दूर नहीं थीं।

2.4 अन्य प्रवृत्तियाँ

यह बात सर्वमान्य है कि द्विवेदी युग में वर्ण्य विषय का अद्भुत विस्तार हुआ। उसमें अपार वैविध्य और व्यापकत्व आया। नायिका-भेद को छोड़कर सभी चिरपरिचित उपादान तो गृहीत हुए ही साथ ही अनेक नूतन

विषयों को भी स्थान मिला। जीवन और जगत् के सभी दृश्य और पदार्थ कविता के विषय बनने लगे। अनेक छोटे-छोटे साधारण विषयों पर कविताएँ लिखी गयीं। वस्तुतः ऐसे विषयों को लेकर इस युग में लिखी गयी छोटी-छोटी कविताओं की तो कोई सीमा ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रहा जिधर इन कवियों की दृष्टि न गयी हो। हमारी कवयित्रियों की प्राप्त कविताओं में भी ऐसी ही कुछ प्रवृत्तियों का अंकन मिलता है।

2.4.1 वात्सल्य

समाज में नारी जीवन के पुत्री, भगिनी, पत्नी, माता आदि अनेक रूप होते हैं। उन सभी रूपों में जहाँ तक वात्सल्य का प्रश्न है, माता का ही रूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तथा मातृहृदय की अनुभूति केलिए समाज में एक सर्वोत्तर स्थान सुरक्षित है। वात्सल्य दाम्पत्य प्रेम की परिणति है। इस वात्सल्य का आलंबन शिशु, दाम्पत्य प्रेम का ही मधुर फल है। श्रृंगार की भांति वात्सल्य रस के भी दो पक्ष हैं - संयोग तथा वियोग। जब तक संतान अपने माता-पिता के समीप रहकर अपनी बाल स्वभावोचित क्रीडाओं से उनको आनंदित करता है तब तक का वात्सल्य संयोग वात्सल्य कहलाता है। संतान की अनुपस्थिति की अवस्था में माता-पिता अपनी संतान के प्रति जो वात्सल्य अभिव्यक्त करते हैं - वह वियोग वात्सल्य है। प्रकृति ने वात्सल्य जैसे कोमलभाव मनुष्य को इसीलिए दिये हैं कि उसके द्वारा संतति एक शीतल छाया में सुरक्षित, पालित एवं पोषित होकर स्वस्थ एवं मेधावी बन सके।

माता का वात्सल्य उनके कई अनुभावों द्वारा व्यक्त होता है। बालक का खेलना उसकी सहज वृत्ति है। पर माता का खेलना उनकी सहज वृत्ति नहीं है। उसके साथ न खेलना माता की दृष्टि में क्रूरता है। अतः माता उसके साथ खेलती है। माता उत्साहपूर्वक खेलते हुए बालक को स्वतः उद्भूत स्नेह प्रदान करती है। शिशु के छोटे से छोटे कार्य माता केलिए अत्यंत आनंद दायक होते हैं। यह स्वाभाविक है ।

कवयित्री राजरानी देवी 'कुमारी संयुक्ता' नामक कविता में जयचंद की पुत्री के जन्मोत्सव के अवसर पर मातृ हृदय की अभिव्यक्ति देते हुए कहती हैं-

"कौन उनके हर्ष को सकता बता,
जननि का उपमा-रहित उल्लास था।
रुचिर मणिमय पालने की सेज पर
बालिका कर कंज मुँज उछालती।
तब जननि लखती उसे थी आँख भर,
बार-बार दुलार कर पुचकारती।
बालिका को गोद माँ लेती कभी
प्रेम से उसका हृदय था फूलता।"[1]

इन पंक्तियों में बालक के साथ बालक बनकर खेलनेवाली माता के चित्र भी मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि बालक के वात्सल्य में जो हृदय लीन हो जाता है वह बालक की ही तरह निर्विकारात्मक अवस्था में पहुँच जाता है। संतान का जन्म किसे सुख नहीं देता। जो संतान अपने अंग-अंग से

1. राजरानीदेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 235

उत्पन्न हुआ, जिसे हृदय का टुकड़ा ही कहा जाता है उसका संभव (जन्म) मानो अपना अपर जन्म है। प्रस्तुत पंक्तियों में माँ अपनी बच्ची की शोभा पर मुग्ध है। बालदशा के ये चित्र मनोमुग्धकारी एवं जन हृदय रंजनकारी हैं। शिशु की मुस्कुराहट द्वारा मानव हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। बालोचित चेष्टाओं को निरखने से एक अनुपम आनंद की प्राप्ति होती है। उसका सामीप्य सांसारिकता को भुला देता है। इन पंक्तियों में वात्सल्य की सुन्दर एवं स्वाभाविक व्यंजना हुई है। कवयित्री की ये पंक्तियाँ यह उजागर करती हैं कि माता का हृदय ही वात्सल्य भाव की पूरी झाँकी ले सकता है, जिसे मातृ-हृदय प्राप्त नहीं हुआ, वह वात्सल्य भाव को समझ ही न सकेगा।

2.4.2 प्रकृति-चित्रण

जैसे जीवन के सभी क्षेत्र काव्य के विषय बने, प्रकृति भी स्वतंत्र रूप में काव्य का विषय बनी। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामचन्द्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह, लोचनप्रसाद पांडेय, गिरिधर शर्मा आदि के काव्य में बड़ा मनोहारी प्रकृति-चित्रण मिलता है जो नायक-नायिका के संदर्भ में किये गए रीतिकाली ऋतु-वर्णन आदि के समान निर्जीव एवं परंपरा-पालन-मात्र नहीं है, यद्यपि द्विवेदीयुगीन प्रकृति-चित्रण में भी पर्याप्त स्थूलता है, कल्पना-वैभव एवं सौरस्य का अभाव है, फिर भी उसमें यथार्थता एवं ताज़गी है। यहाँ कवयित्रियों की कविताओं में भी प्रकृति के मनोरम दृश्य प्रस्तुत हुए हैं। देशप्रेम के संदर्भ में हिमालय पर्वत का गौरवगान करते हुए

प्रकृति प्रेम को देशप्रेम का परिचायक माना है कवयित्रियों ने। कवयित्री सत्यवती मल्लिक अन्तर में जो क्रीड़ा करते!' नामक कविता में प्राकृतिक प्रतिभासों के प्रति कौतूहल प्रकट करती हैं-

"कभी घन गर्जन-
कभी विद्युत सम!
बाष्प सरिख फिर
उमड-घुमड़ कर।
दुलृढुल आते-
क्यों बन पानी?"[1]

हो सकता है कि इस कौतूहल की जड़ में विज्ञान का प्रभाव हो।

यहाँ कवयित्री ने प्रकृति का सरल और शुद्ध चित्रण किया है। वर्षा का मनोहारी चित्रण इन पंक्तियों में मिलता है। इनके अतिरिक्त रामेश्वरी नेहरू की 'सरोजिनी-स्वागत' तोरन देवी शुक्ल 'लली' की 'कलिका' नामक कविताएँ आदि प्रकृति के मनोरम दृश्य प्रस्तुत करती हैं। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और नैसर्गिक दृश्यों के स्वाभाविक चित्रण में उनका मन रमा है।

2.4.3 ईश्वर पर आस्था

आलोच्य युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्तिभावना को अपेक्षतया गौण स्थान प्राप्त हुआ। फिर भी पूर्वकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव यहां रहना स्वाभाविक है। वैसे भी भारतीय संस्कृति आस्था पर

1. सत्यवती मल्लिक- स्त्री काव्यधारा, पृ. 271

आधारित है। भारत में आस्तिकता की प्रवृत्ति के कारण हमारा काव्य सदा ईश्वर में विश्वास भी प्रकट करता आया है।

इस युग का काव्य भक्तिकाल की अपेक्षा सामाजिक आवश्यकताओं की धार्मिक दृष्टि से बड़े पैमाने पर पूर्ति कर रहा था। इन कवियों ने भी एक ईश्वर में पूर्ण आस्था रखने की बात कह कर संपूर्ण राष्ट्र को एक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया था। कवयित्री हेमंतकुमारी चौधरानी सर्वशक्तिमान ईश्वर जो समस्त चराचरों में व्याप्त है, उसका स्मरण करते हुए पाठकों को ईश्वरीय मार्ग की ओर अग्रसर करती हुई दिखाई देती हैं:-

"जिसके यश से सब पूरण है,
यह विश्व चराचर व्यापत् अभी।
जिसकी महिमा, प्रतिभा, गुरुता
लखते रहते हम लोग सभी
जल, पावक, चन्द्र, रवी वर वायु
विमोहक है टलते न कभी
उससे बस प्रीति करो नर-नारि
सुजीवन-लाभ करोगे तभी।"[1]

इन पंक्तियों में यदि भगवान का गुणवान किया गया है तो कवयित्री रमादेवी देश की हालत सुधारने केलिए भगवान से विनती करती हैं-

"चीज़ भई महंगी है बाज़ार में गेहूँ लगा अब डेढ़ अढ़य्या।
भूखे रहैं तन ढांक सकैं नहिं भारत के सिसु लोग लुगैय्या।।

1. हेमंतकुमारी चौधरानी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 302

टेर सुनी द्रुपदी की 'रमा' गये बेगि लई पति राखि कन्हैया।
दीनदयाल दया करिये कस लाज बिगारत लाज रखैया।"[1]

इन पंक्तियों में ईश्वरीय शक्ति के प्रति कवयित्रत्री की आस्था और आस्तिकता की भावना प्रकट हुई है। कवयित्री राजदेवी की कविताओं में भी यह भाव विद्यमान है। हेमंतकुमारी चौधरानी जी का एक कीर्तन भी उपलब्ध है। रणछोर कुंवरि की कविताएँ भी भक्ति पर आधारित है। इन सभी की पंक्तियों में पापों से रक्षा कारक के रूप में ईश्वर का स्मरण करते हुए उसके अनुग्रह की कामना की गई है। समग्रतः हम कह सकते हैं कि इस युग में ईश्वर मानव मात्र का सामान्य शरणस्थल या आश्रय हो चुका था। युग-धर्म की पहचान इनमें विद्यामान है।

उपर्युक्त इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कवयित्रियों की कविताओं में (प्राप्त कविताओं में) प्रेम के पुट भी मिलते हैं। प्रियंवदा देवी की 'पपीहा', 'वियोग' आदि कविताओं में प्रेम का स्पर्श महसूस होता है।

2.5 भाषागत विशेषताएँ

मानव के विकास के साथ ही साथ उसकी चेतना का भी विकास होता गया। विकसित चेतना के अनुसार ही उसकी रचना प्रक्रिया भी विकसित होती गयी। जिस युग में जिस प्रकार की चेतना रही है उस युग में उसी प्रकार के शिल्प की अभिव्यक्ति हुई। एक साहित्यकार भाषा (अभिव्यक्ति का साधन) का इतनी कुशलता से प्रयोग करता है कि वह मानव-हृदय पर प्रत्यक्ष प्रभाव छोड़ता है।

1. रमादेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 213

आलोच्य काल के भारतेन्दु युगीन कवि देशकाल के अनुकूल नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त् हुए, पर भाषा उन्होंने परंपरा से चली आती हुई ब्रजभाषा ही रखी और छंद भी वे ही लिये जो ब्रजभाषा में प्रचलित थे। रीतिकाल में रसों और अलंकारों के उदाहरणों के रूप में रचना होने से और कुछ छंदों की परिपाटी बंध जाने से हिन्दी कविता जकड़-सी उठी थी। द्विवेदी युग में आकर बोलचाल की भाषा अर्थात् खड़ीबोली ही काव्य की मुख्य भाषा बन गयी। द्विवेदी-युग के आरंभ में खड़ीबोली अनगढ़, शुष्क और अस्थिर-स्वरूप थी, किन्तु धीरे-धीरे उसका स्वरूप निश्चित, सुघड़ और मधुर बनता चला गया। खड़ीबोली हिन्दी में लिखित काव्य को ही हमने यहाँ आधुनिक कविता के अंतर्गत लिया है।

आलोच्य काल के खड़ीबोली के कवियों ने विविध छंदों का भी कुशल प्रयोग किया है। इनके काव्य में हिन्दी के ही नहीं, संस्कृत और उर्दू के भी अनेक छंद प्रयुक्त हैं। ब्रजभाषा के चिर-व्यवहृत छंदों-कवित्त और सवैया-में भी सुष्ठु रचना हुई। प्रस्तुत काल में महाकाव्य, खंडकाव्य, लघु पद्य कथा, मुक्तक, प्रबंध-मुक्तक आदि विविध काव्य-विधाओं में प्रचुर रचना हुई। इस काल की काव्यरचनाएँ काव्यशास्त्रीय पद्धति पर आधारित होने के कारण यह बात स्पष्ट है कि तत्कालीन कवयित्रियाँ इसी आधार पर काव्य-रचना केलिए बाध्य थीं। इनकी कविताओं में रीतिकालीन ब्रजभाषा काव्य-परिपाटी का प्रभाव यत्र-तत्र द्रष्टव्य है।

खड़ीबोली के भाषा-सौन्दर्य, मार्दव और अभिव्यंजना-क्षमता के दर्शन इनकी कविताओं में विद्यमान है। इस काल में वर्ण्य विषय के समान ही छंद के क्षेत्र में भी वैविध्य मिलता है। दोहा, कविता या सवैया के प्रयोग तक ही कवि सीमित नहीं रहे वरन् रोला, छप्पय, कुण्डलिया, सार, सरसी, गीतिका, हरिगीतिका, ताटंक, लावनी, वीर आदि छंद भी कुशलतापूर्वक व्यवहृत हुए। हिन्दी के ही नहीं, संस्कृत के वर्णिक छंदों और उर्दू को भी अपनाया गया। तत्कालीन कवयित्रियों की प्राप्त कविताओं के आधार पर उनके कुछ भाषागत वैशिष्ट्य समने आये हैं।

मानव हृदय में अनेक प्रकार के भाव प्रकट होते हैं। इन सभी भावों को अपने संपूर्ण रूप में अभिव्यक्त करना कठिन होता है। इसीलिए उसको थोड़े शब्दों में अभिव्यक्त करना एक बहुत बड़ी कला है। मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों आदि के प्रयोग इसी उद्देश्य की संपूर्ति-हेतु होता है। इनका प्रयोग किसी भी साहित्यकार के मनोभाव-अभिव्यंजन की कुशलता का परिचायक है।

इन कवयित्रियों की कविताओं में भी ऐसे अनेक अनेक मुहावरे देखने को मिलते हैं। 'पत्थर का दिल', 'चाल चलना', 'तंग गली', 'सर हिलाना', 'विपरीत समय', पांव घिस जाना', 'कलेजा फटना', 'भीष्म अत्याचार' आदि कुछ ऐसे ही मुहावरे हैं। मुहावरों का यह प्रयोग भाव-प्रकाशन में तीव्रता, कुशलता एवं परिपक्वता लाने में सहायक है।

इसी प्रकार भावों की अभिव्यंजना में लोकोक्तियाँ सहायक सिद्ध होती हैं। मुहावरा और लोकेक्ति में अन्तर है। मुहावरा पूर्ण वाक्य नहीं होता वरन् वह वाक्यांश होता है। लोकोक्ति पूर्ण वाक्य है। लोकोक्ति या कहावत का संबंध परिणाम से होता है, परंतु मुहावरे का संबंध परिणाम से नहीं होता। लोकोक्ति के प्रयोग से कहने का संपूर्ण भाव प्रकट हो जाता है परंतु मुहावरों द्वारा संपूर्ण भाव तब तक प्रकट नहीं होता, जब तक उसे वाक्य में प्रयोग न किया जाय अतः मुहावरों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, परंतु लोकोक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व है। यहाँ कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में काव्यात्मक ढंग से लोकोक्तियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। बुन्देलबाला की कविताओं में प्राप्त उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

"अहंकार सर्वदा जगत् में मुँह की खाता आया है।
नय नम्रता मान पाते हैं सबने यही बताया है।"[1]

इसी तरह-

"इंद्रिय-विषय शिखर दूरहिं ते कहा मनोरम लगते हैं।
निकट जाय जाँचे समझोगे, रूप हरामी ठगते हैं।"[2]

इन पंक्तियों में यह तथ्य प्रकट हुआ है कि 'हर चकमत चीज़ सोना नहीं होती' एक और उदाहरण देखें तो-

"प्रकृति-नियम यह सदा सत्य है, कैसे इसे मिटाओगे।
जग में जैसा कर्म, करोगे वैसा ही फल पाओगे।"[3]

---

1. बुन्देलबाला- स्त्री काव्यधारा, पृ. 189
2. वही - पृ. 189
3. वही - पृ. 189

यहाँ 'जैसी करनी वैसी भरनी' वाली बात सामने आई है।

इस तरह लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता, सक्षमता, रोचकता और ललितता लाने में कवयित्रियाँ सफल दिखाई देती हैं।

सूक्तियों की बात भी कुछ ऐसी ही है। समाज में रहकर मनुष्य अनेक प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। कभी उसे दुख प्राप्त होता है और कभी सुख। जीवन के अनेकानेक अनुभवों को मनुष्य सूत्र रूप में प्रकट करना चाहता है। ये सूत्र ही सूक्तियों के नाम से अभिहित किए जाते हैं। सूक्तियों के द्वारा जीवन के अनेक सारपूर्ण तथ्यों का परिचय प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति स्वयं में चमत्कृत बनने का प्रयास करता है। साहित्यकार सूक्तियों के प्रयोग द्वारा भाषा को समृद्ध बनाता है। इन कवयित्रियों की कविताओं में भी सूक्तियों के प्रयोग मिलते हैं।

बुन्देलबाला की 'सावधान' नामक कविता में उपदेशात्मक शैली में युवकों केलिए सूक्ति मिलती है-

"सर्वकाज करने के पहले पूछो अपने दिल से आप।
'इसका करना इस दुनिया में, पुण्य मानते हैं या पाप।।"
जो उत्तर दिल देय तुम्हारा उसे समझ लो अच्छी भांति।
काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दुखों की पांति।।"[1]

गोपाल देवी की कविता 'भेड़ और भेड़िया" में -

1. बुन्देलबाला- स्त्री काव्यधारा, पृ. 189

"जो ज़ालिम होता है उससे बस नहिं चलता एक
करने को वह ज़ुल्म, बहाने लेता ढूँढ अनेक।"[1]

और रमा देवी की पंक्तियाँ -

"'रमा' क्रोध जड़ पाप की, क्षमा धर्म का बीज।
योग क्षमा तप क्षमा सों, जाये शत्रु पसीज।।"[2]

-सूक्तियों में मौलिक चमत्कार है। ये भाषा को अत्यंत भावपूर्ण बना देते हैं।

भाषा पर कई बातों का प्रभाव पड़ता है। भाषा का वर्तमान रूप युगों-युगों के प्रभाव एवं परिवर्तन का परिणाम है। हिन्दी भाषा समयानुसार भारतवर्ष के अनेकानेक सासकों के अधीनस्थ रहकर प्रभावित, परिवर्तित एवं विकसित होती रही है। इसीलिए इस भाषा में अनेक दूसरी भाषाएँ आकर मिलती रही हैं। समाजगत परिवेशों, संस्कारों एवं अनुभूतियों का प्रभाव भाषा पर अवश्य पड़ता है। कवयित्रियों की काव्यभाषा भी विभिन्न प्रभावों से अछूती न रह सकी। युगानुरूप साहित्यिक भाषा के प्रयोग के साथ ही साथ उन्होंने अन्य भाषाओं के शब्दों को भी आत्मसात किया। उनकी भाषा पर मुख्य रूप से देशी और विदेशी दो प्रकार के प्रभाव पड़े।

वे भाषाएँ जिनका उद्‌भव देश के अन्तर्गत हुआ है, देशी भाषाएँ कही जा सकती है। इसके अंतर्गत संस्कृत, उर्दु, बंगला आदि को रखा जा सकता है।

1. गोपालदेवी -स्त्री काव्यधारा, पृ. 163
2. रमादेवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 215

इनकी कविताओं में 'सृष्टि', 'उत्तम', 'दर्शन', 'क्षुधित', 'द्युतिमान', 'मृत्यु', 'विकल्प' 'कोष', कष्ट' 'त्रास', 'त्यागी', 'कर्तव्य', 'श्रेष्ठ', 'नित्य', दृग, 'धर्म उत्कर्ष आदि संस्कृत शब्दों और 'खवाब', 'ख़ैरात', 'ऐश', 'नेक', 'नीयत', 'वक्त', 'ख़ुदबखुद', 'जुल्म', 'ज़ाहिर', 'रौनक', 'नाज़', 'गम', 'मुल्क', 'ज़बान', ख़ातिर आदि उर्दू-शब्दों का प्रयोग मिलता है।

भारतवर्ष अनेक भाषा-भाषियों का निवास-स्थल है। अतः हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़ना आवश्यक है। यहाँ की अनेक जातियाँ दूसरे देशों से आकर यहां बस गई हैं। उनकी भाषा का प्रभाव भी हिन्दी पर परिलक्षित होता है। ये विदेशी भाषाएँ मुख्य रूप से अंग्रेज़ी, फारसी और अरबी हैं। इन भाषाओं का हिन्दी पर विशेष प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष में अंग्रेज़ों के आगमन के साथ ही साथ एक नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। हमारा खान-पान, वेश-भूषा, आचार-व्यवहार सभी पर अंग्रेज़ों की संस्कृति का प्रभाव पड़ा। अंग्रेज़ी के अनेक शब्दों को थोड़े हेर-फेर के साथ हिन्दी में प्रयोग किया जाने लगा। कवयित्रियों ने अनेक स्थलों पर अंग्रेज़ी, फारसी, अरबी शब्दों का प्रयोग किया है। अंग्रेज़ी के 'कौंसिल', 'डिस्टिक बोर्ड', 'मेम्बरी', 'यूथ', 'पोज़िशन' आदि अंग्रेज़ी शब्दों और 'खूब', 'बेगुनाह', 'शान', आदि पेर्श्यन शब्दों और 'आफताब', 'गिरफ्तारी' आदि फारसी शब्दों और 'जालिम', 'रहम', 'किस्मत', 'शैतान', 'अहम', 'जौहर', 'खिद्मत', 'महल', 'गरीबी', 'गुलाम' आदि अरबी शब्दों के प्रयोग इनकी कविताओं में यत्र-तत्र मिलते हैं।

तत्कालीन काव्यों में बिम्ब-प्रतीकों एवं अलंकारों के प्रयोग एक सामान्य प्रवृत्ति रही है। प्रतीकों का प्रयोग भाव-स्पष्टता केलिए किया जाता है। प्रतीक ऐसी वस्तुओं का अभिव्यंजन करता है, जिससे हम उसके परे दूसरी वस्तु का अनुभव कर लेते हैं। प्रियंवदा देवी की 'अहंकार' शीर्षक कविता में तत्कालीन सामाजिक दुर्दशा का वर्णन करते हुए कवयित्री की एक पंक्ति ऐसी है-

"बाग में घुस आया शैतान"[1]

यहाँ 'बाग' शब्द भारत के लिए प्रयुक्त प्रतीक और 'शैतान' शब्द विदेशियों केलिए प्रयुक्त प्रतीक का एहसास कराता है। साहित्यकार की अभिव्यक्ति जिस अनिर्वचनीय तत्त्व की ओर संकेत करती है उसे प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

प्राचीन काल से ही अनेक साहित्यकारों ने काव्य - श्री-वृद्धि-हेतु अलंकारों का प्रयोग किया। हिन्दी के विद्वानों ने भी साहित्य में अलंकारों के प्रयोग को आवश्यक माना। इनका प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए कि भाषा क्लिष्ट न हो जाय। इस बात को ध्यान में रखकर ही कवयित्रियों ने भी अलंकारों का समुचित प्रयोग किया।

"बाल रवि के क्षीण अरुण प्रकाश में
तारकों की मालिका जिस भांति हो।
यवन -रवि-युत हिन्द के आकाश में,
ठीक वैसी आर्य नृप की पांति हो।"[2]

---

1. प्रियंवदा देवी -स्त्री काव्यधारा, पृ. 185
2. राजरानी देवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 232

यहाँ कवयित्री देश की दुर्दशा पर प्रकाश डालते हुए विदेशी सत्ता के अधीन आर्य राजाओं की स्थिति की ओर संकेत करती है। अर्थात् जिस प्रकार सूर्योदय के समय तारकों की पंक्ति स्पष्ट दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार यवनों की प्रभा के अधीन भारत के राजाओं की पंक्ति भी, दिखाई दे रही है। यहाँ उपमा अलंकार का प्रयोग है। 'कुमारी संयुक्ता' शीर्षक कविता में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयाग किया है, कवयित्री राजरानी देवी ने।

राजा जयचंद की पुत्री के जन्मोत्सव के संदर्भ में शिशु की बाल छवि का वर्णन करते हुए कहती हैं-

"चन्द्रमा का सार मानो भर दिया
बालिका की नवल सुन्दर देह में।
स्वयं श्री ने वास मानों कर लिया
सरल उसके कांतिमय मुख गेह में।।
नेत्र मानो दो रुचिर राजीव थे,
जो रखे हों चन्द्रमा के अंक में।
अंक मानो सुमन-पुंज सजीव थे
जो सजे हों छवि सहित पर्यंक में।।'[1]

अर्थात् बालिका की सुन्दर देह को देखकर ऐसा लगता है मानो चन्द्रमा का सार भर दिया हो। शिशु के नेत्रों को देखकर यह संदेह होता है कि कहीं ये चन्द्रमा के गोद में रखे हुए सुन्दर कमल तो नहीं है?

---

1. राजरानी देवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 234

इनके अलंकार-प्रयोग साहित्य-शोभा-वृद्धि में सहायक हैं। आलोच्य युगीन कवयित्रियों नें (कवियों ने भी) अलंकारों को साध्य न मानकर उन्हें अभिव्यक्ति का एक साधन माना है।

साहित्यकार अपनी प्रतिभा के अनुसार अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। भावाभिव्यक्ति की इसी कला को शैली कहते हैं। यह मनुष्य के मस्तिष्क की स्वाभाविक उपज है। जिस शैली में जितनी अधिक स्पष्टता होगी, वह उतनी ही प्रभावमय होगी। कवयित्रियों की कुछ कविताओं में अस्पष्टता महसूस होते हुए भी ज़्यादातर कविताएँ स्पष्ट एवं सटीक है। वैसे भाषा की क्लिष्टता और सरलता तो पाठकों की योग्यता पर निर्भर है। जहाँ जो शैली उचित है कवयित्रियों ने उसी के अनुरूप ओजपूर्ण काव्यात्मक, नाट्य, आदेशात्मक, उपदेशात्मक, संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया है।

पानी-ठानी, हनन-यतन, सहम-रहम, अंग-प्रसंग जैसे बहुत से अनुप्रास युक्त शब्दों के प्रयोग एवं अनेक विशेषणात्मक शब्दों के प्रयोग से कवयित्रियों ने शिल्प चेतना को अत्यंत विकसित और बोधगम्य बनाया है। अपनी भाषाशैली के कारण ये कविताएँ हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखने योग्य है।

निष्कर्ष

कवयित्रियों के इस विशेष संदर्भ में आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ नये जागरण से संपूर्ण प्रभावित रहा। सन् 1857 की क्रांति ने राष्ट्रीय चेतना

को एक नयी शक्ति दी। इस प्रकार का सामूहिक जागरण सर्वदा समाज की सर्जनात्मक प्रतिभा को नया जीवन-प्रधान, व्यापक दृष्टिकोण देने में समर्थ होता है। भारतीय जीवन में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्ष नयी शक्ति के संचार में समर्थ हुए। जीवन में नया आत्मबोध और आत्मविश्वास पैदा हुआ। इसी का परिणाम था स्त्री कविताएँ भी। आलोच्य युग की कविताएँ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताएँ हैं। मातृभूमि केलिए सर्वस्व-बलिदान, स्वार्थ त्याग तथा पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने की अमोघ प्रेरणा देकर राष्ट्रीय भावना को विकसित करना इस युग के कवियों केलिए उनका ध्येय था। इस युग की कवयित्रियाँ भी इस बात से पीछे नहीं थीं। उनकी ये कविताएँ ही इसी का प्रमाण है। आलोच्य काल की जो काव्य-प्रवृत्तियाँ इतिहास से प्राप्त होती हैं, वे इनकी कविताओं के अध्ययन के ज़रिए हमें प्राप्त हुईं। कहना यह चाहिए कि राष्ट्रीयता, नीति और आदर्श, सामान्य मानवता, आदि जो प्रवृत्तियाँ इतिहास में रेखांकित हुई हैं उनके अतिरिक्त एक स्त्री होकर आधुनिक शिक्षा प्राप्त चेतना-संपन्न नारी को इनकी कविता में स्थान मिला है। वैसे तत्कालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में स्त्री के प्रति सहानुभूतिपरक दृष्टि तो अपनायी है। किन्तु ये कविताएँ इस बात को प्रमाणित कर रही हैं कि उस वातावरण में शिक्षित-सचेत नारियाँ जन्म ले चुकी थीं। अपनी लेखनी भी चला रही थीं। किन्तु किसी भी इतिहासकार का ध्यान उनकी ओर नहीं गया या फिर नज़रअंदाज़ कर दिया गया। अपने हक केलिए, अपनी अस्मिता केलिए आवाज़ उठानेवाली स्त्री का आक्रोश इनकी कविताओं में द्रष्टव्य है। यह

आलोच्य युग की एक नयी प्रवत्ति है। किसी भी इतिहास में इसको रेखांकित नहीं किया गया। पूर्वकालीन ब्रजभाषा काव्य का प्रभाव इनकी कविताओं में भी देखने को मिला है। इनकी कविताएँ भक्ति से प्रभावित है या फिर यह कह सकते हैं कि कवयित्रियाँ भगवान पर आस्था रखनेवाली हैं। वात्सल्य, प्रकृति आदि को लेकर इनकी कल्पना मनोहारी है। प्रकृति को इन्होंने वैज्ञानिक युग की नयी दृष्टि से देखा। आलोच्य युगीन कविताएँ काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर लिखी गयी थीं। इसीलिए ये कवयित्रियाँ भी इनसे प्रभावित हुए बिना, इन्हें छुए बिना नहीं रह पायीं। इन्होंने भी अपनी शैली में काव्य शिल्पों को गढ़ा। आलोच्य युगीन कवियों की भांति कवयित्रियों ने भी वस्तु और शिल्प की दृष्टि से परिपक्व रचनाएँ की हैं। फिर भी यह बात हमारे मन में शंका पैदा करती है कि इतना कुछ लिखने के बाद भी इनके प्रति उपेक्षा का मनोभाव क्यों दिखाया गया ?

❖ ❖ ❖

तीसरा अध्याय

छायावाद युगीन स्त्री काव्यधारा

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में छायावाद का स्थान सुनिश्चित है। छायावाद-युग की सीमा निर्धारित की जा चुकी है और छायावादी काव्य की उपलब्धियों का रेखांकन भी हो चुका है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि छायावाद युग आधुनिक हिन्दी कविता का एक स्वर्णिम युग रहा है। छायावाद के कवियों ने हिन्दी काव्य को जो भावात्मक वैभव एवं कलात्मक परिपूर्णता प्रदान की, वह आज के अपेक्षाकृत अधिक व्यापक काव्यंदोलनों केलिए स्पृहा की वस्तु है। जहाँ तक कवयित्रियों की बात है इस युग में एकमात्र छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की रचनाओं से ही हिन्दी साहित्येतिहास ने हमारा परिचय कराया है। इनके अतिरिक्त उस समय की किसी अन्य कवयित्री का नाम अब तक हमने नहीं सुना था, जबकि वास्तविकता कुछ और है। सुमित्रा कुमारी सिन्हा, तारा पांडेय, पुरुषार्थवती, रामकुमारी चौहान, होमवती देवी, राजेश्वरी देवी त्रिवेदी 'नलिनी', विद्यावती कोकिल, रामेश्वरी देवी 'चकोरी', रामेश्वरी देवी गोयल, रत्नकुमारी देवी 'काव्यतीर्थ', हीरादेवी चतुर्वेदी, शकुंतला देवी -खरे, राजकुमारी श्रीवास्तव, विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजु', रत्नकुंवरि देवी, लीलावती-संवर 'सत्य', रामप्यारी श्रीवास्तव, प्रेमप्यारी देवी, चंचल कुमारी आदि वे कवयित्रियाँ हैं जो महादेवी के समकालीन मानी जाती हैं। लेकिन इनकी ओर इतिहासकारों का ध्यान नहीं गया या, उन्होंने ध्यान नहीं दिया। जब महादेवी वर्मा छायावादी काव्यधारा का उत्तुंग शिखर चढ़ रही थी, तब ये कवयित्रियाँ अपने समय से सरोकार करती हुई लिख रही थीं। पूर्ववर्ती कवयित्रियों की तरह इनकी भी संपूर्ण रचनाएँ उपलब्ध नहीं हुई।

प्राप्त कविताओं के आधार पर तत्कालीन कवयित्रियों की कविताओं का प्रवृत्तिगत विश्लेषण इस अध्याय के तहत किया जा रहा है।

3.1 देशप्रेम की भावना

हिन्दी कविता के विकास में छायावाद के दौर में भी भारत अंग्रेज़ों के अधीन था। अर्थात् भारत परतंत्र था । हम यहां कतिपय उपशीर्षकों के आधार पर विवेच्य युगीन काव्य में देशप्रेम से जुड़े आयामों का दिग्दर्शन कराने का प्रयास करेंगे।

3.1.1 देश का गौरव गान

अपनी जन्मभूमि के प्रति अथाह मोह का भाव ही प्रायः सभी भारतीयों को एक सूत्र में पिरोता आया है। इस काल के कवियों में तथ्या कवयित्रियों में स्वदेश भारत की भूमि को एक माता के रूप में सम्मानित करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। कवयित्री महादेवी वर्मा की ये पंक्तियाँ -

"मस्तक पर शोभित शतदल सा
यह हिमगिरि है शोभा पाता,
नीलम-मोती की माला सा
गंगा-यमुना जल लहराता
वात्सल्यमयी तू स्नेहमयी
भारत जननी भारत माता।"[1]

-देश के प्रति उनके आत्म भाव को प्रकट करती हैं। राष्ट्रीय संपत्ति

---

1. महादेवी वर्मा - प्रथम आयाम, पृ. 40

के प्रति अपना अगाध प्रेम प्रकट करती हैं। भारत की भूमि जिसकी प्रकृति हरी भरी, जहाँ विशाल पर्वत स्थित है और गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियाँ, उसी भारत देश की, पुण्य भूमि और धरती माता की, कवयित्री जय बोलती हैं। महादेवीजी के 'प्रथम आयाम' संग्रह में उनकी देशप्रेम संबंधी कविताएँ संकलित हैं।

समस्त देश की प्रकृति का वैभव विभिन्न कविताओं में अत्यंत मनोहारी ढंग से चित्रित किया और देश के सांस्कृति गौरव के गीत गाये ।

3.1.2 स्वतंत्रता की चाह

वर्षों से पराधीनता की श्रृंखला में जकड़ी हुई जनता निराशा के गहन तिमिर में आलोक-किरण ढूँढने का प्रयास कर रही थी। अंग्रेज़ी शासन के दमन चक्र से पिसता हुआ भारत वर्ष निरंतर स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए संघर्ष रत रहा। कहीं तो क्रांतिकारियों के संगठन सक्रिय रहे और कहीं महात्मा गांधी के देश व्यापी सत्याग्रह। इस प्रकार के वातावरण में भारतवासी मुक्ति की साँस लेने केलिए छटपटाते रहे और शासन ने उन्हें पीसने में कोई कमी नहीं आने दी। इन परिस्थितियों का देशवासियों को ज्ञान कराने केलिए हमारी कवयित्रियाँ सामने आयीं और देश की दीन दशा से जन साधारण को परिचित कराया तथा इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उनमें राष्ट्रप्रेम की दबी हुई चिनगारी को उभारा। इससे आत्म विश्वास पाकर कवयित्री कह रही हैं -

"देशानुराग का पागलपन
रग-रग में फड़काकर धड़कन
बलिदेवी पर बलि दे जीवन
भारत स्वाधीन बनाएगा।"[1]

कवयित्री देश की वर्तमान स्थिति से दुखी हैं और कल्पना में ही उन्हें विश्वास होने लगता है कि पराधीनता का अंधकार अब समाप्ति की ओर अग्रसर हैं। कवयित्री ने देश की वर्तमान दशा का उत्तरदायित्व किसी और को नहीं देशवासियों को ही दिया है। उनके आलस्य और स्वार्थ की भावनाओं के स्थान पर कवयित्री देशानुराग को प्रतिष्ठित करने की ओर संकेत करती हैं जो आगे चलकर भारत को स्वाधीन बनाएगा।

इस युग की कुछ कवयित्रियों ने ईश्वर से प्रार्थना करते हुए देश के जो करुणाजनक चित्र खींचे हैं वे सदृश्य पाठक के हृदय पर सीधा प्रभाव डालने में सफल रहे हैं। इस स्थिति में मुक्ति दिलाने केलिए ही ईश्वर से प्रार्थनाएँ की गई हैं। कवयित्री राजकुमारी श्रीवास्तव 'कृष्णाष्टमी' के दिन भगवान श्रीकृष्ण से बिनती करती हैं-

"पधारे एक कंस के हेतु, लिया बन्दी गृह में अवतार।
आज भारत में अगणित कंस, कर रहे भारी अत्याचार।।
सुना दो श्रीमुख से फिर आज, कर्ममय गीता का वह ज्ञान।
अर्थ का हम कर रहे अनर्थ, धर्म के तत्वों से अनजान।।
हृदय में साहस का संचार, करे श्रीकृष्ण तुम्हारी मूर्ति।
तुम्हारा जन्म दिवस यह आज जगा दे जीवन की स्फूर्ति।"[2]

---

1. रामेश्वरी देवी गोयल - स्त्री काव्यधारा, पृ. 246
2. राजकुमारी श्रीवास्तव - स्त्री काव्यधारा, पृ. 219

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि ये कवयित्रियाँ देश की वर्तमान दशा पर अत्यधिक क्षुब्ध हैं। कवयित्री इस भारत-भूमि पर एक बार फिर से भगवान श्रीकृष्ण के अवतार लेने की आशा करती हैं ताकि अपने कर्ममय गीता के ज्ञान से अंग्रेज़ी शासक रूपी कंसों का विनाश कर डालें। महादेवी वर्मा की 'प्रथम आयाम' नामक कविता में भी भगवान के अवतार का समर्थन किया गया है। कहीं ईश्वर से स्वतंत्रता की आशा रखी गयी है तो कहीं स्वच्छंद घनश्याम से स्वतंत्रता का सुधारस बरसाने को कहा गया है (पुरुषार्थवती की कविता - 'मीठा जल बरसाने वाले') और कहीं पर पराधीन भारत पर वसंत के आगमन की उम्मीद रखी गयी है (राजेश्वरी त्रिवेदी नलिनी की कविता 'बन्दी की आह')।

ये सारी बातें इसी ओर इशारा कर रही है कि कोई भी भारतवासी परतंत्रता की स्थिति को बहदाश्त नहीं कर पा रहा था। प्रत्येक के मन में एक सुवर्ण, स्वतंत्र प्रभात की आशा भरी हुई थी।

3.1.3 राष्ट्रोद्बोधन के स्वर

विवेच्य काल में भी काव्य में स्वातंत्र्य-चेतना का उन्मेष देखने को मिलता है। यही वह काल है कि जब सब भारतीयों के संघर्ष का सफल परिणाम स्वतंत्रता के रूप में सन् 1947 ई. में 15 अगस्त को मिल जाता है।

परतंत्रता के दुखों को देखकर ही इस काल की कवयित्रियों ने राष्ट्रोद्बोधन के स्वर बुलंद किये और स्वातंत्र्य चेतना का रागालाप किया।

इस संदर्भ में पहले ही पर्याप्त विवेचन हो चुका है, अतः यहाँ कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। कवयित्री पुरुषार्थवती की ये पंक्तियाँ-

"उठो, उठो, साहस से वीरो, मत मन में भय खाओ।
वीर वेष से सज्जित होकर, रण प्रांगण में जाओ।।
प्रलयंकर संगीत समर की स्वर-लहरी में गाओ।
करधृत शुचि करवाल, अलंकृत होकर, फाग मचाओ।।
शौर्य-तेज से अपने जग में, विजय ध्वजा फहराओ।
दुर्बल-दिल में साहस भर दो पांडव नृत्य नचाओ।।
सुप्त विश्व को जागृत कर शुचि वीर संदेश सुनाओ।"[1]

-ओजस्वी वाणी में भारतीयों को उद्बोधित कर रही हैं। उन्होंने भारतीयों को स्वातंत्र्य-प्राप्ति केलिए हर तरह से तैयार होने केलिए कहा है और इस बात की ओर भी संकेत किया है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति केलिए मन से भय को उखाड़ फेंकने की ज़रूरत है। वे कहती हैं -

"देश-वेदि पर कर दो मिलकर, तन मन अर्पण प्राण।
कष्ट-क्लेश का भारत के हो जाने पर अवसान।।
तभी होगा भारत-उत्थान।"[2]

यहाँ कवयित्री एक नव निर्माण की प्रेरणा देती हैं जिसकेलिए संघर्ष की ज़रूरत है। आत्म समर्पण की अनिवार्यता है। पराधीन भारतीय समाज में व्याप्त कष्ट-क्लेशों का अंत जब होगा तब जाकर भारत का उत्थान संभव होगा। तब जाकर भारत को आज़ादी मिलेगी। इस आज़ादी केलिए गुलामी के अंधकार में कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा हमारे मन में दीपक जलाने का

1. पुरुषार्थवती - स्त्री काव्यधारा, पृ. 181
2. वही, पृ. 182

आह्वान करती है :-

"दीपों ! जलो, जलो।
x x x
है दूर नहीं वह देश
रखना तुम ज्योति अशेष
x x x
देखोगे युग का भोर
पाओगे मंज़िल - छोर,
कोटि शिखा बन कर ज्वाला की
दीपो ! जलो, जलो।"[1]

ताकि हमारे मन में राष्ट्रीय चेतना की ज्वाला भड़क उठे और देश को आज़ादी का भोर दिखा पाए।

यह एक वास्तविकता थी कि पराधीनता की श्रृंखला में जकडे हुए भारतवासी निराशा के गहन तिमिर में आलोक-किरण ढूँढने का प्रयास कर रहे थे। इसी स्थिति में रचनाकारों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की। स्वतंत्रता से प्रेम, और वह भी निस्वार्थ और निश्चल प्रेम जब तक किसी व्यक्ति में न होगा तब तक वह अपने देश केलिए न तो स्वयं बलिदान करने केलिए ही कभी तैयार होगा और न राष्ट्रोद्बोधन के गीत गाएगा या कविताएँ लिखकर सब भारतीयों को जगाएगा। यहाँ ये कवयित्रियाँ सार्थक निकलती हैं। इन्होंने अपनी कविताओं के ज़रिए पराधीनता या दासता का बोध कराया है।

3.1.4 आत्मबलिदान की भावना

जिसे पराधीनता का बोध हो, जिसने अपने भय पर नियंत्रण पाया हो

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - बोलों के देवता, पृ. 149

उसमें स्वाधीनता की खातिर आत्मबलिदन की भावना अवश्य जागेगी। आलोच्य काल का 'बलिदान' भारतीय स्वतंत्रता के रूप में प्रतिफलित हुआ कवयित्रियों की कविताओं में देशप्रेम को लेकर जो वीर भावना प्रकट हुई है, इसमें विरोधी के संहार करने का उत्साह नहीं है। कवयित्री रामकुमारी देवी चौहान अपनी कविता में भारत के प्राकृतिक वैभव का गुणगान करते हुए कहती हैं-

"उस भारत जननी के चरणों
पर जग के सुख सारे।
लुट जाने दो हंसते-हँसते,
जीवन वैभव प्यारे।।
इसका गुण-गण मान बने
यदि जीवन गान हमारा।
प्राणों की बलिदान दीप्ति से
चमक उठे वह तारा।"[1]

इन पंक्तियों में विरोधी का संहार करने का उत्साह नहीं है। इसमें आक्रमण की भावना न होकर बलिदान की ही भावना है और यह मूलतः 'अहिंसा' का प्रभाव है जो निश्चित रूप से गाँधी के विचारों का प्रभाव है। आत्मबलिदान की यह भावना कवयित्री महादेवी वर्मा में कुछ इस हद तक बढ़ गयी कि उन्होंने कह डाला-

"वंदिनी जननी! तुझे
हम मुक्त कर देंगे।
x x x
रक्त से अपने खिला कर

1. रामकुमारी देवी चौहान - स्त्री काव्यधारा, पृ. 238

लाल बादल
तिमिर को अब हम उषा आरक्त
कर देंगे।
तुझे हम मुक्त कर देंगे।"[1]

यहाँ महादेवी वर्मा का देशप्रेमी व्यक्तित्व तेजोदीप्त हो उठता है। मात्र एक छायावादी कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठित महादेवी वर्मा केलिए ये पंक्तियाँ एक नया आयाम प्रदान कर रही हैं। 'प्रथम आयाम' नामक उनके संग्रह में देशप्रेम संबंधी कविताएँ संकलित हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में दीपक के स्थान पर रक्त से लाल बादल खिलाकर तिमिर ग्रस्त देश को उषा आरक्त करने का संकेत मिलता है।

कितने ही कवियों ने अपनी कविताओं में इस आत्मबलिदान के मार्ग को स्वतंत्रता प्राप्ति के हेतु सर्वश्रेष्ठ मार्ग के रूप में चुन लेने का भारतीयों से स्पष्ट आह्वान किया था। उपर्युक्त सभी कविताएँ यही संकेत कर रही हैं कि परतंत्रता की स्थिति में किसी भी कवि केलिए, उनकी वाणी देश की स्वतंत्रता की खातिर बुलंद हुए बिना नहीं रह पायी।

3.2 नारी चेतना

आधुनिक संदर्भ में भारत में स्त्री चेतना के आरंभ की पहचान नवजागरण के उस अंकुर से की जा सकती है जिससे पराधीनता का बोध और उससे मुक्ति की अदम्य कामना प्रस्फुटित हो रही थी। स्त्री मुक्ति की

---

1. महादेवी वर्मा - महादेवी साहित्य (खंड -2), पृ. 37

अवधारणा भारतीय इतिहास में नई नहीं है, इसकी अनुगूंज नवजागरण काल में सक्रिय हिस्सा लेनेवाले स्त्री संघर्षों में सुनी जा सकती है। व्यक्तिगत स्तर पर इन स्त्रियों ने न केवल अपनी-अपनी लड़ाइयाँ लडीं, बल्कि इनकी चिन्ता पूरी स्त्री जाति को लेकर है। स्त्रियों के जागरण के संदर्भ में भारत के समाज सुधारकों ने काफी प्रयास किए हैं। किन्तु उनकी भी एक सीमा थी। जो चेतना उनमें अत्पन्न हुई उसके मूल में स्त्री-शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस नव चेतना के कारण स्त्री समाज, इतिहास और शास्त्र को, हर चीज़ को अपनी जगह से अपनी नज़रिए से देखने लगा। स्त्री चेतना के उभार से हिन्दी की कई रचनाओं और साहित्यिक पक्षों को, एक ऐसी जगह से देखने की संभावना खुल गई है; जहाँ से इन चीज़ों को पहले कभी नहीं देखा गया। भुक्त भोगी होने के कारण स्त्री, समाज के रीति-रिवाज़ों, परंपराओं के उन पक्षों को महसूस करने लगी है जिसने उसे सदियों से शोषित बनाए रखा है। हिन्दी साहित्य में संभवतः पहली बार मीरा की रचनाओं में ही स्त्री चेतना और आत्मबोध का सशक्त स्वर सुनाई पड़ता है। मीरा द्वारा स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान और उसकेलिए जीवनपर्यंत संघर्ष ही वह तथ्य है, जो उन्हें आधुनिक स्त्री चेतना से जोड़ता है। हिन्दी की आधुनिक कवयित्रियों की स्वचेतनात्मक कविताओं में भी स्त्री मुक्ति और संघर्ष के कई आयाम सामने आते हैं।

3.2.1 जागृत नारी

काल के प्रवाह ने जैसा जिसको बोध दिया है उसी बोध की उपज का

अनुभव अपने ढंग से उसे परिभाषा में गढ़ देता है। जहाँ तक नारी का प्रश्न है उसकी वही पहचान है जो पुरुष समाज ने दी है। नारी अपने परिवेश के घात-प्रतिघातों और पुरुष सत्ता के द्वारा निर्धारित नियमावली में जीवन जीने केलिए विवश होती रही है। मध्यकाल में अर्थात् आधुनिक काल तक आते-आते नारी की सामाजिक स्थिति अपने पतन के चरम तक पहुँच चुकी थी। युग की सशक्त धाराओं में नारी ने स्वयं को, अपने व्यक्तित्व को कब विलय कर दिया, यह तो वह भी नहीं जान पायी। अपनी अस्तित्व हीनता का एहसास उसे तब हुआ जब वह शिक्षा की ओर अग्रसर हुई। उसकी आत्मा बोल उठी-

"मैंने ही अपनी लघुता की तुमको गरिमा दे दी
दुर्गम राह स्वयं बन अपना तुमको लक्ष्य बनाया
x x x
जीवन स्वयं विराग बनाकर तुमको प्यार बताया
x x x
निज को नहीं सिद्ध कर मैं ने 'हाँ' तुमको पहचाना
x x x
स्वयं परिधि बन कर ही मैंने तुमको केन्द्र बनाया
मैंने तुमको केन्द्र बनाया।"[1]

इन पंक्तियों में वह महसूस कर रही है कि उसने खुद को मिटाकर ही दूसरे के अस्तित्व को स्थापित किया है। परिधि के अभाव में केन्द्र का कैसा अस्तित्व? जब भी स्त्री की अवहेलना की गयी और वह उसका पात्र बनी, तब उसने इस अवहेलना व उपेक्षा को ही अपने जीवन का अधिकार मान लिया, उसीसे समझौता कर लिया। वह कहती है -

---

1. सुमित्रा कुमारा सिन्हा - बोलों के देवता, पृ. 130, 131

"इस अंधेरे देश में पल, पागलों के वेश में चल
शून्य के ही साथ मैंने
वेदना-विनिमय किया है।

प्यार का पाकर निमंत्रण, मैं गई कितना प्रवंचन
समझ कर वरदान मैंने
शाप ही अब तक लिया है।"[1]

नारी पुरुष पर आश्रित होकर जीने केलिए विवश थी। पति पर निर्भर रहने के कारण वह अपनी अभिलाषाओं को मुखर नहीं कर पाती थी। पुरुष। की इच्छानुसार ज़िन्दगी जीती आयी। पुरुष उससे लेना ही जानता है, देना नहीं। 'देवी' बनाकर उसे मानवीय अधिकारों से वंचित किया गया। दासी बनकर सबकुछ सहती रही। प्यार की आड में उसे जो कुछ भोगना पड़ा उसे वह वरदान समझकर अपनाती रही। अधिकार मिला है तो सिर्फ सहने का। बदले में उसे क्या मिला-

"शेष है अब तो केवल पौरुष, पाद प्रहार।"[2]

इन पंक्तियों में स्त्री की पुरुष सत्तात्मक समाज के दुर्व्यवहार से मुक्ति की चाह झलकती है। नारी की दयनीय दशा की यह चरम सीमा है। शायद वह ऐसी बातों से अनजान थी या इसकी उम्मीद नहीं की थी-

"सपना था, पथ पर चमकूँगी
संगिनि बन दिशि दिशि गमकूँगी
किन्तु 'अकेले चलना होगा'- सत्य कठोर आज सिखलाए।"[3]

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - विहाग, पृ. 26
2. पुरुषार्थवती - स्त्री काव्यधारा, पृ. 178
3. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - आशापर्व, पृ. 103

यही उसके जीवन की अंतिम सच्चाई है जिससे आज वह बखूबी बाकिफ है। अब वह अपने स्वत्व को लेकर काफी चिन्तित है। इसी तरह अपने ऊपर होनेवाले शोषण एवं अत्याचार से सचेत एवं जागृत नारी के एहसासों को हृदयानुभूतियों को वाणी मिली है राजकुमारी श्रीवास्तव, राजेश्वरी देवी त्रिवेदी 'नलिनी' आदि कवयित्रियों की कविताओं में ।

3.2.2 मुक्ति की चाह

स्वतंत्रता संग्राम ने युगों की सुषुप्त नारी के कानों में जागरण का संदेश फूँका, चिर-संतप्त नारी हृदय में नवचेतना की चिनगारी प्रज्ज्वलित हो उठी और वह अपनी यथार्थ दयनीय स्थिति से क्षुब्ध होने लगी। सामाजिक सम्मान तथा सुख-शांतिमय जीवन को प्राप्त कर सच्चे अर्थों में मानवी बनने केलिए वह लालायित थी। आज वह पुरुष के शोषण से मुक्त होने केलिए तथा अपने भार से पुरुष को मुक्त करने केलिए समानाधिकार की माँग करके आर्थिक स्वतंत्रता चाहती है। समाज में अपनी चौतरफा उपस्थिति को स्त्री ने अपने संघर्ष के ज़रिए तोड़ा, जिसके मूल में छिपी थी उसकी अदम्य जिजीविषा।

छायावाद का प्रतापी व्यक्तित्व कवयित्री महादेवी वर्मा की यह पंक्ति-

'तोड दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?"[1]

-स्त्री की अदम्य जिजीविषा साथ ही उन परंपरागत समाजिक श्रृंखलाओं

---

1. महादेवी वर्मा - सांध्यगीत, पृ. 51

से मुक्त होने के उसके प्रयास को दर्शा रही है जिससे वह अब तक जकड़ी हुई थी।

भारतीय नारी का जीवन उसके पति में ही केन्द्रित रहा है, उसकी मृत्यु के पश्चात वह शून्य के समान निराश्रित हो जाती है, यह केवल उसकी आर्थिक परतंत्रता के कारण होता है। नारी प्रमुखतः इसीलिए पुरुष के अधीन है। यहाँ उसका एकांत, उसकी पराधीनता उसकेलिए असह्य बन जाती है। वह कहती है -

"आज जल उठा एकाकीपन
तोड़ो मेरी कारा तोड़ो
घाव बन गया यह दुराव अब
खोलो मेरे बंधन खोलो।"[1]

मुक्ति उन्हें मिलती है जो मुक्ति चाहते हैं। मुक्त होने का अर्थ 'स्वतंत्रता' नहीं हो जाता, हम बंधन मुक्त तो ज़रूर हो जाते हैं लेकिन स्वतंत्र होने केलिए हमारे भीतर चेतना व इच्छा का होना बहुत ज़रूरी है ताकि हम किसी एक व्यवस्था से निकलकर दूसरी व्यवस्था में जकडे होने से खुद को बचा सकें। इसी स्वतंत्रता या मुक्ति की चाह इन पंक्तियों में नज़र आती है। सदियों से सहते आ रहे घावों की गहराई, उसकी पीड़ा भी इन पंक्तियों में स्पष्ट है। अब नारी का स्वाभिमान मुखरित हो उठा है। स्वावलंबी तथा स्वाधीन बनने केलिए आत्म-निर्भरता आवश्यक है, जो शिक्षा द्वारा ही संभव है और तभी वह पुरुष की दासता से भी मुक्त हो सकती है। स्वावलंबिनी

1. विद्यावती कोकिल - स्त्रीकाव्यधारा, पृ. 256

पराश्रिता नहीं रहती, उसके हाथ और पैर इतने समर्थ हैं कि वह अपना कार्य स्वयं कर सकती है। ऐसी स्थिति में वह अपनी जैसी औरों को भी प्रेरणा दे सकती है, उन्हें भी साथ लेकर मुक्ति की ओर अग्रसर कर सकती है।

महादेवी जी की ये पंक्तियाँ-

"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।
हो उठी है चंचु छूकर
तीलियाँ भी वेणु सस्वर
बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले
सिहरता जड़ मौन पिंजर
आज जड़ता में इसी की बोल दो।
जग पड़ा छू अश्रु-धारा;
हत परों का विभव सारा
अब अलस बन्दी युगों का
ले उडेगा शिथिल कारा।
पंखर पर वे सजल सपने तोल दो।"[1]

-यह उजागर करती हैं कि महादेवी जी भी भारतीय नवजागरण की उपज है। अपने गद्य की तरह अपनी कविता में भी वे अपनी इसी नवजागरण कालीन चेतना का परिचय देती हैं। इन पंक्तियों में मुक्ति की प्रबल चाह भी है और मुक्ति की चाह रखनेवाली प्रत्येक नारी केलिए प्रेरणा भी। मुक्ति की यह आकांक्षा नवजागरणकालीन भारतीय स्त्री की है। 'कीर' के प्रतीक में यह बंदिनी नारी की आकांक्षा है। कहना होगा कि महादेवीजी की कविता की

1. महादेवी वर्मा - सांध्यगीत, पृ. 55

भावमयी वाणी वैचारिक वाणी बनकर 'श्रृंखला की कडियाँ' में फूटी है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन ने एक ओर जनता में राष्ट्रीय चेतना पैदा की तो दूसरी ओर स्त्रियों में आत्मचेतना उत्पन्न की। चेतना संपन्न, जागृत नारी को शिक्षा ने आत्म विस्तार दिया । इससे जीवन की वास्तविकता से वह अवगत हो गई और युगों की दासता से मुक्ति का आह्वान भी दिया-

"देख लो मैं कर रही हूँ मुक्ति का आह्वान
x x x
अब करूँगी सत्य के सत रूप से पहचान
x x x
क्योंकि उडने केलिए जग में बहुत विस्तार,
आँख के नीचे धरा का मुक्त पारावार
आज करने को चली हूँ भूमि पर अभियान ।"[1]

ये पंक्तियाँ यह ज़ाहिर कर रही हैं कि पूर्व छायावाद युग में स्त्री स्वत्व को लेकर जो बोध स्त्रियों में उत्पन्न हुआ था उसकी अगली कड़ी इस युग में देखने को मिल रही है। यह अपनी पूर्व स्थिति से थोड़ा सा गंभीर दिखाई देती है और आगे होनेवाली विस्तृत चेतना की ओर इशारा कर रही है।

3.2.3 प्रतिरोधी स्वर

नारी के भीतर अस्तित्व का बोध उत्पन्न हुआ है तो उसे समाज में प्रतिष्ठित करना भी अनिवार्य है। समाज में अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करने केलिए स्त्री को पुरुषसत्तात्मक समाज से संघर्ष करना होगा। अपने विचारों से उस पुरुष सत्ता का प्रतिरोध भी अवश्य करना है। प्रतिरोध के ये

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - बोलों के देवता, पृ. 170, 171

स्वर भी कवयित्रियों की कविताओं में अपनी जगह ले रहे हैं। जहाँ स्त्री स्वयं अपनी स्थिति से परिचित है वहाँ उसकी रक्षा केलिए स्वयं मुखरित भी है। साहित्यकार भी अपनी लेखनी के माध्य से उसे समय-समय पर नवचेतना का संदेश देते रहे हैं।

चेतना संपन्न होने पर सर्वप्रथम नारी ने यह सोचना शुरु किया कि समाज में अब तक उसे उसका वास्तविक स्थान नहीं मिल पाने का क्या कारण है? समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की विसंगतियों में इसका उत्तर उसने खोजा कि यह 'धर्म एवं आस्था' तथा 'परंपरा एवं मूल्यों' के प्रति समाज के दोहरे मानदण्ड के कारण है जो पुरुष एवं स्त्री केलिए समान नहीं है। सभी संबंधों में नारी की स्थिति अधीनस्थ की है, इसलिए उसके मन में समाज के प्रति असंतोष है। शोषण के प्रति उसकी अभिव्यक्ति मुखर हो उठी है-

> "कितने अटल युगों से सुनती आती हूँ यह बात
> दूर-दूर है अभी दूर है मेरा स्वर्ण प्रभात
> अधिकारों की माँग, दासता का है भीषण पाप
> घात और प्रतिघात पतन के कहलाते अभिशाप
> अभी नहीं सूखे हैं मेरे उर के तीखे घाव
> जिसकी कसक जगाती रहती है विरोध के भाव।"[1]

यहाँ नारी में इतना साहस तो आ ही गया है कि वह ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ बुलंद कर सकती है, प्रतिरोध कर सकती है। जो परंपराएँ उसे प्राप्त

---

1. रामेश्वरी देवी चकोरी -स्त्री काव्यधारा, पृ. 250

है उनका मूल्यांकन करने योग्य वह आगे आ चुकी है। जो घात-प्रतिघात उसे झेलने पडे हैं, जो अभिशाप उसे ढोने पडे हैं उन घावों की कसक उसमें विरोध के भाव पैदा कर रहे हैं। स्त्री आत्मनैतिकता की कसौटी पर तो स्वयं को परखती ही है, साथ ही साथ यह इच्छा भी रखती है कि दूसरे लोग महसूस करें कि स्त्री के अस्तित्व की भी महत्ता है, खासकर वे स्त्रियाँ जो उसी के समान दबी हुई थीं। उसे इस बात का एहसास है कि मात्र किसी एक स्त्री की आवाज़ बुलंद होने से पूरा समाज नहीं बदलेगा, वह अन्य स्त्रियों में भी प्रतिरोध की भावना जगाने का प्रयास कर रही है -

"तुम्हारी दशा विलोक
शोक को होता शोक
x x x
लखो तो मेरी ओर
मौन की तोडो डोर
x x x
एक बर इस निर्जनता में प्रलय-गान दो छेड़।
किये गये अत्याचारों की तह दो आज उधेड़
जला दो वह्नि सक्रोध
उसीसे लो प्रतिशोध
अपने जीवन के रहस्य का प्रथम पृष्ठ दो खोल।"[1]

किसी भी बडे बदलाव केलिए एक छोटी शुरुआत अवश्यंभावी है। इसी की प्ररणा है इन पंक्तियों में। इस दौर में संघर्ष की अनुगूँज सुनायी देना स्वाभाविक है। जीवन की संघर्षमय परिस्थितियों में निराश होकर कोई हार जाता है तो क्या आश्चर्य है, अगर संघर्ष में निरंतर आगे बढ़ता है तो

1. रामेश्वरी देवी चकोरी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 252

आश्चर्य की बात है। कवयित्री महादेवी वर्मा इसी आशय को लेकर कहती हैं -

"पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला
x x x
अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लैटते, दे शूल को संकल्प सारेः
दुखव्रति निर्माण उन्माद
यह अमरता नापते पद
बाँध देंगे अंक-संसृति
से तिमिर में स्वर्ण बेला।"[1]

तात्पर्य यह है कि पंथ चाहे अपरिचित हो, प्राण चाहे अकेला हो किन्तु ये पैर हारनेवाले पैर नहीं है। ये दुखव्रती अवश्य हैं किन्तु निर्माण केलिए उन्मत्त हैं। ये अमरता को नापनेवाले चरण हैं, जो घने अंधकार में अपने पद-चिन्हों से स्वर्णबेला का निर्माण कर देंगे। इन पंक्तियों में कवयित्री का आत्मविश्वास और साहस दृष्टिगोचर होता है और पुरुष वर्चस्व के विरोध में निर्भयता की अभिव्यक्ति प्रकट हुई है। जीवन-पथ अनंत है और यात्रा भी अनंत है। इस मार्ग पर उन्होंने सजाया-मोतियों की हाट और चिनगारियों का एक मेला। हिन्दी का आधुनिक काल, सुधार एवं नवजागरण का है। अतः उसमें चित्रित नारी ने अपना पुरातनवादी भय छोड़ दिया है। निर्भीक होकर आगे बढ़ रही है। पुरुष वर्चस्व चुप तो नहीं बैठ सकता। वैसे भी स्त्री पर दबाव डालनेवाले स्त्री लेखन को हेय की दृष्टि से ही देखेंगे। इसके खिलाफ वह आवाज़ उठाती है-

1. महादेवी वर्मा - दीपशिखा, पृ. 73

"परिधि मेरे शूल बन की माप मत इन अक्षरों से
तोल क्या विषमय हृदय की विश्व के रसमय स्वरों से।"[1]

अक्षर तो एक शुरुआत है, मन को अभिव्यक्ति देने में। कवयित्री कहती हैं कि स्त्री के अक्षरों को कमज़ोर मत समझो, उसे स्त्री की परिधि मत मानो। पुरुष सत्ता को आगह कर रही हैं कवयित्री-

"तुम जान न पाओगे निष्ठुर
यह प्राण मौन व्रत धारे हैं
केवल कुछ निमिष तुम्हारे हैं।"[2]

इन पंक्तियों में स्त्री का वह आत्मविश्वास झलक रहा है जो एक न एक दिन अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा, खोया हुआ आत्मसम्मान वापस पाकर ही रहेगा।

3.2.4 स्वत्व की पहचान

नारी भी मनुष्य है, मानवी है अतः उसे भी स्वतंत्र व्यक्तित्व की सदैव आवश्यकता रही है। किन्तु नारी को लेकर इस दिशा में कभी सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

वह इसलिए कि उसकी इच्छा का निर्णायक पुरुष ही रहा है, वही उसके फैसले करता रहा है। वह क्या चाहती है, क्या करेगी, क्या नहीं, यह सब कुछ निर्णय करनेवाला पुरुष ही रहा है। चाहे वह पिता, पति, पुत्र किसी भी रूप में रहा हो। जबसे वह शिक्षा की ओर अग्रसर हुई वह जीवन के नये

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - विहाग, पृ. 58
2. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - बोलों के देवता, पृ. 146

आयामों को तलाशने लगी। उसका पहला कदम अपने अस्तित्व की ओर था। नारी के आन्तरिक सौन्दर्य, उसके शील और सद्‌गुणों का ह्रास हो चुका था, तथा वह कामोपभोग की साधिका मात्र रह गयी थी। इन्द्रिय सुखों की उत्कट अभिलाषाओं के साथ पुरुष ने भी उसके बाह्य-कलेवर को अपनाकर ही उसका स्वागत किया। आधुनिक काल के पूर्व साहित्य में भी यही देखने को मिला था। इसकी प्रतिक्रिया ही बाद की कवयित्रियों की कविताओं में मिल रही है। जब उनके भीतर आत्म चेतना का विस्तार हुआ तो स्वत्व बोध की अनिवार्यता भी महसूस हुई। कवयित्री शकुंतला देवी खरे की ये पंक्तियाँ-

"चाँदनी में हास मेरा!
सिन्धु कोमल चरण धोते, शून्य में आवास मेरा
शीश पर रवि-मुकुट शोभित, कंठ में नव-किरण माला ।।
इन्द्र धनु का मंजु अंचल दमिनी का गात मेरा।
इन सुनहले बादलों में मुसकराता प्रात मेरा।।
अधर का पीयूष पाकर हँस उठी वह इन्दु बाला।
वायु दिशि-दिशि डोलती है, ले मधुर उल्लास मेरा।।
सजनि यह जग झूम उठता, पा मृदुल आभास मेरा
इन पदों की लालिमा से सज गई उषा निराली।।
x x x
प्रति सुमन से फूट निकला प्राण का मधुमास मेरा।।
आज वैभवशालिनी हूं, है महा विस्तार मेरा।।"[1]

-प्रत्यक्ष में नारी की सौन्दर्यगर्विता का आभास दिला रही है तो दूसरी ओर उससे भी बढ़कर रीतिकालीन कवियों के नखशिख वर्णन पर व्यंग्य बाण भी छेड़ रही हैं। उन कवियों ने जहाँ नारी के अंग-प्रत्यंग वर्णन में माधुर्य

1. शकुंतला देवी खरे - स्त्री काव्यधारा, पृ. 267

लाने केलिए प्रकृति से उपयुक्त उदाहरणों का चयन किया वहाँ इन कवयित्रियों ने संपूर्ण प्रकृति को अपने में समा लिया। कवयित्री हीरादेवी की कविताओं में भी समान आशयवाली पंक्तियाँ नज़र आती हैं। कवयित्री स्वयं को प्रकृति से अलग नहीं मानती। ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रकृति उसमें लीन हो गयी है। प्रत्येक प्राकृतिक प्रतिभास जैसे कवयित्री के मन का विस्तार हो या कवयित्री के परिवर्तित मनोभाव ही प्रकृति में दिखते हैं। अर्थात् अगर स्त्री खुश है, उसका मन प्रफुल्लित है तो प्रकृति भी वैभवशालिनी नज़र आएगी। तात्पर्य यह है कि यदि स्त्री सुखी है तो उसके आसपास का वातावरण भी वह समृद्ध रखेगी।

उनकी अस्मिता या अस्तित्वबोध अपने आप में सीमित नहीं है बल्कि प्रकृति के संपूर्ण चराचरों को साथ लेकर चलने में है। किन्तु पुरुष सत्ता ने उसे हमेशा चारदीवारी के अंदर कैद रखने की कोशिश की। और उसे यह एहसास दिलाता रहा कि गृहणी रूप में ही उसका स्वत्व बंधा हुआ है। इस बात को धीरे-धीरे स्त्री ने भी अपना लिया था। किन्तु जब सचेत हुई तो कह डाला -

"नहीं हमारी चाह नाथ ! है
बनी रहूँ पटरानी
नहीं चाह है घर में रहकर
कहलाऊँ महारानी।"[1]

ये पंक्तियाँ यह ज़ाहिर कर रही हैं कि नारी ने यह पहचान लिया है कि उसका अस्तित्व घर की चार दीवारों के बीच सीमित नहीं है बल्कि एक

1. हीरादेवी चतुर्वेदी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 301

विशाल दुनिया और समाज बाहर उसका इंतज़ार कर रहा है। बाहर निकली तो उसे समाज की जर्जर वास्तविकता का सामना करना पड़ा। उसे अपनी शक्ति का, आत्म-शक्ति का एहसास हुआ -

"हम महाशक्ति, हम महा क्रांति
रण चण्ड़ी की तलवार हमीं।
निज देश-मान पर मिटती हैं
बन दुर्गा का अवतार हमीं।"[1]

नारी जीवन के उत्थान की चाह यहाँ तीव्र होती दिखाई देती है। उनके भीतर मौजूद देशप्रेम की भावना भी यहाँ मुखर हो उठी है। आत्मसमर्पण की भावना जो उनके व्यक्तित्व की खासियत है, वह मात्र घर-परिवार केलिए ही नहीं बल्कि देश और समाज केलिए भी समान है। आलोच्य युग की नारी इस बात से बखूबी बाकिफ है कि सामाजिक भागीदारी के अभाव में उसके स्तत्व का रूपायन अधूरा ही रहेगा। इसीलिए कवयित्री कहती हैं -

"और चाहती देश युद्ध में
जाकर कुछ दिखलाऊँ
"अबला" नाम मिटाकर अपना
'सबला' नाम धराऊँ ।"[2]

इन पंक्तियों में ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो अपने अस्तित्व को रूपायित करने का उनके पास यही एकमात्र रास्ता है। 'अबला' का नाम जो सदियों से कविगण नारी केलिए देते आये हैं, वह उसे मिटाकर 'सबला' नाम

1. शकुंतला देवी खरे - स्त्री काव्यधारा, पृ. 266
2. हीरादेवी चतुर्वेदी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 301

धारण करके अपना स्वत्व बोध स्थापित करना चाहती है। यहाँ वह अपने आत्मबोध को लेकर, अस्मिता को लेकर काफी चिन्तित दिखाई देती है और देश की आज़ादी केलिए मर-मिटना चाहती है। उसमें एक अडिग विश्वास दिखाई देता है।

3.3 प्रणय भावना

प्रेम और सौन्दर्य इस युग की कविता का प्रधान विषय रहा है। जिस भाव के द्वारा हमारी अंतरात्मा स्निग्ध, कोमल और निर्मल हो तथा जिसपर ममत्व की गहरी छाप भी लगी हो उसी के गाढ़े रूप को हम प्रेम की संज्ञा देते हैं। प्रेम भाव की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है कि उसमें किसी न किसी प्रकार से आनंद का अंश बना रहता है। सृष्टि के कण-कण में पारस्परिक आकर्षण, मिलन की उत्कट आकांक्षा तीव्रतम रूप में विद्यमान है। संसार में नर-नारी के संयोग का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है कि प्रेमी-प्रेमिकागत पारस्परिक सौन्दर्याकर्षण, पारस्परिक संयोगेच्छा एवं मधुर मिलन की बलवती आकांक्षा ही संसार के सारे कार्यक्रम के प्रेरक तत्त्व हैं। श्रृंगार मनुष्य मात्र तक सीमित न रहकर प्रकृति को भी समेटता है, सभी वस्तुएँ, नदी, वन, पर्वत, रात, चांदनी आदि इसके अंतर्गत आते हैं। पूर्व छायावाद युगीन काव्य के समान आलोच्य काल में कवयित्रियों की प्रवृत्ति प्रेम के उदात्तीकरण की ओर ही रही। व्यक्तिगत प्रणय भावना को भी वासनारहित शुद्ध प्रेम की ओर उन्मुख कर उसे उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करने की कोशिश की गई। उदात्तीकरण की इसी मनोवृत्ति के कारण

अधिकांश कवयित्रियों ने अतीन्द्रिय प्रेम का अधिक चित्रण किया है, स्थूल प्रेम का कम। उनके शब्दों में -

"नश्वरता को जीवन देकर, चमका देता है प्यार अमर"[1]

अर्थात् नाश का कारण होते हुए भी जो कभी नाश नहीं होता है तथा जो दोनों को भाव बंधन में बाँधता है, वह प्रेम है। इस प्रेम में यहाँ के कविगण आध्यात्मिकता एवं रहस्य भावना का सम्मिश्रण भी कर देते हैं। यहां प्रेम के संयोग, वियोग दो पक्षों पर विचार किया जा रहा है।

3.3.1 संयोग

आलोच्य युगीन काव्यों में अवैवाहिक प्रेम की अधिक अभिव्यंजना हुई है वैवाहिक प्रेम की कम। इस स्थिति में प्रेमी तथा प्रेमिका के पूर्व राग, उनकी मिलनातुरता अथवा संयोग की आकांक्षा को अधिक वाणी मिली है। फिर् भी यहाँ संयोग श्रृंगार के विविध चित्र प्रस्तुत किये गए। इन चित्रों में प्रेमविषयक विभिन्न स्थितियों एवं मनोदशाओं को स्थान मिला। कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने अपने प्रणय के प्रथम मिलन को यों शब्द-बद्ध किया -

"भोर के रूपे की वेला, सृष्टि के कोने-कोने में
लगा था रागों का मेला।
सुनहले नूपुर की झंकार हुई थी जग के प्राणों में
उसी दिन तो रस की बौछार, तोड़कर तुमने एक गुलाब

1. राजकुमारी श्रीवास्तव - स्त्री काव्यधारा, पृ. 218

दिया था मुझको जब उपहार !

लगी थी दुनिया खिला गुलाब, रूप रस गंधमयी धरती
गगन पर मोती की सी आब,
उठा था प्राणों में तब ज्वार, बन गया एक प्रतीक गुलाब
फूल सा मन में फूला प्यार।"[1]

यहाँ एक ओर प्रेमी-प्रेमिका के प्रथम मिलन की सुनहली यादों को वाणी मिली है तो दूसरी ओर तदुपरांत उनके मन में होनेवाले मानसिक परिवर्तन की ओर भी संकेत है। जब से कवयित्री के मन ने प्रणय को पहचान है, तबसे उनमें उस भाव को लेकर आकांक्षा भरी हुई है। वे कहती हैं-

"अंग-अंग मूक संभाषण की यह कैसी जटिल पहेली है।
बतलाओ तुम्हीं, तुम्हारी ही उलझाई अखिल पहेली है।।

क्या है यह आकर्षण? कैसा है इसका इतिहास?
आँखों के मिलते ही बढ़ती क्यों आँखों की प्यास?"[2]

यहाँ कवयित्री अपने प्रणय की अनुभूति व्यक्त कर रही हैं तो दूसरी ओर अपने प्रेम की स्थिति को वाणी दे रही हैं कवयित्री रामेश्वरी देवी गोयलः-

"तुम्हारी संजीवन मुस्कान, जगा देती मद का संसार
पुलक, भावुक, नभ सी अनजान, लुटा देता अपना श्रृंगार
लुभा लेता तटस्थ के प्राण, बिछा मायावी मुक्ता जाल
बना देता पागल सा कौन, व्यथा की अविकल मदिरा ढाल?"[3]

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - बोलों के देवता, पृ. 136
2. रामेश्वरी देवी मिश्र चकोरी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 248
3. रामेश्वरी देवी गोयल - स्त्री काव्यधारा, पृ. 245

ये पंक्तियाँ प्रेम भाव की एक बहुत बड़ी विशेषता उभार रही हैं कि उसमें किसी न किसी प्रकार से आनंद क अंश बना रहता है। प्रणय उत्कृष्ट भाववेग की अवस्था है जिसके नशे में व्यक्ति पागल सा बन जाता है।

हिन्दी की छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में वियोग श्रृंगार को अधिक महत्त्व दिया, फिर भी उनकी कृतियों में संयोग संबंधी चित्र उपलब्ध है। उनका प्रेम अध्यात्मोन्मुख है। उनके प्रेम का आलंबन अलौकिक है। वह निराकार किन्तु सगुण है। उस सर्वशक्तिमान का कोई निश्चित रूप नहीं है। किन्तु प्रकृति के भव्य रूपों में वही आभासित होता है इसीलिए कवयित्री प्रकृति के मनोहर रूपों में प्रिय की कल्पना कर उन पर मुग्ध होती है और प्रिय से मधुर प्रणय संबंध स्थापित करके आत्म-समर्पण करती है।

महादेवी की प्रेम-व्यंजना में लौकिक प्रेम की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, किन्तु प्रियतम से उनका संयोग मात्र काल्पनिक अनुभूति है। अलौकिक प्रिय की रूप माधुरी के दर्शन प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से ही होता है। प्रिय की चंचल और मोहक चितवन प्रिया के हृदय को मादकता से भर देती है। उसकी मधुर मुस्कान के प्रकाश से प्रियतमा के नेत्र-कमल खिल उठते हैं। महादेवी के प्रेम की तन्मयता निम्नांकित पंक्तियों में साकार हो उठती हैं :-

"जब उनकी चितवन का निर्झर
भर देता मधु से मानस सर,

स्मित से झरतीं किरणें झर-झर
पीते दृग-जलजात।"[1]

महादेवी के काव्य में विशुद्ध संयोग के चित्र दुर्लभ हैं। उसमें संयोग श्रृंगार के आधारभूत दर्शन, स्पर्शन, आलिंगन आदि कामरतिपरक चेष्टाओं का अभाव है। इनमें संयोग की स्मृति, उसके आनंद की कल्पना और कहीं संयोग में भी विरहानुभूति का सुख लेने की भावना व्याप्त है। इसी संदर्भ में कवयित्री संयोग में छिप जाने की बात कहती है। संक्षेप में यह कि महादेवी वर्मा संयोग-विषयक मनोदशाओं का सम्यक् चित्रण न-करके उनकी ओर संकेत मात्र करती है। ऐसी स्थिति में उनके संयोग-वर्णन मांसलता अथवा स्थूलता से रहित हैं, उन पर काल्पनिक सूक्ष्मता का आवरण पड़ा है।

उपर्युक्त पंक्तियाँ यह ज़ाहिर करती है कि प्रेम के संयोग के संदर्भ में कवयित्रियाँ मर्यादित एवं आत्म समर्पण की भावना से युक्त हैं।

3.3.2 वियोग

प्रेमसाधना के अंतर्गत विरह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है कि विप्रलंभ के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता। प्रबल अनुराग के होते हुए भी प्रिय संयोग में बाधा उत्पन्न होने पर प्रेमी-हृदय की व्याकुलता वियोग कहलाता है। वियोग-श्रृंगार में व्यथा की विवृत्ति होने के कारण इसका स्वरूप दुखात्मक होता है। दुख में हृदय की गति अत्यंत द्रुत हो जाती है।

1. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 94

भावों का आलोडन प्रबल रहता है, इसीलिए काव्यों में वियोग श्रृंगार का अधिकाधिक वर्णन मिलता है। हिन्दी कवियों ने वियोग-वर्णन अवश्य किया है, पर वे प्रेम की परिणति संयोग में मानते हैं। यहाँ कवयित्रियों ने भी अपनी कविताओं के ज़रिए यह साबित किया है कि प्रेमानुभूति की तीव्रता मिलन की अपेक्षा विरह में कहीं अधिक तीव्र होती है। इसी कारण उन्हें विरह वेदना में सुख की अनुभूति दिखाई देती है।

प्रेम में क्षणभर का वियोग भी सहन नहीं होता। प्रियतम की विरहानुभूति का अंकन बहुत कम है पर प्रेमिका की दशा दयनीय है। वह विवश विह्वल हो गयी। प्रेमी से वियुक्त होने पर प्रेमिका अपने संयोगकालीन क्षणों को याद करती है:-

"मधुर मिलन के मृदुल कल्पना-
कुसुमों की छवि की रंगीनी,
मादक सुधि की गंध बसी थी
उस दिन जो अणु अणु में भीनी,
आज चेतना ने मेरी तन्द्रिल
सी घड़ियों से सब छीना।"[1]

यहाँ कवयित्री मिलन के मधुर क्षणों को याद कर रही हैं जो कभी उन्हें मादकता प्रदान करती थी, आज उनकी चेतना ने उनसे सबकुछ छीन लिया। कवयित्री केलिए प्रियतम की स्मृतियाँ वेदना जनक प्रतीत हो रही है।

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - आशापर्व, पृ. 98

कवयित्री महादेवी वर्मा ने वेदना को जीवन मान लिया। उनकेलिए प्रिय की स्मृति भी वसंत की तरह मुग्धकारी हो जाती है-

"किस सुधि वसंत का सुमनतीर, कर गया मुग्ध मानस अधीर
अधरों से झरता -स्मित-पराग, प्राणों में गूँजा नेह-राग,
सुख का बहता मलयज शरीर... अलि सिहर उठता शरीर।"[1]

यहाँ प्रिय की सुधि कवयित्री के अधरों को स्मित पराग से भर देती थी, तन-मन को सिहरा जाती थी। अर्थात् प्रणय वेदना में स्मृति कहीं मुग्धकारी है तो कहीं वेदना जनक। स्मृतियों का आवेग जहाँ तीव्र हो उठता है वहीं मिलनाकांक्षा भी प्रबल हो उठती है। कवयित्री का विद्ध हृदय मिलनाकांक्षा से पीडित है। अपने चंचल प्रिय से एकबार मलय-अनिल बनकर आने की प्रार्थना करती है-

"एक बार आओ इस पथ से
मलय अनिल बन हे चिर चंचल।"[2]

दूसरी ओर समुत्रा कुमारी सिन्हा-

"स्वप्नालय में प्रतिदिन आते, फिर हो जाते हो अन्तर्हित
भर जाते चिर अंधकार क्यों, आँखों को करके आलोकित!
हाय न मुझको यों तडपाओ
आओ एक बार तो आओ।"[3]

---

1. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 72
2. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 166
3. सुमित्रा कुमारी सिन्हा -विहाग, पृ. 39

इन पंक्तियों में प्रिय मिलन की कामना इस कदर बढ़ जाती है कि प्रिया का कोमल हृदय वेदना-व्यथित हो जाता है। परिणामतः समस्त प्राकृतिक उपकरणों में प्रिय का आभास होने लगता है । जैसे :-

"शीतल समीर वह बन आये, सौरभ समीर बन चले गये।"[1]

कवयित्रियों के गीतों में जहाँ प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन है, प्रणयानुभूति है, मिलनाकांक्षा है वहीं प्रकृति सौन्दर्य का अनुपम प्रकाशन भी हैं। आलोच्य काल की कवयित्रियों की आत्मपरक कविताओं में प्रणय-निवेदन, प्रणयाभिव्यक्ति, मिलनाकांक्षा, विरह, विरहोन्माद-प्रेम के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव व्यापारों को प्रकाशन मिलता है। इनकी कविताओं में प्रेम का आलंबन अलौकिक है जो सृष्टि के कण-कण में प्रतिभासित है। फिर भी लेखिका का हृदय उससे एकांत प्रणय की कामना करता है। प्रियतम अज्ञात और अलौकिक है, इसलिए उसके प्रति व्यक्त प्रणयानुभूति में रहस्यात्मकता स्वाभाविक है। अलौकिकता के प्रति ही आत्मसमर्पण का भाव क्यों जागृत हुआ। इस जिज्ञासा के उत्तर में महादेवी का कहना है कि "स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण भी है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी। अतः किसी उच्चतम आदर्श, भव्यतम सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है।"[2]

महादेवी की ये पंक्तियाँ

"तुम मुझमें प्रिय। फिर परिचय क्या !
चित्रित तू मैं हूँ रेखा - क्रम

1. सुमित्रा कमारी सिन्हा - विहाग, पृ. 28
2. महादेवी - साहित्य, पृ. 241

मधुर राग तू मैं स्वर-संगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया-छाया में रहस्यमय।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।"[1]

रहस्यानुभूति की अवस्था है। यहाँ प्रेमी-प्रेमिका को अभिन्नता का बोध होने लगता है। यही अभिन्नता बोध कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने भी दर्शाया है यह कहते हुए कि -

"दूरी कैसी जब हम-तुम है काया-छाया जैसे।'[2]

इन पंक्तियों में प्रेमिका प्रियतममय होकर एक अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करती है। अपने अलौकिक प्रियतम से चिरकाल का वियोग उनकेलिए असहनीय प्रतीत होता है। ऐसे में यह मानते हुए कि प्रेमिका अपने प्रिय का ही अंश है। उनकेलिए विरह वेदना भी सुखदायी बन जाता है। संभव है कि कवयित्रियों का यह विश्वास भारतीय वेदांत दर्शन से प्रभावित हो। इस सोच के बगैर प्रेमिका को विरह-व्यथा इस कदर तडपाती थी कि उन्हें प्रेम में न पड़ना ही बेहतर महसूस होने लगा था। उनके इस रहस्यवादी सोच से उनकेलिए विरह-वेदना भी आनंददायी लगता है । उनका कहना कि -

"कितना मधुमय सुखप्रद है रे, यह चिर-वियोग, यह अचिर मिलन।"[3]

-इस ओर संकेत करता है कि जब अनुराग की कठिन साधना अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो उसमें विराग भी अच्छा लगने लगता है।

---

1. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 147
2. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - विहाग, पृ. 47
3. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - विहाग, पृ. 31

इस विरह की परिणति प्रिय के चरणों में मुक्ति को मानती है। कवयित्री की निम्नांकित पंक्तियाँ इसका उदाहरण हैं -

"मुझे मिले निर्वाण चरण में,
प्रिय, होने लय चिह्न-चरण में,
तुम्हें खोजती हूँ कण-कण में।"[1]

यहाँ तीव्र वेदना के बावजूद प्रेमिका अपने प्रिय में लीन होने की चाह रखती है जबकि कवयित्री महादेवी की पंक्तियाँ -

"तुमको पीड़ा में ढूँढा
तुम में ढूँढूँगी पीडा।"[2]

-उन्हें वेदना की कवयित्री घोषित करती हैं। अर्थात् यहाँ प्रेमिका के मन में अपने प्रयतम को लेकर जो विरह व्यथा है उसे वह अपने जीवन का साध्य मानती हैं। उस वेदना को बनाये रखते हुए उसी में जीना चाहती हैं। तात्पर्य यह है कि प्रणय वेदना उनके लिए सुखदायी प्रतीत होता है। महादेवी के काव्य का मूलभाव प्रणय ही है। प्रणयाभिभूत हृदय जिन-भिन्न -भिन्न स्थितियों में संचरित होता है, उनका हृदयहारी एवं मार्मिक उद्‌घाटन महादेवी के आत्मपरक गीतों में हुआ है । उनकी यामा एवं दीपशिखा संग्रह में उनके प्रणय गीत संकलित है। आलोच्य युग में राजकुमारी श्रीवास्तव, हीरादेवी चतुर्वेदी, होमवती देवी आदि कवयित्रियों के काव्यों में भी प्रेम भाव सम्मिलित हैं। वैसे भी आलोच्य युग में प्रेम और सौन्दर्य साहित्य के मूल में था।

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - विहाग, पृ. 38
2. महादेवी वर्मा - नीहार, पृ. 46

3.4 सामाजिक यथार्थ

आधुनिक कविता अपनी सामाजिक चेतना, वर्ग-संघर्ष एवं मानवतावाद के कारण अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्न रही है। आधुनिक कवि इन्हीं भावनाओं के कारण समय का उन्नायक एवं मार्गदर्शक रहा है। अपनी कविता द्वारा वह आधुनिक भावनाओं, सामाजिक समस्याओं एवं शोषित वर्ग के आक्रोश को वाणी देता आया है। यही कार्य कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के ज़रिए किया है। उनकी कविताओं में अभिव्यक्त कुछ सामाजिक मुद्दों पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है।

3.4.1. किसान जीवन की त्रासदी

आलोच्य काल में देश के राजनीतिक मंच पर कई विशेष घटनाओं हुईं। चारों ओर निराशा और अराजकता का वातावरण था। भारत में असफल स्वतंत्रता-आंदोलन, बेकारी की समस्या, सामाजिक विभीषिकाएँ, विसंगतियाँ एवं असमानताएँ कवियों को अधिक प्रभावित करने लगीं। अंग्रेज़ों द्वारा किये गये आर्थिक शोषण के फलस्वरूप भारतीय समाज निर्धनता एवं अकाल का शिकार बना। महंगाई दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। ग्रामीण शिल्प एवं उद्योग-धंधों का नाश हुआ। साथ-साथ भारतीय महाजन तथा व्यापरियों ने भी इस मौके का फायदा उठाकर किसान का और अधिक शोषण किया। इनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कवयित्री कहती हैं-

"जिनके शोणित सिंचन से
है जीवन की हरियाली।

उनको ही हमने हँस हंस
निष्ठुर पीड़ा दे डाली।।"[1]

इन पंक्तियों में उन किसानों की ओर संकेत हैं जो दिन-रात मेहनत करके अपने श्रमकण से घुलते जाते थे, जिनकी वजह से देश में हरियाली छाई हुई थी। किन्तु औद्योगिक क्रांति ने श्रमिकों के जीवन को दुखमय बनाया था। पूँजीपतियों ने अपने अमानवीय व्यवहार से श्रमिकों को सुख-समृद्धियों से वंचित किया था। रात-दिन मेहनत करने के बावजूद पेट भर भोजन मिलना दुर्लभ होता था। ऐसे में उनके पास कर्ज के सिवाय और चारा भी क्या था -

"साहस से ऋण ले लेकर
पर-सुख हित नित मरते हैं।
चिर रक्तपात से अपने
वे विश्व-उदर भरते हैं ।
जिनने जग सुख हित अपने
स्वर्गीय सौख्य बाँटे हैं,
उनके जीवन-पथ में हम
बो रहे सदा काँटे हैं।"[2]

वह किसान जो दूसरों के पेट भरने की खातिर मेहनत करता आया उसे अपने जीवन में हमेशा से इस विश्व की सुख-सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा है। ऋण के चंगुल में पड़कर उनकी ज़िन्दगी को तबाह होने से कोई नहीं बचा पाया। क्योंकि सरकार के अलावा कुछ अन्य वर्ग भी कृषक व दलितों का शोषण करते थे। जोंक की तरह वे ऋणग्रस्त व्यक्तियों का रक्त चूसते थे।

1. रामकुमारी देवी चौहान - स्त्री काव्यधारा, पृ. 236
2. वही - पृ. 237

अत्यधिक ब्याज लेने में वे नहीं चूकते थे। ऐसी स्थिति में ज़िन्दगी भी उनकेलिए बेरंग बन गयी। जहाँ समाज का धनीवर्ग मख़मल के गद्दों के ऊपर, रेशम के परदों के भीतर रेसों में जेबें ख़ाली कर, सुन्दरियों को मतवाली कर, सपनों के गीत सुनाकर नूतन वर्ष मनाते हैं वहाँ श्रमिक वर्गों केलिए-

"कंकड पत्थर हैं सेज बने,
छाया को पथ के पेड़ घने,
मिट्‌टी से जिनके अंग सने
जिनसे हैं दूर बहुत सपने
दिन जिन्हें भार बन जाते हैं।

जो यंत्रों में निशिदिन पलते,
जिनके उर में मरघट जलने
जो दुख-हिम-खंडों से गलते
जीवित कंकालों से चलते
क्या नूतन वर्ष मनाते हैं?"[1]

ये पंक्तियाँ इस ओर इशारा कर रही हैं कि जिन्हें एक वक्त की रोटी नसीब नहीं होती उनकेलिए ज़िन्दगी के सभी ऐश और आराम तृण समान है। जिनका पेट भरा होता है वे ही दुनिया के अन्य सुखों की ओर मुँह मोड़ लेते हैं। सारतः औद्योगिक विकास के कारण जीवन कोलाहलपूर्ण एवं यांत्रिक बन गया। धनी और धनी बनता गया तो गरीब वैसा का वैसा ही रहा। किसान वर्ग भी यह जीवन जीने केलिए अभिशप्त था।

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - आशापर्व, पृ. 88

3.4.2 भ्रूण हत्या

हमारा समाज पुत्र की इच्छा का मारा हुआ है। पुत्र की इच्छा के मारे शिक्षित और आधुनिक लोगों द्वारा पुत्री जन्म से छुटकारा पाने केलिए वैज्ञानिक विधि का दुरुपयोग आलोच्य काल में ही किया जाने लगा था। विज्ञान ने यह संभव बना दिया कि पेट में पल रहे भ्रूण की जाँच करके उसके लिंग की पहचान की जा सकती है। वैज्ञानिकों ने तो इस तकनीक का विकास संभवतः लोगों की सहज उत्सुकता का समाधान करने के उद्देश्य से किया कि उनका अनेवाला बच्चा लड़का होगा या लड़की, परंतु भारतीय संदर्भ में तकनीक का नया ही उद्देश्य सामने आ रहा है। पुत्र की कामना से प्रेरित समाज ने भ्रूण की पहचान करने से आगे बढ़कर कन्या-भ्रूण की हत्या करने का जघन्य रास्ता अपना लिया। इसके परिणाम स्वरूप हरियाणा, पंजाब, चंडीगढ़ जैसे प्रदेशों तथा कई अन्य राज्यों में भी लड़कियों को जन्म से पहले ही मौत के मुँह में धकेल दिया जाता है और लड़कों को संसार में आने दिया जाता है। कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में समाज की इस दर्दनाक स्थिति को कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। कवयित्री होमवती देवी ने 'दलित कुसुम' नामक कविता में दलित प्रतीकात्मक ढंग से दलित कुसुम के द्वारा दमित-शोषित नारी की ओर संकेत किया है। सुमन वह जो कभी पथिक को मुग्ध करता था, अलियों को मकरंद पिलाता था, कभी राजमुकुट की शोभा था, उपवनों का जीवन था एवं लताओं का श्रृंगार था, वह वैभवशाली सुमन दीन-हीन बन गया और जो फुलवारी का माली था उसने भी मुँह मोड़ लिया।

इतना कहते हुए कवयित्री बता रही हैं -

"बस यही दशा इस जीवन में
निर्बल अबला की होती है,
कितनी ही कलियाँ खिलने से
पहले ही झर-झर रोती हैं।"[1]

यही दशा समाज में निर्बल अबलाओं की होती है जो कभी सबके जीवन में जान भरती थी, घर की शोभा बढ़ाती थी आज उसी के प्रति मालिक (गृहनाथ) का उपेक्षा भरा दृष्टिकोण है। इसका एक कारण तो यही लगता है कि हमारे समाज में स्त्री को पुरुष की तुलना में दुर्बल, निम्नतर और हेय माना जाता है। समाज का समग्र चिन्तन पुरुष को केन्द्र में रखकर चलता है जो औरत को पुरुष के लक्ष्यों की पूर्ति का साधन मात्र समझता है। इसलिए पिता की नहीं, माँ की भी, जो स्वयं एक औरत है, स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसे पुत्र-प्राप्ति हो। वेद से लेकर आधुनिक धर्म-चर्चाओं में हमेशा याद दिलाया जाता है कि पुत्र के बिना मोक्ष नहीं मिलता और जिस स्त्री ने बेटे को जन्म नहीं दिया, वह अधूरी है। भ्रूण की पहचान और कन्या-भ्रूणों की हत्या जैसी जघन्य तथा अमानवीय तकनीक पर रोक लगाने केलिए सरकारी प्रयासों के साथ-साथ समाज में चेतना लाने की आवश्यकता की ओर कविता संकेत करती है।

इस प्रकार समाज के प्रति कवयित्री के जागरूक होने का आभास

---

1. होमवती देवी - स्त्री काव्यधारा, पृ. 307

दिलानेवाली कई कविताएँ हैं किन्तु इस बात को लेकर, इसमें असपष्टता, महसूस होती है। चकोरी जी की 'खंडहर से', विद्यावती कोकिल की 'भिखारिन', 'गरीबी', 'घासवाली' आदि ऐसी ही कुछ कविताएँ हैं।

3.5. जीवनदृष्टि

महान साहित्यकार का जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण होता है। मानव के सुख-दुःख, आशा-निराशा, वेदना, करुणा, मानवता, कर्म-सौन्दर्य आदि को वह अपनी चेतना के प्रकाश में देखता है। आत्मा-परमात्मा, जीवन-मृत्यु और संसार के प्रति उसकी विशिष्ट धारणा होती है। इन पर व्यक्त सम्यक् भाव-विचारणा ही कवि की जीवन दृष्टि कहलाती है।

जीवन विसंगतियों से भरा हुआ है, किन्तु कवयित्रियों का आस्थावान हृदय उन सबको पार करता हुआ आगे बढ़ता है। वे दुःख-दग्ध वसुधा के प्रति संवेदनशील होकर प्रेम और करुणा का मंगलमय संदेश देती है। जीवन में व्यवस्था और सुचारू गतिमयता तभी आती है जब चिन्तन सबल होता है। जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति उनका चिन्तन दृष्टिकोण निम्नांकित है।

3.5.1 जीवन में सुख-दुख का सामंजस्य

सामान्यताः हमारा सारा जीवन इच्छाओं-कामनाओं एवं उनकी पूर्ति के प्रयासों का योग है जिसमें हम कभी दुख का और कभी सुख का अनुभव प्राप्त करते हैं। कई कष्टों को सहन करते हुए भी हमारा जीवन के प्रति

अनुराग रहता है। इसीलिए तो हम हर स्थिति में जीना चाहते हैं। जब जीने की चाह उत्पन्न हो जाती है तो दुख और सुख जीवन की अनिवार्यता बन जाती है। इसीलिए कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा कहती हैं -

"क्यों कहते हो सुख क्षण छोटे, दुख की दाहक घड़ियाँ भारी?
हर्ष पुलक-अनुभूति सुखों में, दुख में कंठ द्रवित हो जाता,
जग में सदा फूल औ' शूलों का ही अमर रहा है नाता,
x x x
व्योम-तिमिर की गोदी में ही तारक-शिशुओं की स्मिति झूले
पंथ एक पंथी अनेक हैं, आते-जाते गति है न्यारि।"[1]

अर्थात् प्रायः लोग दुख से दूर भागते हैं जबकि कवयित्री यहाँ दुख को स्वीकार करने की ओर संकेत दे रही हैं। क्योंकि इस जगत् में सुख और दुख का ही अमर नाता रहा है। वैसे भी कहा जाता है कि हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिर उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। आसमान के अंधेरे में ही तो चकमते तारे नज़र आते हैं।

मानव कुछ इस कदर स्वार्थी है कि वह सुख को अकेला भोगना चाहता है परंतु दुख सबको बाँटकर। किन्तु एक स्त्री की सोच इससे अलग है। उसके विचारों में लोकमंगल की भावना निहित है। तारा पांडे की ये पंक्तियाँ -

"सुख-दुख दोनों की आवेंगे
क्रम-क्रम से छबि दिखलावेंगे

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा -बोलों के देवता, पृ. 147

इस भिक्षुक जग को सुख देकर
दुःख के सुख को प्यार करूँगी
मैं दुख से श्रृंगार करूँगी।"[1]

-उपर्युक्त तथ्य केलिए उत्तम उदाहरण है। इनके अतिरिक्त कवयित्री पुरुषार्थवती आदि की कविताओं में भी यही मुखर हो उठता है कि सुख और दुख के सामंजस्य का परिणाम ही जीवन है। इस जीवन में स्थायी सुख की आशा करना एक भ्रम मात्र है। वस्तुतः दुःख ही जीवन का स्थायी लक्षण है। इसी को बौद्ध दर्शन में जीवन का पहला सत्य कहा गया है।

3.5.2 जीवन की क्षणिकता

कवयित्रियों की दृष्टि में यह जगत् अस्थिर एवं परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशील जगत में प्राप्त जीवन भी अस्थिर एवं नश्वर है। इस अस्थिर संसार से हम स्थिर सुख की कामना करते हैं। यही सबसे बड़ी मूर्खता है। जब जीवन ही क्षणिक है तो उसकी यह सुखानुभूति स्थायी कैसे रह सकती है। दुख तो अवश्यंभावी है। किन्तु इस दुख के चक्कर में जीवन भर रोते रहना निरर्थक है। क्षणभर का यह जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है। इस जीवन के पल-पल को जीने की प्रेरणा देते हुए कवयित्री कहती हैं -

"सत्य करो पल भर को सपना
छोड़ो दुख की माला जपना
कौन रहा है जग में चिर दिन
व्यर्थ सिसकना, व्यर्थ कलपना ।"[2]

---

1. तारा पांडे - स्त्री काव्यधारा, पृ. 167
2. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - आशापर्व, पृ. 84

तात्पर्य यह कि इस संसार में कोई भी प्राणी स्थिर नहीं है। ऐसे में रोना-धोना सब व्यर्थ है। जिन्दगी में आगे बढ़ने केलिए दुख को रटना छोड़ो और अपने सपनों को पल भर केलिए ही सही सत्य करो, अपने सपनों को जियो। कवयित्री की ये पंक्तियाँ -

"भाग रहे हैं जीवन के क्षण।
x x x
जन्म-जन्म को आज बना लो
बाँध पलों को चिर-स्थिर नूतन
भाग रहे हैं जीवन के क्षण।"[1]

-जीवन के प्रतिपल जीने की प्रेरणा दे रही हैं। ज़िन्दगी के प्रत्येक पल को नया आयाम देने की, नवीनता प्रदान करने की और संकेत कर रही है। क्योंकि जीवन के पल-पल भाग रहे हैं। जीवन की यह क्षणिकता कहीं न कहीं बौद्ध चिन्तन से प्रभावित दिखाई देती है।

3.5.3 कर्म का महत्त्व

क्षणिक जीवन को सार्थक बनाने में कर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवयित्रियों ने सम्यक कर्म आदि को अपने जीवन साधन के रूप में अपनाया है। कर्म ही जीवन को सार्थक बनाता है। कर्मरत व्यक्ति ही अपने लक्ष्य को पाता है। जो कर्म के प्रति समर्पित रहता है वही अपने मंज़िल तक पहुँचता है। सुमित्राजी की ये पंक्तियाँ -

"रात के गहरे अंधेरे में उड़ा जो
उस विहग को मिल गयी प्राप्तः किरण भी।

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा-आशापर्व, पृ. 95

ताप से मिल तरलता बन मेघ जाती
पैठता जो, सिन्धु, पाता रत्न-थाती
भावना ऊँची लिए सागर-लहर भी
उछलकर है क्षितिज की सीमा डुबाती।"[1]

-कर्म की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। वे कहती हैं कि जो सागर गहराई में जाकर पैठता है, वही मोती लाता है। आखिरकर सागर की रहरें भी ऊँचाई में उछलकर ही तो क्षितिज की सीमा डुबाती हैं। अर्थात् लक्ष्य तक पहुँचने केलिए कठिनाइयों का सामना तो करना पड़ता है। सुमित्रा कुमारी सिन्हा जी के संग्रह 'बोलों के देवता' का विषय व्यक्ति की जीवन के प्रति निश्चल आस्था, जीवन साधना की रचनात्मक भावभूमि और भौतिक क्षेत्र में कर्म की सुनिश्चित प्रेरणा है। इन कविताओं में सुमित्रा जी आत्मसम्मान से युक्त अडिग विश्वास को लेकर चलनेवाली साधिका हैं तो दूसरी ओर भौतिक जीवन के अनुकूल-प्रतिकूल वेदनीय तत्वों और भावों में सामंजस्य लाकर जीवन को सुकर और सफल बनाने की प्रेरणा देनेवाली गायिका भी हैं। इनके जीवनादर्श चित्र की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि जीवन के प्रति उनकी आस्था विश्वास और प्रेम से पुष्ट और पोषित है। बाधा और उलझन के क्षणों में भी उन्हें अंतिम मंज़िल पर सफलता का अडिग विश्वास है। यही बात हम पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश कर रही थी कवयित्री महादेवी वर्मा।

उनके अनुसार इस कर्म-संकुल जीवन में दुखों से हताश होकर बैठ

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - बोलों के देवता, पृ. 127

जाना अपनी पराजय स्वीकार करना है। महादेवी का मानवतावादी जीवन-दर्शन कर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करता हुआ संघर्ष केलिए प्रेरित करता है :-

"टकरायेगा नहीं आज उद्धत लहरों से
कौन ज्वार फिर तुझे पार तक पहुँचायेगा?
अब तक धरती अचल रही पैरों के नीचे
फूलों की दे ओट सुरभि के घेरे खींचे
पर पहुँचेगा पथी दूसरे तट पर उस दिन
जब चरणों के नीचे सागर लहराएगा।"[1]

जो उद्धत लहरों से भयभीत होगा वह कभी पार नहीं पहुँचेगा। दृढ़ता और आशा का संचार करनेवाली महादेवी की ये पंक्तियाँ उनके दृढ़ व्यक्तित्व का संदेश है। कवयित्री तृप्ति को जीवन की निष्क्रियता का कारण मानती है। उनका यह कथन

"चिर तृप्ति कामनाओं का कर जाती निष्फल जीवन।"[2]

इस ओर संकेत करता है कि जीवन की सक्रियता और सुख केलिए आवश्यक है कि अतृप्ति बनी रहे। यामा और दीपशिखा में संकलित कई ऐसी कविताएँ हैं जो जीवन के विविध पक्षों के प्रति उनका दृष्टिकोण परिलक्षित करती हैं।

पुरुषार्थवती देवी, राजकुमारी श्रीवास्तव आदि की कविताओं में भी यह भाव द्रष्टव्य है।

---

1. महादेवी वर्मा - महादेवी - साहित्य भाग-3, पृ. 172
2. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 77

3.5.4 परदुख कातरता

सुख-दुख सम्मिश्र इस जीवन के दौर में कर्मरत होकर आगे बढ़ते समय सहयात्रियों का होना स्वाभाविक है। उनके प्रति संवेदनशील होना अपने आप में मानवता को प्रतिष्ठित करना है। कवयित्रियों के काव्य में मानवीय प्रेम की अभ्यर्थना ज़ोरों पर हुई है। कवयित्री महादेवी वर्मा अपनी प्रणय वेदना में जब आर्तजन का क्रंदन सुनती है तब उन्हें अपने सुख-दुःख का स्मरण नहीं रहता। तब उनका हर संभव प्रयत्न यही होता है कि किसी प्रकार वह दुःख के अंधकार में घिरे प्राणियों का कष्ट निवारण करे। इसकेलिए वह अपने मन के दीपक को निरंतर जलते रहने का संदेश देती है, ताकि उसके प्रकाश में लघुतम प्राणी भी अपने लक्ष्य तक पहुँच जाएँ -

> "दीप मेरे जल अकंपित घुल अचंचल।..
> पथ न भूले, एक पग भी घर न खोये लघु विहग भी
> स्निग्ध लौ की तूलिका से आँक सबकी छांह उज्ज्वल।"[1]

ये पंक्तियाँ कवयित्री के संवेदनशील होने का एहसास दिलाती है, साथ ही इस ओर भी संकेत कर रही हैं कि वे अपने आप में सीमित नहीं थी। दुःखार्द कवयित्री विश्व-वेदना में अपना सुख विलीन कर देने में जीवन की सार्थकता समझती है -

> "मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियाँ देखो।
> मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो।"[2]

---

1. महादेवी वर्मा - दीपशिखा, पृ. 69-70
2. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 154

विश्व-मंगल की भावना से प्रेरित, मानवतावादी दृष्टि से अनुप्राणित महादेवी, कण-कण के क्रंदन को पहचान कर उनके दुख को सुख की कथा में परिवर्तित करने का प्रयास करती है। इसी तरह सुमित्रा जी अपने समाज के शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहती हैं -

“आज लेखनी भर लूँ
उनकी दुनिया से जो दर्द भरे हैं।
आज निरख लूँ उनकी छाती
अनगिन जिनके घाव हरे हैं।
बहा ले चलूँ दुख की नौका
अपने आँसू की धारों में
सबसे ऊँचा मेरा ही स्वर
उठे विकल उन चीत्कारों में।”[1]

यहाँ कवयित्री दुखी जनता के दर्द को अपने में समाना चाहती है और साथ ही एक कवि होने के अपने दायित्व के प्रति अवगत प्रतीत होती हैं। अर्थात् स्त्री कविताएँ आत्म केन्द्रित नहीं बल्कि समाज केन्द्रित हैं। कवयित्री के ‘बोलों के देवता’ संग्रह इसी भावना को लिए हुए हैं।

3.5.5 जन्म-मृत्यु संबंधी दृष्टिकोण

जन्मृ-मृत्यु से संबंधित विचार भी व्यक्ति की जीवन दृष्टि का अंग होता है। यह इसलिए कि अंत में जीवन की परिणति मृत्यु में ही होती है। हमारा जीवन क्षणिक है। कभी भी मृत्यु का आगमन हो सकता है। शायद इसीलिए हमारे सारे क्रिया-कलाप मृत्यु की धारणा से प्रभावित रहते हैं।

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - आशापर्व, पृ. 94

किन्तु यहाँ हमारी कवयित्री केलिए मृत्यु कोई ऐसी बात नहीं है जिससे भयभीत हुआ जाए। जन्म और मृत्यु जीवन के दो पक्ष है। सृजन के साथ विनाश भी अवश्यंभावी है। कवयित्री महादेवी वर्मा ने अपनी सौन्दर्यमयी भावनाओं के अनुरूप ही मृत्यु का भी सहज स्वागत किया है। उन्होंने जीवन को चंचल बालक और मृत्यु को जननी माना है। वे कहती हैं -

"तू धूल भरा ही आया!
ओ चंचल जीवन-बाल! मृत्यु जननी ने अंक लगाया।
जिस दिन लौटा तू चकित, थकित-सा उन्मन
करुणा से उसके भर-भर आये लोचन
चितवन छाया में दृग-जल से नहलाया।
पलकों पर घर-घर अगणित शीतल-चुंबन
अपनी साँसों से पोंछ वेदना के क्षण
हिम-स्निग्ध करों से बेसुध प्राण सुलाया।
नूतन प्रभात में अक्षय गति का वर दे,
तन सजल घटा-सा तडित-छटा सा उर दे
हँस तुझे खेलने फिर जग में पहुँचाया।"[1]

अर्थात्, दिन भर खेल-खेलकर बालक जब थका-हारा घर पहुँचता है तब उसकी थकान पर माँ करुणा से व्याकुल हो जाती है। वह प्यार से उसकी क्लांति हर लेती है अपने मधुर चुंबन और कोमल थपकियों से विश्राम पाकर बालक फिर चैतन्य हो जाता है। माँ उसे पुनः तैयार कर, सजा-संवार कर खेलने केलिए भेज देती है। माँ और बालक के इस स्वाभाविक सांसारिक क्रिया के माध्यम से कवयित्री ने जन्म और मृत्यु का मार्मिक चित्रण किया है।

1. महादेवी वर्मा - दीपशिखा, पृ. 95

उनकेलिए वह 'विश्व-जीवन का उपसंहार' है । मकरंद-सी चाह लिये पुष्प रूपी जीवन मुरझाता भी है तो नव शैशव प्राप्त करने केलिए। महादेवी मुक्ति की अपेक्षा मृत्यु को स्तुत्य मानती हैं। उनके अनुसार "अमरता जीवन का ह्रास और मृत्यु जीवन का चरम विकास है।"[1] इस प्रकार जीवन मृत्यु का क्रम निरंतर चलता रहता है।

3.5.6 कवि संबंधी दृष्टिकोण

आलोच्यकाल का सामाजिक वातावरण कुछ इस हद तक उथल-पुथल का था कि जनता की उम्मीद कलम की ताकत से जुड़ी थी, उनका भरोसा साहित्यकारों पर टिका था। अब उन्हीं के ज़रिए कुछ परिवर्तन समाज में होने की संभावना थी। जनता की इस आकांक्षा को हमारी कवयित्रियाँ भी पहचान चुकी थी। तारा पांडे की निम्नांकित पंक्तियाँ साहित्यकार पर जनता का भरोसा व्यक्त करती हैं-

"ओ कवि! ऐसा गीत सुनाना
यह नैराश्य तिमिर भग जावें
सोई उर उमंग जग जावे
धुंधली आशाओं का फिर से उज्ज्वल चित्र दिखाना।"[2]

जनता का यह विश्वास है कि संपूर्ण समाज को चेतना संपन्न बनाने की ताकत कवि की कलम रखती है। उस कलम की नोक से झरते एक-एक शब्द में इस दुनिया को बदलने की क्षमता है। इतिहास इस बात का साक्षी

1. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 84
2. तारा पांडे - स्त्रीकाव्यधारा, पृ. 168

है। कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा 'बोलों के देवता' (साहित्यकार) से इस बात की आशा रखती हैं:-

"बोलों के देवता, बोल कुछ ऐसे बोलो।
ऐसे बोल कि जिन के शब्दों में अमरत्व-सिन्धु लहराए,
ऐसे बोल कि जिनको सुनने उच्च हिमालय शीश उठाए
ऐसे बोलो, युग की साँसों में लय की मधुता तुम घोलो।
x x x
अंतरात्मा-कलाकार। मत, निज को बुद्धि-तुला पर तोलो।"[1]

ये पंक्तियाँ ज़ाहिर करती हैं कि कवयित्री अपने उत्तरदायित्व से बखूबी वाकिफ है। इसीलिए 'बोलों के देवता' से युग केलिए अपेक्षित कुछ ऐसे ही जीवन प्रेरक बोल बोलने की माँग की है जिससे व्यक्ति अपने जीवन में थकान, ऊब अथवा निराशा की ओर मुड़ ही न पाए। इन सबके अतिरिक्त कवयित्रियों की कविताएँ इस काल खंड में भी ईश्वर के प्रति अटूट आस्था प्रकट करती नज़र आती हैं। पुरुषार्थवतिदेवी, विद्यावती कोकिल, होमवती देवी, महादेवी वर्मा, सुमित्रा कुमारी सिन्हा आदि की कविताओं में स्पष्ट रूप में विद्यमान है।

इन कवयित्रियों की कविताएँ आशावादी दृष्टि से ओतप्रोत है। जीवन के हर नकारात्मक पहलू को सकारात्मक दृष्टि से देखने की हिम्मत रखती हैं ये। रामेश्वरी देवी गोयल की कविताओं में स्वतंत्रता की चाह को लेकर ये भावना देख सकते हैं। लोकमंगल की भावना से भरी इनकी कविताओं में बाल-सुलभ जिज्ञासा और वात्सल्य के पुट भी नज़र आते हैं। महादेवी के

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा -बोलों के देवता, पृ. 123

'प्रथम आयाम' संकलन में समस्यापूर्तियों का उल्लेख भी मिलता है जो उनकी बाल्यावस्था में लिखी गयी थी। इस तरह कुछ छोटी-छोटी प्रवृत्तियाँ इनकी कविताओं में इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं।

3.6. अन्य प्रवृत्तियाँ

3.6.1 प्रकृति बोध

मानव और प्रकृति का संबंध अभिन्न है। इस दृश्यमान जगत में जन्म लेकर, विकास पाकर ही मानव-स्वभाव गतिशील होता है। उसके भौतिक वातावरण ही उसकी प्रकृति का निर्माण करते हैं। मानव जीवन पर प्रकृति के इस व्यापक प्रभाव के कारण ही संभवतः स्वभाव को प्रकृति की संज्ञा दी गई है। मनुष्य ने प्रकृति को विभिन्न दृष्टियों से स्वीकरा है। संवेदनशील कवि ने प्रकृति की चेतना को मानव जाति के साथ ऐसे सम्मिलित कर लिया कि न वह अकेली रही न मनुष्य। वैसे भी आलोच्य युग में छायावाद की संवेदना में संवलित होकर प्रकृति और जीवंत हो गई है। इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि कोमल और कल्पनाशील कवियों के हृदय को मानव-लोक-व्यवहार संतुष्ट नहीं कर सका। उनकी आंतरिक प्रवृत्ति और मानसिक स्थिति को समझने केलिए जिस सहानुभूति पूर्ण आचरण की आवश्यकता थी वह उन्हें नहीं मिला। विवेच्य कालीन कवयित्रियों ने अपनी व्यथा-कथा सुनानेकेलिए प्रकृति को ही चुना। इनकी कविताओं में प्रकृति के विशुद्ध रूप भी मिलते हैं, और प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप भी।

निम्नंकित पंक्तियों में प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है-

"उत्सव है प्रकृति-वधू-घर, वैभव ले ऋतुपति आया।
मदिरा से भीना पुलकित उल्लास-हास है छाया।
मदमाती गूंजों में है अलि की उठती नूपुर-ध्वनि।
अग-जग को मुखरित करता मलयज का मुरली-निस्वन।
सुरधनु-काया ले आई तितली डालों पर चंचल।
गाती मदमाती कोयल झरने हँसते से कल कल ।"[1]

इन पंक्तियों में वसंत ऋतु के आगमन पर प्रकृति में जो परिवर्तन दर्शनीय होता है उसका वर्णन है। प्रकृति का मोहक सौन्दर्य कवयित्री की हृत्तंत्रियों को झंकृत कर देता है। उनके हृदय में अनगिनत भावनाओं की सृष्टि करता है। प्रकृति के विराट और महान् रूपों में महादेवी वर्मा हिमालय से सर्वाधिक प्रभावित हैं। वह हमारी उज्ज्वल सांस्कृतिक परंपरा का प्रतीक है। उसकी महत्ता, उदारता और तटस्थता से कवयित्री तादात्म्य स्थापित करना चाहती है :-

"हे चिर महान्।....
मेरे जीवन का आज मूक
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छू ले
मन ले करुणा की थाह नाप।
उर में पावक दृग में विहान ।"[2]

प्रकृति के साथ संपर्क मानव को नाना प्रकार की प्रेरणा देता है।

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - आशापर्व, पृ. 99
2. महादेवी वर्मा - यामा, पृ.259

हिमालय की अचलता, उज्ज्वलता और विशालता से जहाँ महान होने की प्रेरणा मिलती है वहीं मेघों से करुणावाहक बनने की। यहाँ महादेवी ने प्रकृति से पर्वत को चुना तो अन्य कवयित्रियों ने प्रकृति के अन्य उपादानों को भी अपनाया है। 'काव्यतीर्थ' की 'मयूरी नर्तन' नामक कविता इसका उदाहरण है।

इन कवयित्रियों के काव्यों में अधिकतर प्रकृति के कोमल-मधुर भाव व्यंजित है। केवल एकाध स्थलों पर प्रकृति के त्रासकारी भयंकर रूप का चित्रण मिलता है। निम्नांकित पंक्तियों में प्रकृति के भयंकर रूप का प्रभावशाली वर्णन हुआ हैः-

"तरंगे उठी पर्वताकार, भयंकर करती हाहाकार,
अरे उनके फेनिल उच्छावास, तरीका करते हैं उपहास
हाथ से गयी छूट पतवार, कौन पहुँचा देगा उस पार?
ग्रास करने तरणी स्वच्छंद, घूमते फिरते जलचर बृन्द
देख कर काला सिन्धु अनंत, हो गया हा साहस का अंत।
तरंगे हैं उत्ताल अपार, कौन पहुँचा देगा उस पार?"[1]

प्रकृति का शांत-स्निग्ध रूप जहाँ मनमोह लेता है, वहीं उसका विकरालरूप विक्षुब्ध कर देता है, यही ये पंक्तियाँ दर्शाती हैं।

प्रकृति के उपादानों की पृष्ठभूमि पर भोर के मानवीकरण का सुन्दर शब्दचित्र भी द्रष्टव्य हैंः-

"आँसू भरी बिदाई दे कर रात चली थी
चन्दा के मन की मुरझाई हास-कली थी

1. महादेवी वर्मा - यामा, पृ. 18

याद बावली उसको लेकर तब मचली थी,
मूँदे पट को खोल समाया युग-युग का वह अपना!
आज नींद की पलकों पर खिल उठा भोर का सपना।"[1]

भाव-व्यंजना के साथ कल्पना की सृजनशीलता से भी ये पंक्तियाँ संपन्न है। प्रकृति के मानवीकरण की यह प्रवृत्ति तत्कालीन कावव्यप्रवृत्तियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। महादेवी वर्मा की कविताओं में प्रकृति के मानवीकरण के भरपूर चित्र मिलते हैं। 'निशा को धो देता रकिश.... ' जैसी पंक्तियाँ इसी में समा जाती हैं। संवेदनशील कवयित्रियों ने प्रकृति को भी संवेदनशील माना है। अपने अलौकिक निराकार प्रियतम का अनुभव वे प्रकृति के कण-कण में करती हैं। प्रकृति अपनी सुन्दरता, व्यापकता और रहस्यमयता के कारण अनादि काल से मानव-मन को प्रभावित और आंदोलित करती रही है। प्रकृति की स्वाभाविक रमणीयता और सहज गुणों से प्रभावित कवयित्री उसे अपनी सहचरी के रूप में भी देखती है। इस संबंध में किसी प्रकार का दुराव-छिपाव अथवा औपचारिकता नहीं होती। प्रकृति-सखी प्रिय की सुधि मात्र ही नहीं लाती, वह तो प्रिय के आगमन का संदेश भी लाती है। 'यामा' की पंक्तियाँ उदाहरण हैं।

प्रकृति पर मानवीय रूप का आरोप करके ने प्रतिपाध्य विषय को गत्यात्मक और प्रभावशाली बना दिया है। प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य में सूक्ष्म संवेदनों को स्थापित करने की कोशिश हुई है कवयित्रियों की कविताओं में। तारा पांडे, पुरुषार्थवती देवी, रामेश्वरी देवी गोयल, हीरादेवी चुतर्वेदी आदि

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - बोलों के देवता, पृ. 128

संवेदनशील कवयित्रियों की कुशल लेखनी-तूलिका से चित्रित होकर प्रकृति के विविध रूप रंग जगमगा उठे हैं।

3.6.2. नीति और आदर्श

द्विवेदी युगीन काव्यों में नीति एवं उपदेश की प्रवृत्ति तत्कालीन वातावरण को दर्शा रही थी जिसे आगे आनेवाली पीढ़ी भी अपने से दूर नहीं कर पायी। इसलिए आलोच्य युगीन कविताओं में यह प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है। विज्ञान ने एक ओर जहाँ सुख सुविधाएँ प्रदान की, मनुष्य को तार्किक बनाया वहाँ दूसरी ओर आतंक फैलाकर सामाजिक मूल्यों को भी प्रभावित किया है।

कवयित्री पुरुषार्थवती जी की 'दलित कलिका' नामक कविता से उद्धृत ये पंक्तियाँ-

> "गर्व, दर्प सब खर्ब हुआ अब, गिरी हुई हत-मान।
> करुणा-क्रन्दन है केवल अब होने तक अवसान ।।
> हो गर्वित, उन्मत्त विटप पर झूम रहे हो फूल।
> मुझे देख फूले हो, जाना निज अस्तित्व न भूल।"[1]

खिले हुए फूलों के गर्व को देखकर उन्हें आगाह करानेवाले मुर्झाये फूलों की मानसिकता व्यक्त करती हैं। यहाँ खिले हुए फूल युवजनों केलिए और मुर्झाये हुए फूल बुजुर्गों के लिए प्रयुक्त शब्द प्रतीत होते हैं। खिले हुए फूल जहाँ अपने यौवन के उमंग में मदमस्त एवं अहंग्रस्त होकर मुर्झाये हुये

---

1. पुरुषार्थवती देवी - स्त्री-काव्यधारा, पृ. 179

फूलों का मज़ाक उडाते हैं जो अपने जीवन के अवसान पर है वहाँ मुर्झाये फूल उन्हें सचेत करते हुए कहते हैं कि उन्हें देखकर ही फूल खिले हैं, यही स्थिति उनकी भी होनेवाली है, इसलिए अपने अस्तित्व को मत भूलो। यहाँ कवयित्री यह चेतावनी भी दे रही है कि अपने वर्तमान सुखद स्थिति को देखकर घमंड करने की कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि जीवन नश्वर है और आनेवाला पल हमें कभी भी उस स्थिति तक भी पहुँचा सकता है जिसके प्रति कभी हमने मज़ाक या उपेक्षा भरी दृष्टि दिखाई थी।

3.7. भाषागत विशेषताएँ

अनुभूति की अभिव्यक्ति भी एक कला है। अभिव्यक्ति या शिल्प कौशल से अनुभूति की रमणीयता तथा संप्रेषणीयता समृद्ध होती है। आलोच्य युगीन कवयित्रियों की कविताएँ भी संप्रेषण कौशल के फलस्वरूप रोचक एवं हृदय-ग्राही प्रतीत हुई है।

शब्द भाषा के आधार हैं। कवि की सर्जना-शक्ति की सफलता उसके शब्द-समूह एवं शब्द चयन में है। भाषा की दृष्टि से इनकी कविताएँ तत्सम बहुल हैं। संस्कृत के अधिकांश शब्दों का अविकल प्रयोग मिलता है। 'अलिनी', 'उर्वी', 'वारिद', 'राका', 'अश्रु', 'नीहार', 'उदधि', 'वैभव', 'समाधि', 'साधन', 'आराधन', 'अनुताप', 'निर्वाण', 'निमेष', 'दुकूल', 'वसुधा', 'वक्ष', 'किसलय', 'ऋण', 'शोणित', 'हृत्तल', 'दारुण, व्रीड़ा', 'विक्षिप्त', 'मंजुल', 'नीरव', 'उद्भ्रांत', 'विहाग', 'यामिनी', 'तमिस्रा' आदि

इनकी कविताओं में प्रयुक्त संस्कृत शब्द हैं। इनके अतिरिक्त 'चाँदनी', 'रैन', 'सुहाग', 'अलसाई', 'रंगीले' आदि तत्भव (संस्कृत से उद्‌भव), 'चूनर', 'पाहुन' आदि देशज एवं 'तूफान', 'प्याला', 'नादान' आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

लोक-जीवन की धरती से अंकुरित और पल्लवित-पुष्पित होनेवाले मुहावरे-लोकोक्तियों का प्रयोग भी स्त्री काव्य में मिलता है जिनका मूल प्रयोजन अर्थ लालित्य की सृष्टि करके भाषा की जीवंतता और मार्मिकता को बनाये रखना है। 'धूल में लोटना', 'तारे गिनना', 'धराशायी होना', 'तिल-तिल करके जलना' आदि मुहावरों का प्रयोग एवं 'पैठता जो सिन्धु पाता रत्न थाती' जैसे काव्यात्मक शैली में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ भी स्त्री काव्य में बिखरे पड़े हैं।

'सूक्तियाँ', जिनके द्वारा जीवन के अनेक सारपूर्ण तथ्यों का परिचय प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति स्वयं में चमत्कृत बनने का प्रयास करता है, उसका प्रयोग करके साहित्यकार भाषा को समृद्ध बनाता है। आलोच्यकाल की कविताओं में भी कवयित्रियों ने सूक्तियों को मिलाकर काव्य को रोचकता प्रदान की है। 'कल की भूलें आज ज्ञान हैं', 'सुनेपन के बन्दी ही तो शब्दों का संचार रचाते', 'विश्वास-प्यार का बन्धन हो तो युग-युग क्षण बन रह जाए', 'सृष्टि नियम है निशि के बाद सदा होता दिन', 'प्यार के आधार पर ठहरा हुआ संसार है यह, आदि सूक्तियों के प्रयोग से भाषा को समृद्ध बनाया गया है।

काव्य की रमणीयता, प्रेषणीयता, स्पष्टता और चमत्कार उद्रेक केलिए विभिन्न अलंकारों का प्रयोग भी मिलता है। शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों के प्रयोग से इनका काव्यसौन्दर्य और मुखर हो उठा है। 'नाते-सताते', 'पाला-व्याला', 'तार-दुलर', 'विषाद-नाद', 'उमंग-तरंग', 'शांति-भ्रांति', 'लीन-दीन', 'विलोक-शोक', 'पीड़ा-क्रीड़ा', 'चपला-अचला', 'बात-रात', 'जल-प्रतिपल' आदि अनुप्रास युक्त शब्दों के प्रयोग से काव्य में नाद सौन्दर्य की सुन्दर योजना हुई है। अर्थ को चमत्कृत कर देनेवाले आर्थालंकारों की भी कमी नहीं है। प्राचीनकाल से ही कवि प्रकृति के उपादानों से उपमानों का चयन करके अपनी अभिव्यक्ति को अर्थ गौरव से मंडित कर रहे हैं।

"रात-सी नीरव व्यथा तम-सी अगम मेरी कहानी।"[1]- जैसी पंक्तियों में सादृश्य के आधार पर ललित उपमानों का विधान करके भावाभिव्यंजना को उत्कृष्ट अर्थ विस्तार दिया है। सुमित्रा जी की कविताओं में भी ऐसे उदाहरण सुलभ हैं।

'बिम्ब' काव्य-शिल्प का अनिवार्य अंग है। बिम्ब का अर्थ है - प्रतिमा, प्रतिरूप या प्रतिच्छाया। इन शब्दों से जो अर्थ ध्वनित होते हैं वे वस्तु विशेष की दृश्यात्मक सत्ता की प्रतीति कराते हैं। अर्थात् अमूर्त विचार या भावना की ऐन्द्रिय अनुभूति के आधार पर कल्पना के द्वारा पुनर्रचना करनेवाले शब्द चित्र को बिम्ब कहते हैं। विवेच्य युगीन काव्य शिल्प अतिशय बिंबपरक है। इसका प्रधान कारण है कवियों का कल्पना के प्रति

1. महादेवी वर्मा - दीपशिखा, पृ. 129

विशेष मोह। सुमित्रा जी की ये पंक्तियाँ -

"नभ के ज्योतिर्मय आँगन में
रहते विलीन जो तारागण
रजनी के नील गगन में फिर
छा जाते बन वे हीरक-कण।"[1]

-जीवन की क्षणिकता की ओर इशारा करती हैं। कुछ भी स्थिर नहीं है।

सूर्य की प्रभा में जो तारकगण अदृश्य रहते हं वे ही निशा के अंधकार में चमकते नज़र आते हैं। अर्थात् प्रेमिका का अलौकिक प्रियतम उसकेलिए उस तारकगण के समान है जो सूरज के उजियाले में अप्रत्यक्ष रहने पर भी रजनी के नील गगन में अपने होने का एहसास दिलाता है।

इसी तरह महादेवी का यह काव्य बिम्ब-

"हृदय पर अंकित कर सुकुमार
तुम्हारी अवहेलना की चोट
बिछाती हूँ पथ में करुणेश
छलकती आँखें हँसते ओठ।"[2]

-उस समर्पिता वियोगिनी का चित्र प्रस्तुत करता है जो प्रिय की अवहेलना की चोट सहते हुए भी उसकी प्रतीक्षा में लीन है। उसकी प्रतीक्षा सामान्य नहीं है। प्रिय पथ में वह छलकती आँखें और हँसते ओठ बिछाये बैठी है। इन पंक्तियों से हमारे मन में सीमातीत विरह-ज्वाला से दग्ध विरहिणी का रूप प्रत्यक्ष हो जाता है।

---

1. सुमित्रा कुमारी सिन्हा - विहाग, पृ. 36
2. महादेवी - यामा, पृ. 40

बिम्बों के समान प्रतीकों की भी काव्य के अंतर्गत महती उपयोगिता है। अप्रस्तुत को प्रस्तुत करनेवाले संकेत को प्रतीक कहते हैं। यह अप्रस्तुत कोई भी विषय, पदार्थ, व्यक्ति, प्रसंग, भाव अथवा वस्तु हो सकता है। उदाहरण केलिए प्रकाश और अंधकार, सुख और दुःख के प्रतीक हो सकते हैं। इसी अर्थवत्ता के साथ यहाँ कविताओं में कई प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं।

सुमित्रा जी की कविताओं में प्रतीकात्मक पद योजना आवश्यक स्थलों पर व्यवहृत हुई है। 'बुझ जावें अभिलाशा-दीपक घिर आवे मन में सघन गगन' में दीपक और गगन प्रतीकात्मक प्रयोग हैं जिनसे काव्य को सुन्दर रूपमत्ता मिली है। महादेवी जी की कविताओं में अलौकिक-प्रेमानुभूति लौकिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुई है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों का अधिकांश प्रकृति से गृहीत है। लौकिक उपकरणों में 'दीपक' और 'वीणा' का प्रतीक रूप में सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। अनेक ऐसे प्रतीक भी हैं जो संदर्भानुसार भिन्न अर्थ द्योतित करते हैं। 'दीपक' कवयित्री के साधनाशील अंतर का प्रतीक है। 'अंधकार' निराशा का, 'शूल' कष्ट या बाधा का, 'शून्य' सुनेपन आदि का प्रतीक है। महादेवी के काव्य ग्रंथों के शीर्षक भी प्रतीकात्मक हैं। 'नलिनी' जी की कविता में 'बसंत' स्वतंत्रता का प्रतीक बनकर आया है।

'छंद' गद्य से पद्य को पृथक करनेवाला मूल तत्व है। इसीलिए काव्य में छंद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि की रागात्मक चेतना को अधिक से

अधिक प्रेषणीय बनाने का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है छंद। काव्यभाषा में भावनुकूल शब्द संयोजन अनिवार्य हो जाता है, उस विशेष शब्द चयन से भाषा में स्वतः ही गति और लय आ जाती है। लय और गति से युक्त पद्य-रचना ही छंद है। प्रत्येक युग की काव्यधारा ने अपनी भाषा के अनुकूल उसकी प्रभविष्णुता का साथ देनेवाले छंद-बंध को स्वीकार किया है। छंद की तीन विशेषताएँ मानी गयी हैं - लय, यति और अन्त्यानुप्रास । इनका सान्निध्य एवं कविता की गेयता उसके छंदोबद्ध होने का प्रमाण है। अर्थात् आलोच्य युगीन कविताएँ छंदोबद्ध हैं। 'सखी', 'रूपमाला', 'पीयूषवर्ष', 'श्रृंगार', चौपाई, 'पद्धरि', 'राधिका' इस युग में प्रयुक्त कुछ सामान्य छंद है।

इन सबके अतिरिक्त, प्रस्तुत युगीन कविताओं में संबोधन की शैली, 'मैं' शैली, प्रश्नवाचक शैली आदि का प्रयोग विद्यमान है। कई कविताएँ शीर्षक विहीन हैं। शीर्षक के स्थान पर संख्याओं का इस्तेमाल हुआ है। कुछ कविताएँ काफी लंबी प्रतीत होती है। कहीं-कहीं इतिवृत्तात्मकता का पुट देखने को मिलता है। विविध विषयों पर कविताएँ हुई हैं। मन के भावों पर भी। सर्वोपरि इन कविताओं में कल्पना का प्राचुर्य एवं माधुर्य का प्रचुर पुट इस कदर व्याप्त है कि कविता का सौन्दर्य और अधिक बढ़ गया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरांत यह तथ्य सामने आता है कि आलोच्य युग में छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के अतिरिक्त अन्य कई कवयित्रियाँ भी अपनी लेखनी चला रही थीं। यद्यपि सभी कवयित्रियाँ छायावाद के घेरे

में नहीं आतीं फिर भी छायावादी काव्य की कुछ प्रवृत्तियाँ लगभग सभी के काव्यों में समान रूप से पायी जाती है। कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा की काव्ययात्रा की दिशा छायावाद की ओर अग्रसर होती हुई नज़र आती है। क्योंकि छायावाद की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ, यहाँ तक कि भाषा का प्रभाव भी इनके काव्य में विद्यमान है। महादेवी वर्मा के समान अलौकिक प्रियतम के प्रति प्रेम और विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति इनके काव्य में देखी जा सकती है। छायावादी रचना शैली की आलंकारिकता भी यहाँ उपयोग में लाई गयी है। यह वस्तुतगत विश्लेषण हमारा ध्यान इस ओर केन्द्रित कर रहा है कि हिन्दी साहित्य के छायावादी काव्यधारा के अंतर्गत एक और कवयित्री अपनी उपस्थिति दर्ज करना चाहती है। इनकी काव्य रचनाएँ छायावाद के लगभग करीब है। अन्य कवयित्रियों की प्राप्त रचनाओं के आधार पर यह बात ज़ाहिर है कि सबने अपनी कविताओं में आत्माभिव्यक्ति दी है, किन्तु किसी ने भी समाज के प्रति उपेक्षा भरी दृष्टि नहीं दिखाई। महादेवी वर्मा जिन्हें वेदना की कवयित्री घोषित किया गया था उनके काव्य में देशप्रेम की भावना मुखरित थी। साथ ही स्त्री मुक्ति की आहट भी सुनायी देती है। सारतः इस युग की सभी कवयित्रियों ने जीवन को सकारात्मक दृष्टि से अपनाने की प्रेरणा दी है। जीवन के हर नकारात्मक पहलू को उन्होंने आशावादी दृष्टि से देखकर जीने की चाह प्रकट की है। ये कवयित्रियाँ अपने अस्तित्व को स्थापित करके अन्य सामाजिक इकाइयों केलिए प्रयत्नशील रही हैं।

❖ ❖ ❖

चौथा अध्याय

छायावादोत्तर स्त्री काव्यधारा

छायावादोत्तर स्त्री काव्यधारा के अध्ययन का यह प्रसंग प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता से अकविता तक के काव्यांदोलनों को स्पर्श करता है। इस बीच स्वतंत्रतापूर्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा का उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत छायावाद के बाद मिलता है। इसका तात्पर्य यह कतई नहीं है कि छायावाद के बाद राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा का आगमन होता है, बल्कि छायावाद के समांतर बहनेवाली धारा के रूप में ही इसकी उपस्थिति दर्ज है। किसी संदर्भ में कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान का उल्लेख मिलता है। इसीलिए उनके काव्य-रचना वैशिष्ट्य को यहाँ सम्मिलित किया जा रहा है। इनके अतिरिक्त इस समयावधि में कुछ ऐसी कवयित्रियाँ भी रही हैं जिनका स्थान इतिहास से बाहर रहा है। उनमें प्रमुख हैं - शकुंत माथुर, कीर्ति चौधरी, सुमन राजे, डॉ. रमा सिंह, किरणा जैन, कांता, इन्दु जैन, अमृता भारती, स्नेहमयी चौधरी, मणिका मोहिनी, मोना गुलाटी आदि। इनकी काव्यरचनाओं को भी इस अध्याय के तहत निर्दिष्ट स्थान दिया गया है।

किसी भी काल विशेष का साहित्य उस काल की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक चेतना से, उसकी अनेक प्रकार की उतार चढ़ाव की गतिविधियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। विवेच्य युगीन काव्य के संदर्भ में भी यही हुआ। तथाकथित सामाजिक गतिविधियों तथा काव्य में द्रष्टव्य उन सामान्य प्रवृत्तियों को यहाँ शब्दबद्ध किया जा रहा है।

4.1 सामाजिक यथार्थ

जब युग एवं समाज की परिस्थितियाँ बदलती हैं, उसके मूल्यों में अन्तर उत्पन्न होता है, तब कवि को भी युगीन मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुरूप साहित्य सृजन करना पड़ता है। क्योंकि समाज और साहित्य का गहरा संबंध होता है। अतः सजग रचनाकार हमेशा अपने काव्य को युग-संदर्भों से जोड़कर रखता है।

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में अनेक काव्यधाराएँ आगे-पीछे या समांतर रूप से क्रियाशील रही हैं और उनकी काव्य-प्रवृत्तियों में भी पर्याप्त अन्तर लक्षित होता है। अतः आलोच्य युग की कविता के मानदंड प्रारंभ से लेकर अन्त तक (सन् 1936 से 1980) एक ही जैसे नहीं रहे हैं, अपितु उनमें कुछ अन्तर अवश्य दृष्टिगत होता है; लेकिन सामाजिकता, वैयक्तिकता, आधुनिकता, स्वाधीनता, मानवीयता आदि वे आधार तत्त्व हैं जिनपर छायावादोत्तर हिन्दी कविता जन्मी, विकसित हुई और प्रतिष्ठा पाई है। आलोच्य युगीन कवयित्रियों की कविताओं से यह स्पष्ट होता है कि उनकेलिए वैयक्ति चेतना ही सर्वोपरि नहीं है। वे अपनी व्यक्ति चेतना को समष्टि चेतना के साथ मिलाने की आकांक्षा रखती हैं। वे युग एवं समाज की यथार्थ-स्थितियों से अपना तादात्म्य स्थापित करके चली हैं। इनकी कविताओं से उभरे सामाजिक यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को यहाँ अंकित किया जा रहा है।

4.1.1 स्त्री चेतना

नारी की स्थिति तो पहले से ही दयनीय बनी हुई थी। आलोच्य युग

के पूर्व समाज सुधारकों ने नारी-समस्या को राष्ट्रीय समस्या के रूप में उठाया तथा उसकी स्थिति को बेहतर बनाने की कोशिश की, लेकिन किस हद तक यह पिछले अध्यायों में देख चुके हैं। वस्तुतः नयी शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने नारियों को काफी प्रभावित किया था। फलतः उनमें भी नयी चेतना उत्पन्न हुई । इस नारी-चेतना एवं नारी जागरण का परिणाम यह निकला कि वह राजनीतिक, सामाजिक आंदोलनों में खुलकर भाग लेने लगी तथा पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर स्वराज्य-प्राप्ति के संघर्ष में सहायक बनी। कितने ही वर्ष सुषुप्ति में, बंधन में, पराधीनता में व्यतीत करने के बाद भारत की स्त्रियाँ जाग उठी। शिक्षा ने उनकी आँखें खोली है और अब वे अपनी पराधीन अवस्था का स्पष्ट अनुभव कर रही हैं। गुलामी की जंजीरों को तोड़कर बाहर आने केलिए वे हर प्रकार से प्रयत्नशील हैं। उन्हें क्या पता था कि प्यार और समर्पण की उन्हें यह कीमत चुकानी पड़ेगी। जागी हुई कवयित्री कहती हैं -

"मैंने नहीं जानी थी
प्यार की यह घिनौनी
परिणति।"[1]

यहाँ कवयित्री स्नेहमयी चौधरी को इस बात का आभास हो रहा है कि प्रेम और त्याग की यह परिणति थी कि स्त्री को घर की चारदीवारी के अंदर कैद रहना पड़ा। उसने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को अपनी दया, ममता,

---

1. स्नेहमयी चौधरी - एकाकी दोनों, पृ. 24

मधुरिमा, अगाध-विश्वास और समर्पण से अभिषिक्त किया है। बदले में उसे क्या मिला-कवयित्री कांता के शब्दों में -

"पहले खोना, खोकर पाना
फिर पा कर खो देनाः
अर्से तक यों ही गुज़रती गयी ज़िन्दगी।"[1]

जागरण की स्थिति में उसे इस बात का एहसास हुआ है कि वह अब तक पराई शर्तों पर, यात्रा कर रही थी। इन पंक्तियों में यह साफ नज़र आ रहा है कि स्त्री के हित में कुछ भी स्थिर नहीं था, जिससे उसका व्यक्तित्व रूपायित हो सके। वह जीती थी सिर्फ सहने केलिए । इतना कुछ सहने के बाद, दबने कुचलने के बाद उसके अंदर की जिजीविषा ही वह कारण है जिसके ज़रिए वह जी उठी । 'अभी और कुछ' संकलन में शकुंत माथुर की ये पंक्तियाँ -

"मैं हूँ
सिर्फ इतना ही जाना था।
X X X
मैं अपाहिजता की विवशता में जीती थी
मैं निर्थकता के
आदर्शों को पीती थी।
X X X
तुमने
मेरे सत्यों को झूठ ठहराया
तुमने
मेरे विश्वासों को

---

1. कांता - माध्यम पत्रिका, (अंक 5, सितबर 1966) पृ. 38

भ्रम का आवरण पहनाया है
तुमने मेरी पूर्णता को नग्न किया
तुमने
विरोधी तत्त्व बन
मेरे जड़ को मग्न किया
और मैं जी उठी।"[1]

-नारी की उर्वर वृत्ति (उर्वरता) को रेखांकित करती हैं। जो ध्वस्त करने के साथ परंपरा भी रच सकती है। अच्छा हुआ कि उसकी आत्म चेतना जाग उठी और उसका बौद्धिक स्तर ऊँचा हुआ साथ ही अपने परिवेश को पहचान लिया।

शिक्षा मिली। वह आगे आयी। शब्दों को समझने लगी। इससे आखिर क्या हुआ-

"ये तो अच्छा ही हुआ मैं
शब्दों का खेल जान गई।
तुम बोलो कहीं कुछ भी
इससे पहिले ही
तुम्हारे मन को पूरा नाप गई ।"[2]

शकुंत जी की इन पंक्तियों में वे शिक्षा की महत्ता को स्वीकारते हुए स्त्री-लेखन की सार्थकता की ओर इशारा कर रही हैं। दूसरी ओर कवयित्री इन्दु जैन एक अलग तरीके से हमसे यह इज़हार करती हैं कि -

"किताबें तेरा अस्त्र हैं
दिमाग शस्त्र।"[3]

---

1. शकुंत माथुर - अभी और कुछ, पृ. 34
2. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 9
3. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 87

अर्थात् यह कि शिक्षा ग्रहण करो और सोचो। शिक्षा प्राप्त कर, बौद्धिक विकास पाकर नारी अपने स्वत्व को तलाशने लगी। अपने मार्ग की बाधाओं को समझने लगी। उसने पाया-

"मैं स्वयं अपने में ही
अनुपस्थित हूँ।"[1]

सुमन राजे की ये पंक्तियाँ नारी की अस्तित्वहीनता की त्रासदी को दर्शाती हैं। एक ऐसे सामाजिक वातावरण की ओर इशारा कर रही हैं जहाँ स्त्री की हाज़िरी के समय भी गैर हाज़िरी दर्ज होती है, जहाँ किसीको इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह वहाँ है या नहीं क्योंकि निर्णय तो बहुत पहले ही हो चुके थे। अपने अस्तित्व के संकट को कवयित्री इन शब्दों में अभिव्यक्ति दे रही हैं -

"मैं फूल उस बाग का हूँ
जिसका मालिक फूलों को नहीं चाहता
उसकी आँख बंगले की सजावट पर
रहती है।
X X X
मैं मात्र रकम हूँ
मात्र सजावट हूँ।"[2]

शकुंत माथुर की ये पंक्तियाँ वस्तु में तब्दील होती स्त्री को, और पुरुष की उपभोगी मानसिकता को प्रभावी ढंग से व्यक्त कर रही हैं। जब भी स्त्री

---

1. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 60
2. शकुंत माथुर - अभी और कुछ, पृ. 11

के स्वत्व को लेकर सवाल उठता है, तब हमारे धार्मिक ग्रंथों की ओर नज़र दौड़ाना अवश्यंभावी हो जाता है। वहाँ जितनी देवियों का चित्र मिलता है सब कमल पर खड़ी हैं। उनकी अपनी ज़मीन नहीं है। इन तथ्यों को सुमन राजे ने अपने संकलन 'यात्रादंश' में बखूबी दर्ज किया है। ऐसी स्थिति में एक साधारण मानवी क्या आशा रख सकती है ?- समुन जी के शब्दों में -

"मैं न सूरज हूँ
न ईश्वर
न हो सकती हूँ
मैं सिर्फ आदमी हूँ।"[1]

अर्थात् वह न किसीसे ऊँचा बनना चाहती है न नीचा, समाज में एक इनसान की हैसियत से, अपना हक चाहती है, जिससे वह सदियों से वंचित रही। इस अभिशाप से मुक्ति पाने केलिए इन्होंने स्याही को आग का दरिया बनाया। उसकी चिनगारियों में कही नारी की मुक्ति पाने की चाह और छटपटाहट महसूस होती है तो कहीं मुक्ति केलिए अपने शब्द बुलंद रखती है। मणिका मोहिनी की इन पंक्तियों में

"जो वक्त मैंने
बिना कोई मायना दिये
गुज़ारा था
अपने को मेरा खरीदार कहनेवाले
मुझसे
उस वक्त की सफाई

---

1. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 31

माँगते हैं
और मैं याद करती हूँ
कि क्या तब
पांव उठने से पहले
बिल्ली रास्ता काटा करती थी।"[1]

-पुरुष के वर्चस्ववादी मनोवृत्ति के प्रति गहरा असंतोष प्रकट होता है। वह मनोवृत्ति जो उसे अपने हक की ज़िन्दगी जीने से वंचित रखती हैं। कवयित्री शकुंत जी बोल उठती हैं-

"जी लेने दो
मुझे
वह कोरा अर्थ
जो मेरे लिए सच्चा है
X X X
हर धड़कन में जीवन
जिसको जीकर मैं जान सकूँ
मैंने भी कुछ
अपनी तरह जिया है।"[1]

उनके मन में छिपी मुक्ति की तड़प का आभास दिला रही है। नारी जो पराये शर्तों पर जीने केलिए सदियों से अभिशप्त थी, जीवन के हर धड़कन को अपनाकर अपने हिस्से की ज़िन्दगी जीना चाहती है।

यही मुक्ति की चाह प्रकट हो रही है कवयित्री स्नेहमयी चौधरी की कविताओं में । वे कहती हैं -

---

1. मणिका माहिनी - कविताएँ 1965, पृ. 114
2. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 1

"शक्ति दो मुझे
एक टिटिहरी सी
सुने आसमान में
पंख फटफटाती
अनंत काल तक भटका करूँ।"[1]

यहाँ कवयित्री मुक्ताकाश में उड़ना चाह रही हैं। इसकेलिए शक्ति तो चाहिए ही, जकड़ी हुई बेड़ियों को तोड़ने केलिए जिसने सदियों से उसे बांध रखा है। स्त्री की नियति यही है कि रोये भी और अपना रोना छिपाये भी। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दायरों में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण और सापेक्ष जीवन के रूप में ही देखा गया है। हमने यह भी देखा है कि औरत का सारा प्रशिक्षण उसको विद्रोह और जोखिम से दूर रखता है। समाज और माता-पिता द्वारा भी स्त्री को शुरु से आत्मदान ही की शिक्षा दी गई है। उससे यह सच्चाई छिपायी गयी है कि उसके इस आत्मदान का बोझ न उसका पति, न प्रेमी और न उसके बच्चे उठाना चाहेंगे। वह प्रसन्नता के साथ इस झूठ को स्वीकारती आयी है। जबसे उसे होश आया है वह इस झूठ से बाहर निकलने की जद्दोजहद में हैं। इसका प्रमाण है ये पंक्तियाँ -

"कभी-कभी ताव आता है
खोल दूँ आरोपित नियमों के बांध
जो सुरक्षा के नाम पर बांधे हैं
खा डालूँ

1. स्नेहमयी चौधरी - एकांकी दोनों, पृ. 43

मकड़ी की तरह उन स्वयं निर्मित जालों को
जो अपने ऊपर बुन लिए हैं
तार-तार कर दूँ उन सुशोभित
चिथड़ों को
अब तक जो मुझ पर पौलिश किए गये हैं।"[1]

इन पंक्तियों में उस स्त्री की मुक्ति के स्वर सुनायी दे रहे हैं जो पुरातन मूल्यों के प्रचलन और प्रभुत्व वाले समाज की सदस्या है।

जहाँ-जहाँ स्त्री ने दासता के अभिशाप को झेला है, उसके अधिकारों का हनन हुआ है। वहाँ वह स्वयं मुक्ति की आवाज़ लेकर प्रतिरोध केलिए खड़ी हुई। इस दुनिया में आज भी सारी सत्ता, सारे मूल्य संस्थाएँ पुरुषों के हाथों में हैं। आज़ाद भारत में यदि स्त्रियों को कुछ अधिकार दिये भी गये हैं तो वे अमूर्त रह गये है। वे रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों के कारण व्यावहारिक जगत में लागू नहीं किये जा सकते। आज़ादी आई तो लगा था देशा की स्त्रियाँ, जो राष्ट्रीय उद्धार केलिए बड़ी संख्या में स्वतंत्रता संघर्ष में भाग ले रही थीं, स्त्री-स्वतंत्रता को नया अर्थ दे पायेगी। पर ऐसा हुआ नहीं। ऐसी विडंबना भरे माहौल में कवयित्रियों ने लेखनी चलायी। प्रतिरोध के स्वर बुलंद हुए।

सुमन राजे की निम्नांकित पंक्तियाँ-

"आखिर मैंने तुम्हें पहचान लिया है
इस अंतिम पहचान के बाद

1. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 31

बचाव का कोई रास्ता
शेष नहीं रहता ।"[1]

-दासता के भीषण अभिशाप से जागी नारी के अंदर जन्मी प्रतिशोध की चिनगारी को रेखांकित करती हैं। कवयित्री ललकार रही हैं। दूसरी ओर कवयित्री इन्दु जैन पुंसवादी सत्ता की धमकी के आगे अपना आक्रोश प्रकट करते हुए कहती हैं-

"मैं डरी ज़रूर
लेकिन मरी नहीं
मरती
तो डर मर जाता।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में यह बात साफ है कि तथाकथित शोषक शक्ति स्त्री को आगे आने से रोक रहा था। किन्तु यह स्त्री की अदम्य जिजीविषा ही थी जिसकी वजह से उसने अपने डर को काबू में करना सीखा ।

इस डर को जीतकर, मिले हुए दर्द से शक्ति पाकर वह बोल उठती है-

"ये घाव जो तुमने दिया
अब भूल से भी मत सिओ
इसे ऐसे ही रहने दो
रिसने दो
जिससे मैं न भूल सकूँ
यह
किसी पर से उठा हुआ विश्वास है।"[3]

---

1. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 51
2. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 55
3. शकुंत माथुर - अभी और कुछ, पृ. 25

यहाँ कवयित्री अपने दिल के घाव को, उससे उपजे दर्द को बनाये रखना चाहती है, ताकि वह उससे हर पल प्रेरणा पा सके। यहाँ एक ओर स्त्री की जीने की इच्छा प्रकट हो रही है तो दूसरी ओर व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट होता है। ये पंक्तियाँ स्त्री की ज़िन्दगी के दुष्चक्र एवं संघर्ष का स्वर है।

जहाँ भी अधीनता होगी वहीं विद्रोह के बीज मिलेंगे। स्त्री भी आखिर मनुष्य है, जो अपनी स्थिति को लगातार बेहतर बनाने केलिए संघर्ष करती है। स्त्री कभी समझौता करती है कभी संघर्ष।

शिक्षा पाकर स्त्री को अपनी शक्ति का कुछ-कुछ एहसास होने लगा। यहाँ कवयित्रियों ने कलम को हाथों में लिया और कहा-

"केवल दूसरों से बदला लेने केलिए उठे
पंजो का करती हूँ उपयोग अपने लिए।"[1]

जब अपनी अस्मिता केलिए कलम अपनाया तो वहाँ भी पाबंदी लगाने की कोशिश ज़ारी थी। वह जितना चीखना चाहती थी, उसके होंठ उतने ही सिले रख दिये गये ऐसे में कवयित्री सवाल करती हैं-

"आखिर नारी होकर नारी होने को कब तक सहूँ?
X X X
मेरे लिए कविताएँ लिखना निहायत ज़रूरी है
उसी तरह, जिस तरह
हर हालत में जिन्दा रहना

---

1. स्नेहमयी चौधरी - एकाकी दोनों, पृ. 19

उसी तरह जिस तरह
पैर को ज़ख्माते पत्थर को हाथ में उठाना
और तौलकर फेंक देना।
X X X
मैंने जो लिखा वही जिया है।"[1]

ये पंक्तियाँ कहीं न कहीं यह आभास दिला रही है कि वे लेखन में मुक्ति तलाश रही है। किन्तु इनकी मुक्ति अपने-आप में सीमित नहीं है। क्योंकि वे कहती हैं कि-

"किसी को भी न तोड़ सकती हूँ
न छोड़ सकती हूँ।"[2]

तात्पर्य यह कि स्त्री अपनी जययात्रा में किसी को चोट नहीं पहुँचाना चाहती और अपने जैसे हाशियेकृतों को छोड़ना भी नहीं चाहती। वह सबको अपने साथ लेकर चलना चाहती है। कीर्ति चौधरी की इन पंक्तियों में -

"मैं बादल सा उमड़ूँगा
मरूथल पर छा जाऊँगा
मैं फसलों सा उग
बंजर धरती पर लहराऊँगा।
चट्टानों पर चढ़
सूरज को आवाज़ लगाऊँगा
किरणों का हाथ पकड़
अंधियारी राह बताऊँगा।"[3]

---

1. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 86, 87, 89
2. शकुंत माथुर -अभी और कुछ, पृ. 9
3. कीर्ति चौधरी - कीर्ति चौधरी कविताएँ, पृ. 90

अपने अंदर की चेतना को, अपने अस्तित्व को पूरे संसार केलिए समर्पित करने की इच्छा निहित है। अपने अंदर की रोशनी को समस्त पृथ्वी की उर्वरता में तब्दील करना चाह रही है यहाँ कवयित्री। राष्ट्रीय काव्यधारा के अंतर्गत सुभद्रा कुमारी चौहान देशप्रेम का पाठ देनेवाली समाज सापेक्ष नारी को दर्शाती है। नारी मुक्ति के साथ देश की मुक्ति को अपना ध्येय बनाकर कवयित्री कहती हैं-

"सबल पुरुष यदि भीरु बनें, तो हमको दे वरदान सखी
अबलाएँ उठ पड़े देश में, करें युद्ध घमसानसखी
पंद्रह कोटि असहयोगिनियाँ, दहला दे ब्रह्मांड सखी
भारत लक्ष्मी लौटाने को रच, दें लंका कांड सखी।"[1]

इन पंक्तियों में एक वीर क्षत्राणी का आततायी के विरुद्ध आक्रोश और अत्याचार के विरोध का दीप्त स्वर सुनायी देता है। सुभद्रा कुमारी चौहान स्त्री स्वतंत्रता की हमेशा वकालत करती थी। साथ ही राष्ट्रवादी नेतृत्व की भी तारीफ करती थी।

अन्य कवयित्रियाँ भी इन्हीं भावनाओं को लेकर आगे बढ़ी है। अपने उद्धार के साथ समस्त जीवन राशि के उद्धार को अपना जीवन लक्ष्य बनाकर चलती है कवयित्री अमृता भारती। उनकी ये पंक्तियाँ -

"इसके बाद और बहुत से युद्ध
आदमी की ऊँचाई केलिए
मुझे लड़ने हैं

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 93

बहुत से बडे युद्ध
सड़क से मदिर तक
आदमी से ईश्वर तक।"[1]

एक समाज प्रतिबद्ध नारी के चरित्र की ओर इशारा कर रही है। आलोच्ययुगीन कवयित्रियों की कविताओं में समाज केलिए संपूर्ण समर्पण का मनोभाव रखनेवाले स्त्री चरित्र को उभारा है, तो कहीं किसी मोड़ पर उनकी पैरों की बेड़ियाँ उन्हें पीछे की ओर खींचती हैं, वह खुद को निस्सहाय महसूस करती है।

शकुंत जी की ये पंक्ति -

"पर बंधन है जो खुलता नहीं"[2]

और सुमन जी का यह सवाल-

"मेरे ये हाथ
अनंत काल तक यूँ ही बंधे रहेंगे?"[3]

उपर्युक्त तथ्य का समर्थन कर रही है। किन्तु वे अपने संघर्ष को कायम रखती हैं, इसीलिए तो आगामी समय (समकालीन समय) 'नागफनी के बीहड़ घेरों के बीच निर्भय-निस्संग मुस्कुराती चंपा' से हमारा परिचय कराता है। उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त कीर्ति चौधरी की 'सीमारेखा', 'सुधि के क्षण', 'स्वयंचेता', 'यथास्थान' प्रतीक्षा, सुमन राजे की 'उगे हुए हाथों के जंगल', 'चेतना', 'रोशनी का छल', 'वापसी', शकुंत माथुर की

1. अमृता भारती - आज, कल या सौ बरस बाद, पृ. 179
2. शकुंत माथुर - अभी और कुछ, पृ. 54
3. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 49

'खंडों की सार्थकता', 'निरर्थ शब्द' 'मैं ने जीना जाना है', 'अर्थ का एहसास', 'इंतज़ार का नया ढंग', सम्मोहन आदि बहुत सी ऐसी कविताएँ हैं जो अस्मिता केलिए संघर्षरत स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्ति दे रही हैं।

4.1.2 श्रमिक/सर्वहारा जीवन का यथार्थ

समाज में दो वर्ग हमेशा क्रियाशील रहे हैं एक तो वह वर्ग, जिसे शोषक की संज्ञा दी जा सकती है तथा दूसरा वह वर्ग, जिसको शोषित की संज्ञा दी जा सकती है। शोषितों का वर्ग शोषकों के द्वारा हमेशा-हमेशा से पीड़ित एवं पद दलित होता रहा है। मार्क्सवादी-समाजवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार तथा वैज्ञानिक चेतना के विकास के फलस्वरूप आलोच्य युगीन कवयित्रियाँ शोषितों का पक्ष लेती है तथा शोषकों के प्रति अपना तीव्र आक्रोश प्रकट करती है।

हमारे समाज में कृषक, श्रमिक जैसे सर्वहारा वर्ग की तादाद बहुत बड़ी है। आलोच्य युग में यह भारी तादादवाला वर्ग ही शोषकों का सबसे बड़ा शिकार हुआ है ।

शोषितों का एक ऐसा पक्ष भी रहा है जो हर आदोलन में, हर युद्ध में सबसे आगे, सबसे पहले तन-मन अर्पित करने केलिए खड़ा रहता है और मर मिटता है। किन्तु इतिहास में चर्चा होती है उनकी जिनकेलिए ये मर मिटते हैं। कवयित्री अमृता भारती की ये पंक्तियाँ-

"कब तक चर्चा होती रहेगी
उनकी जो बड़े युद्धों के नायक होकर भी
लड़ाई में जिन्दा रहे
और अदना आदमी
इस तरह गिना जाता रहा:
दस हज़ार
बीस हज़ार या तीस हज़ार।"[1]

-एक ओर इन शोषित जनसमूह के प्रति सहानुभूति प्रकट करती हैं तो दूसरी ओर इनका इस्तेमाल करनेवाले शोषकों के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हुए जनता को इस दयनीय स्थिति से परिचय करा रही हैं।

तथाकथिक शोषित-मज़दूर-सर्वहारा वर्ग अपने ऊपर थोपे गये उन तमाम कामों को, इतनी ईमानदारी से करते हैं मानो वह उनका कर्तव्य हो। कवयित्री शकुंत माथुर ने कुछ इस तरह ही इसे कविता में दर्ज किया है -

"भागता है शौक से
स्टेशन पर कुली
ढोता है बोझा
ढोता है शक्ति भर
पसीना पोंछता
कोई भाव भीतरी
मुख पर न लाता।"[2]

इन पंक्तियों में मज़दूर जीवन की जो झांकी प्रस्तुत हुई है, काफी दयनीय है। यहाँ चित्रित कुली स्टेशन पर शौक से भागता है अपनी रोज़ी रोटी

1. अमृता भारती - आज, कल या सौ बरस बाद, पृ. 163
2. शकुंत माथुर - दूसरा सप्तक, पृ. 54

केलिए, पेट केलिए । दर्जन पर बोझा ढोयेगा तो ही कम से कम एक वक्त की रोटी नसीब होगी। ऐसे में वह अपने मन का भाव चेहरे पर लाकर क्या पाएगा? इस कटु यथार्थ को दर्शाया गया है इन पंक्तियों में।

भूख मानव समाज की सबसे खतरनाक सच्चाई है जो इनसान को कुछ भी करने केलिए प्रेरित करती है। जीवित हर इनसान इस दुनिया में पेट केलिए सबसे पहले लड़ता है। भूख की तीव्रता अमृता जी की निम्नांकित पंक्तियों में साफ झलकती है-

"हाँ, मर भी जाता है
उस सबसे बड़ी भूख से
जो पेट में लगती है
और आँखों से निकलती है
हाँ, उस भूख से आदमी मर भी जाता है।"[1]

भूख की समस्या का एक मात्र समाधान रोटी है। इस रोटी केलिए इन जन साधारण को क्या कुछ नहीं करना पड़ता, क्या-क्या नहीं सहना पड़ता। सुमन जी के शब्दों में-

"मिलों के भोंपू के नीचे
रोज किसी विरहा किसी कजरी की टांग
कट जाती है
रोज किसी आल्हा की मूँछें
साहब के पैरों पर झुक जाती है
रोज किसी गोबर की धरती
उसके पैरों के नीचे से खिसक जाती है।"[2]

1. अमृता भारती - आज, कल या सौ बरस बाद, पृ. 173
2. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 23

पेट की परवाह करते-करते कहीं इन बेसहारों की बची कुची ज़मीन हाथ से निकल जाती है तो कहीं काम करते-करते हाथ-पैर कट जाते हैं। अपने हर कर्मक्षेत्र में उन्हें संघर्ष और दमन का सामना करना पड़ता है। उनका अस्तित्व औरों केलिए कोई मायना नहीं रखता। विश्राम का नाम लेना ही असंगत है। इंदुजैन की ये पंक्तियाँ-

"वे मशीन से ठंडे कमरे में
सिर्फ इतनी देर रुक कर
निकल आते हैं
कि पसीना भी सूख नहीं पाता
रूमाल फिर गीला हो जाता है।"[1]

-निर्बाध गति से काम करके बेगार रहने केलिए अभिशप्त श्रमिक जीवन की ओर इशारा कर रही हैं। आखिर यह सारी स्थितियाँ और किसी की नहीं अपितु पूँजीवादी समाज की उपज है।

पिछड़ी हुई ज़िन्दगी जीने केलिए यह वर्ग अभिशप्त है। इस अभिशाप को झेलते हुए कहीं न कहीं उनके धैर्य की सीमा रेखा भी टूटती है, वहाँ वे क्षुब्ध भी होते हैं। आक्रोश की यह आवाज़ सुमन जी ने 'एरका' में धार्मिक संदर्भ के ज़रिए व्यक्त किया है-

"हम
सब जगह हैं
पर इतिहास

---

1. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 66

में
कहीं-नहीं
हमारे कोई नाम नहीं
हम सिर्फ लोग हैं।

हम सामान्य जन
नाम नहीं संख्याएं हैं
जातियाँ हैं
हमारे लिए धर्म हो
या युद्ध अर्थ केवल
अनुगतता है।"[1]

इस तरह कवयित्रियाँ शोषित एवं उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए उनकी पक्षधर बनकर प्रकट हुई है।

4.1.3 ग्रामीण जीवन की त्रासदी

आलोच्य युगीन भारतीय समाज के सामने कई समस्याएँ मुँह खोले खड़ी थी। तीन सौ साल की गुलामी ने देश की आर्थिक स्थिति को चौपट कर दिया था। विश्वयुद्धों के कारण बेकारी एवं अभाव की स्थिति भयंकर हो गयी थी। औद्योगिक विकास के दौरान कृषि प्रधान व्यवस्था के ज़मींदार और साहूकार पूँजीपति और शोषक बन बैठे तथा कृषक श्रमिक बनने लगे। शहरी सभ्यता के विकास के साथ प्राचीन व्यवस्था का रूप बिखरने लगा। ऐसे सामाजिक मौहाल में कवयित्रियों का ध्यान उन शोषित जनसमुदाय के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक है।

---

1. सुमनराजे - एरका, पृ. 91

भारतीय समाज केलिए सामंती प्रथा या ज़मींदारी व्यवस्था नई नहीं है। इस व्यवस्था के अधीन किसानों और ग्रामीणों का जीवन सदा समस्यात्मक और पिछड़ा रहा है। भारत की स्वाधीनता के पूर्व भी कृषकों की स्थिति दयनीय थी और स्वतंत्रता के बाद भी उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। ग्रामीण जीवन के इस कटु यथार्थ को यहाँ दर्शा रही हैं कवयित्री सुमन राजे-

"यह एक गाँव है
यहाँ पथरीली अंधेरी घाटी में
दोपहर दिन ढले सूरज झांकता है
और एक पहर दिन रहे बिला जाता है
गझिन झाडियों और तिरछी डालों पर
झूलते हुए लोग
कटे लट्ठों पर पांव रख नदी पार करते हैं
नंग धडंग बच्चे
अंजुरियों में मछलियाँ पकड़ते हैं
महुए-सी पीली दोपहर में
गुठलियों के आटे की रोटी
X X X
आठ घंटे की मेहनत
फी रोटी के हिसाब से।"[1]

यहाँ एक ओर ग्रामीण जनता दहकते जीवनानुभव को दर्शाया गया है तो दूसरी ओर इन निरीह जनता के श्रम पर निरंतर भोगविलास करते आये भूस्वामियों के सामंती संस्कारों के प्रति विरोध भी ज़ाहिर किया है।

---

1. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 25

शकुंत माथुर ग्रामीण श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखती हैं -

"कभी एक ग्रामीण धरे कंधे पर लाठी
सुख-दुख की मोटी-सी गठरी
लिये पीठ पर
भारी जूते फटे हुए
जिनमें से थी झाँक रही गांवों की आत्मा
जिन्दा रहने के कठिन जतन में
पांव बढ़ाये आगे जाता।"[1]

यह दृश्य बिंब एक आम आदमी का चित्र लेकर आता है तो जो औद्योगिक समाज में पूँजीवादी व्यवस्था के शिकंजे में दबने-कुचलने पर भी ज़िन्दगी को जीने की जद्दोजहद में है। कृषक-समाज और ग्रामीण जीवन में सामंतों के निरंतर शोषण के कारण ही सारी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। औद्योगिक विकास के फलस्वरूप खेत-खलिहान जनता के हाथ से निकलने लगे। एक समय ऐसा था जब गाँव का मतलब खेत होता था। अपने इस अतीत का स्मरण करा रही हैं कवयित्री स्नेहमयी चौधरी-

"खेतों के पार गांव
और गाँवों के पार खेत है
नहीं भूलती है याद छप्पर पर धूप की।"[2]

कवयित्री की इन पंक्तियों में हरे-भरे गाँव के प्रति उनका मानसिकोल्लास नज़र आता है तो साथ ही उसके नष्ट होने का अफसोस भी। खेती हर

---

1. शकुंत माथुर - दूसरा सप्तक, पृ. 46
2. स्नेहमयी चौधरी - एकाकी दोनों, पृ. 21

किसानों-ग्रामवासियों के जीवन की जटिलताओं से कतराकर कवयित्री अपना संघर्ष दर्ज करती हैं-

"दम तोड़ूँ तो
कहीं खेत में
सड़कर गलकर
फसल बढ़ाऊँ
बीज उगाऊँ
और नहीं तो
मरना ही है अगर निपट असहाय
मरूँ उस घुप पाताली अंधकार में-
जहाँ न कोई
नवजन्में शिशु की आत्मा हो।"[1]

यहाँ कवयित्री ने अपनी वैयक्तिक वेदना को सामाजिक आयाम दिया है। एक ओर किसानों केलिए आवाज़ उठा रही हैं तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त शिशु हत्याओं के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर बुलंद करते हुए कवयित्री अपनी सामूहिक चेतना का आभास दिला रही हैं।

4.1.4 महानगरीय जीवन का यथार्थ

औद्योगिक विकास के साथ दौरान भारत के गाँव शहरों में तब्दील होने लगे। कृषि प्रधान व्यवस्था के ज़मीन्दार और साहूकार पूँजीपति और शोषक बन बैठे तथा कृषक श्रमिक बनने लगे। शहरी सभ्यता के विकास के साथ प्राचीन व्यवस्था का रूप बिखरने लगा। एक नये महानगर ने जन्म ले

1. कीर्ति चौधरी - कीर्ति चौधरी कविताएँ, पृ. 39

लिया। जब युग बदलता है तो पूरी संस्कृति भी बदल जाती है। यहाँ भी ऐसा ही हुआ । शहरीकरण पश्चिमीकरण और इनके परिणाम स्वरूप उपजे आत्मकेन्द्रित व्यक्ति की विभिन्न झांकियों को कवयित्रियों ने दर्शाया है।

कवयित्री सुमन राजे ने अपने 'उगे हुए हाथों के जंगल' नामक संकलन में महानगरीय परिवेश के चित्र को यों शब्दब्ध किया है -

"फुट पथों पर
बड़े मकानों की सरहदों में
मुँह छिपा कर
उगता है हर रात
एक नया घर।"[1]

यहाँ महानगर का एक ऐसा चित्र उभरकर आया है जहाँ दिन ब दिन मकानों की संख्या बढ़ती जाती है और ज़मीन घटती। शहरी संस्कृति के चंगुल में फँसकर मनुष्य अपने सपनों को शहरी वातावरण में देखने लगा, और वहीं उसे पूरा करने में तुल गया। जब हर इनसान ऐसा सोचने लगा तो गाँवों को नगर में तब्दील होने में देर नहीं थी। नगर का एक अलग परिवेश दर्शा रही है कवयित्री शकुंत माथुर-

"नगर दिन में सोना चाँदी
और रात में माँसपेशियाँ खाता है
रात पीती है लवरेज प्याले
दिन
खाली फ्लैट सा खड़ा है

---

1. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 21

मैं हूँ
मैं हूँ
किराया चिल्लाता है।
मालूम बस इतना है
चीख यह आदमी की है।"[1]

इन पंक्तियों में नगर जीवन की झांकी झलक रही है जहाँ दिन में सोना चांदी का बिसिनेस चलता है रात में सब माँसपेशियाँ खाने और लवरेज प्याले में डूबे रहने में मस्त हैं।

किसी का कोई अस्तित्व नहीं सब पैसा कमाने में व्यस्त है।

पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण में सब अपने को ऊँचा दिखाने की होड़ में है। वहाँ कोई भी व्यक्ति किसी केलिए कोई मायना नहीं रखता। सिर्फ यह सोच बाकी रहती है कि कौन, किससे, कैसे आगे बढ़ सकता है। सुमन जी की ये पंक्तियाँ-

"घर, कहाँ है घर अब
किसीके पास, अब सिर्फ
मकान है मकान/ ईंट चूने
गारे और मिट्टी के जिनमें
आदमी रहते हैं /चीज़ें रहती हैं
X X X
अब नहीं है हमारे पास घर
मकान है और चीज़ों की एक फेहरिस्त
पड़ोसियों की तुलना में अपनी
बढ़ोत्तरी दिखाती हुई ।"[2]

---

1. शकुंत माधुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 79
2. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 66

-जनता की उपभोगी मानसिकता को दर्शा रही है। घर जो कभी हर इनसान का सपना होता था, जहाँ रिश्ते होते थे, अपने होते थे यहाँ वह केवल पत्थर की इमारत बनकर रह गया है जो मात्र सामान रखने योग्य बन गया हो। अर्थात् घर को बाज़ार बनने की मानसिकता पनप रही है। जनता फाशनपरस्त ज़िन्दगी बिता रही है।

शहर के चकाचौंध से मनुष्य की आँखें इस कदर पीली पड़ गयी है कि उसे सबकुछ धुँधला दिखाई देता है। स्नेहमयी चौधरी के शब्दों में

"बिजली की दमकती रोशनी,
चमकता बाज़ार शहर का,
जीवन की तेज़ रफ्तार, व्यस्तता हर क्षण की
इतनी भली लगती है कि
धीमि गति,
ऊँघता समय,
और
दिया-बाती का प्रकाश
धीरे-धीरे लगने लगा है असभ्य और गंवार।"[1]

तात्पर्य यह कि अपना सबकुछ पराया और पराया सब अपना लगने लगता है। शहरी मायाजाल में फँसकर दूसरों से मुकाबला करते ज़िन्दगी की होड़ में इनसान के अंदर की सादगी मिटती जा रही है। वह अपने आप में सीमित होता जा रहा है।

---

1. स्नेहमयी चौधरी - एकाकी दोनों, पृ. 51

पश्चिमी सभ्यता आत्मकेन्द्रित स्वार्थी मनुष्य को जन्म दे रही है। एक ऐसा जनसमुदाय उभर रहा है जहाँ-

"लोग उजले कपड़े पहनते हैं
लेकिन सड़क पर नहीं आते
सिर्फ बंद घरों से झाँकते हैं
चिन्ता करते हैं और कायर बनते हं।"[1]

शकुंतजी की ये पंक्तियाँ एक ओर जनता की आत्मकेन्द्रित मानसिकता को दर्शा रही है तो दूसरी ओर झूठी सहानुभूति दिखाने वालों पर तीखा प्रहार भी करती हैं। मनुष्य की स्वार्थपरता कुछ इस हद तक विस्तार पा गयी है कि-

"हर एक व्यक्ति से घृणा द्वेष प्रतिहिंसा
x x x
हर जगह कपट, छलना की मन में मंशा
नीवों की ईंटों को
चुपके खिसकाना
x x x
धोखेबाज़ी चोरी का हरदम बाना
x x x
खुद आग लगाकर
दूर तमाशा तकना
सोते में ही गर्दन पर
हाथ बढ़ाना
x x x
अपने स्वार्थों में जीवन सबका जीता
x x x

1. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 65

औरों को यम को
घर से हल्दी भेजे।"[1]

-इन पंक्तियों में कवयित्री कीर्ति चौधरी यह तथ्य समने लाती हैं कि अपने स्वार्थ में वशीभूत होकर किस प्रकार इनसान हैवान का रूप धारण करता है। हर कहीं ईर्ष्या और द्वेष का ज़हर फैला हुआ है। किसी पर भरोसा करना जानलेवा है।

अजीब है यह बड़े शहरों की ज़िन्दगी कि मन में कोई स्मृति, लगाव कुछ नहीं उपजता है। यहाँ समय की बड़ी तेड़ चाल है। ज़िन्दगी के चारों ओर यंत्रों का बिछा हुआ एक ऐसा जाल है जो ठहरने नहीं देता।

किन्तु इस पर भी एक अपवाद खड़ा करती है कीर्ति जी। शहरी लोग चाहे कितने भी स्वार्थी हो, लेकिन इन लोगों के पास भी कोई पहचान है। उनके ये शब्द कि-

"इन एक से मकानों में भी
उन्हें अपने घर का ज्ञान है
अंधेरा हो, उजाला हो
वे सब बगैर भूले
अपने-अपने घरों को लौट आते हैं
मैंने तो कभी नहीं देखा
कि वे धोखे में भी
दूसरों के घर चले जाते हैं।"[2]

-शहरी लोगों के एक सकारात्मक पक्ष को उबार रहे हैं। अपने स्वार्थ

1. कीर्ति चौधरी - कीर्ति चौधरी कविताएँ, पृ. 64
2. कीर्ति चौधरी - खुले हुए आसमान के नीचे, पृ. 66

के भाग दौड़ में भी शहरी लोगों ने अपने अंदर की पहचान को मिटने नहीं दिया। इस तरह कवयित्रियों ने महानगरीय जीवन से जुड़े विभिन्न संदर्भों से पाठकों का बखूबी परिचय कराया है।

4.1.5 मूल्य संकट

मानव मूल्यों का विघटन प्रथम विश्वयुद्ध के आसपास प्रारंभ हो गया था। प्राचीन मान्यताएँ बीस-तीस वर्ष पूर्व खंडित होने लगी थी। इसीलिए 20 वीं शताब्दी को असंतोष का युग बताया गया है परंतु मानव मूल्यों में विघटन तीव्रता से होने से अनास्था, कुण्ठा, असंतोष, वेदना के स्वर प्रस्फुटित होते हैं। कवयित्रियों की लेखनी के ज़रिए ये भाव अंकित हुए।

वस्तुतः मूल्यों का आरंभ व्यक्ति से हुआ है। अतः मूल्य संकट की स्थिति भी व्यक्ति ने ही पैदा की है। कविता का स्वातंत्र्योंत्तर युग नीति और मूल्य के उदार रूपों को स्वीकारता आया है। किन्तु मूल्यहीनता की स्थिति को कवियों ने वेदना भरी दृष्टि से देखा और कविता में दर्ज किया।

सच और झूठ की वर्तमान स्थिति को रेखांकित करते हुए सुमन जी कहती है-

> "झूठ एक बरगद का पेड़ है
> जिसकी हर डाल धरती तक जाती है,
> और नई जड़ बन उगती है
> कभी मुर्झाती नहीं
> उसका कभी अंत नहीं होता
> (दुनिया इसिलिए बरगद की पूजा करती है)

सच एक आक का पौधा है
किसी बियाबान छाती में उड़ पड़ता है
कभी बड़ा नहीं होता
(सच को बढ़ने की क्या ज़रूरत)
उसका फल बढ़ता है
पकता है
फटता है
और रेश्मी धुएँ सा उड़ जाता है।"[1]

यहाँ सत्य और असत्य का नया रूप दर्शाया गया है। सच का जो स्वत्व होना चाहिए था उसे आज असत्य ने अपना लिया। बरगाद की जड़ की तरह पूरे संसार में आज यह व्याप्त है और सत्य का अस्तित्व नाममात्र केलिए ही रह गया।

सामाजिक वातावरण कुछ इस हद तक बदल गया कि सच, प्रेम, ममता, करुणा, आदि भावों को आसमान के तारों से तोड़कर प्रकाश में लाना पड़ रहा है। क्या सही है, क्या गलत, इसका निर्णय समाज के सामने एक चुनौती है। मूल्यों की बदलती परिकल्पना की ओर इशारा कर रही हैं कवयित्री इंदु जैन-

"चोरी करने की सोचोगे
नहीं करोगे
तो भी पुण्य होगा,
भला करना चाहोगे
कर नहीं पाओगे

---

1. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 17
2. इन्दु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 36

तो भी पुण्य पाओगे
यही है कलियुगी प्रताप।"[1]

अर्थात् कहीं हमारे सोच केलिए पुण्य मिलेगा तो कहीं करनी केलिए। सवाल यह बनती है कि पुण्य सोचकर कमाना है या कुछ करके।

ऐसी दुव्धाग्रस्त स्थिति में आज का मानव शोर्टकट अपनाता है। अपने जूते की नोक पर लगा हुआ गोबर दूसरे के चबूतरे पर घिस देना उसकेलिए आसान प्रतीत होता है। कवयित्री शकुंत माथुर लिखती हैं-

"गुम हो जाते हैं सारे मानव धर्म मौसम के जंगलों में
हर कमज़ोरी कुण्डली मार
साँप की तरह बैठ जाती है भीतर
और आदमी अपने से डरने लगता है
स्वाभिमान अहंकार में बदल जाता है
तब इनसान हैवान बने जाता है।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियाँ यह उजागर करती हैं कि किस प्रकार इनसान अपनी कमज़ोरियों के चंगुल में फँसकर, उससे डरकर अपना स्वाभिमान खो बैठता है, लीक से हटकर चलता है। 'अभी और कुछ' संकलन में शकुंत माथुर मेघ से आत्मलाप करती है-

"तुम व्यर्थ यहाँ बरसने क्यों आये हो
तुम्हें देख मेरी छाती फटी जाती है
इसलिए नहीं कि मेरा पति परदेश गया है

---

1. इन्दु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 36
2. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 88

नहीं-नहीं यहीं पास में
पड़ोसिन के घर गरम-गरम
पकौडियाँ खा रहा है
कॉफी पी रहा है
और उसकी नज़रों के तीर पर
भंवरा बना रहा है
तुम्हें देख-देख तो और भी
पड़ोसिन पर लपकता है
मुझसे बिचकता है।"[1]

यहाँ हैवान का रूप धारण किये एक पति की ओर संकेत है जो अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात करके किसी और के साथ रिश्ता रखता है। भारतीय संस्कृति से हटकर एक पत्नी के होते हुए किसी और स्त्री के साथ संबंध रखने की यह प्रवृत्ति यह दर्शा रही है कि पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण भारतीय संस्कृति केलिए कितना घातक सिद्ध हो रहा है।

पति-पत्नी के संदर्भ में ही नहीं माँ-बाप और बच्चों के संदर्भ में भी उपभोक्तृ संस्कृति से उत्पन्न मूल्य संकट की यह स्थिति द्रष्टव्य है। वर्तमान समाज की सबसे प्रमुख एवं जटिल समस्या है वृद्धजनों की समस्या। आधुनिक समाज की 'use and throw' संस्कृति ने आपसी संबंधों को भी तोड़कर रख दिया है जिसके कारण आज की युवा पीढ़ी वृद्ध माँ-बाप को एक अनुपयोगी एवं बोझ की तरह समझती है। इस संदर्भ में कवयित्री इन्दु जैन की पंक्तियों पर गौर करना अनिवार्य है। एक बेटे का अपनी माँ से यह

1. शकुंत माथुर - अभी और कुछ, पृ. 62, 63

कथन है-

ये दो टिकट हैं बनारस के
तुम जाना चाह रही थीं न!
मैंने धर्मशाला मे एक कमरे का सेट
बनवा दिया है
तुम और बाबूजी आरम से रहना
हम लोग भी छुट्टियों में
आते-जाते रहेंगे
बच्चों के इम्तहान सिर पर हैं
तुम्हारे इस कमरे में पढ़ पढ़ा लेंगे
क्या करें
बड़े हो रहे हैं
उन्हें भी अपनी जगह चाहिए
हमारी तरह शोर-शराबे में
इनका काम नहीं चलता।"[1]

इन पंक्तियों में यह साफ नज़र आ रहा है कि किस तरह एक बेटा अपने-माँ-बाप को बोझ समझकर अपने से अलग करना चाहता है। बीच-बीच में मिलने जाने की बात रखता है ताकि वे वापस घर न आ जाए। युवा पीढ़ी आनेवाली पीढ़ी केलिए जगह बनाने की खातिर बुजुर्गों को पुरानी चीज़ों का दर्जा देकर धक्का मारकर बाहर निकालती है । माँ-बाप के हाव-भाव उनके चाल चलन सब उनकेलिए शोर-शराबे हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति अथवा पाश्चात्य संस्कृति अर्थ द्वारा प्राप्त सुख-सुविधाओं को महत्त्व देती है। इसके फलस्वरूप सहज रूप से सनातन

1. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 45

सांस्कृतिक, पारिवारिक और सामाजिक मूल्य हाशिये पर धकेल दिये गये हैं। हाशिये पर खड़े रहकर इन वृद्ध जनों के समने प्रितरोध के सिवाय और कोई रास्ता भी नहीं है। कवयित्री की ये पंक्तियाँ-

"चांद-सूरज आसामान पर रहने दो
जो जहाँ का है वहीं भला है
चिड़िया और फूल डालपर
बच्चे माँ-बाप के साथ घर में
माँ-बाप के माँ-बाप काशी में...."[1]

-कहीं न कहीं उपेक्षा के कगार पर खडे रहने केलिए विवश, मानसिकता का आभास दिला रही है। वह मानसिकता जो हाशिये पर अपनी उपस्थिति को स्वीकार करती है मानो वही उनकी नियति हो।

हमारे इस मूल्य संकट के पीछे साम्राज्यवादी शक्तियों का ही हाथ है। भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति ने विवेच्ययुग को गहरा आघात पहुँचाया है। एक ऐसी मनस्थिति एवं परिस्थिति का प्रचार हो रहा है जो व्यक्ति को अपनी वैचारिकता से अलग करके उसे पाश्चात्य संस्कृति का गुलाम बना रहा है। एक वस्तु के रूप में तब्दील कर रहा है।

4.1.6 प्रकृतिबोध

साहित्य में प्रकृति का स्थान जीवन के गहनतम संदर्भों से युक्त है। प्रकृति का नैसर्गिक रूप ग्रामीण अंचलों में अधिक उभरता है। ग्रामीण जनों

1. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 46

के बीच जो प्रकृति व्याप्त रहती है। वह जीवनदायिनी, उत्साह और उमंग भरनेवाली, स्फूर्तिमत्ता का द्योतन करनेवाली शक्ति-स्वरूपा है। गाँव, खेत-खलिहान, विविध मौसम, नदी नाव, पेड-पौधे आदि काव्य के उपकरण बनते आए हैं। आलोच्य युगीन कवयित्रियों ने अपने काव्य में प्रकृति को जीवन का अविभाज्य अंग माना है। औद्योगिक विकास के परिणाम स्वरूप जैसे-जैसे सामाजिक परिस्थितियाँ बदलती गयी, वैसे प्रकृति का साथ भी छूटता गया। मानव के हस्तक्षेप ने प्रकृति का रूप बदल दिया। मनुष्य की आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ प्राकृतिक संपदाएँ गायब होती गयीं। नष्ट होती प्रकृति को वापस लने की कोशिश इन कवयित्रियों के माध्यम से हुई है।

नष्टप्राय प्राकृतिक वैभव के दर्दनाक दृश्य को उभारा है कवयित्री सुमन राजे ने

> "बेजान-बाँझ-वनस्पति
> आकाश की तरफ ताकते हुए
> जले हुए ठूठ खंखट
> दिशाओं के भाडों में भून दी गई
> पत्तियाँ और अलाव में पकाकर
> पपडायी ज़मीन की सतह।"[1]

इन पंक्तियों में उस प्रकृति के विकृत रूप को दर्शाया गया है जिसने मानव की ज़रूरतों की पूर्ति में कोई कसर नहीं छोड़ी। वैज्ञानिक विकास और औद्योगीकरण की उपज 'उपभोग संस्कृति' के कारण मानव और प्रकृति

---

1. सुमन राजे -यात्रादंश, पृ. 74

के बीच का तालमेल बिगड़ गया। मनुष्य की अनावश्यक ज़रूरतें भी बढ़ती गयी जिसके फलस्वरूप कृत्रिम सुविधाओं में ही उसने अपना सुख ढूँढ लिया। इस सुख केलिए मानव ने प्रकृति पर आक्रमण करना शुरु कर दिया। इसके परिणाम को ही इन पंक्तियों में दर्शाया गया है।

मनुष्य नदियों, पहाड़ों, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों से दूर शहर की ओर बढ़ रहा है। नदियाँ जिनका भारतीय संस्कृति के रूपायन में सराहनीय योगदान रहा है आज निर्मल नहीं रही। जनता को इस बात से अवगत करा रही हैं इंदु जैन-

"नदियाँ काली हो गई हैं
मछलियों के दाँत झड़ गए
काँटे गल गए हैं
मच्छरों में ज़हर है
x x x
जोहडों में डालते रहे थे
अट्टालिकाओं का मैला।"[1]

नदियों के प्रदूषित होने के परिणाम और उसके कारक तत्वों पर कवयित्री ने प्रकाश डाला है। कल-कारखानों से निकलनेवाली गंदगियों को नदियों में छोड़ा जा रहा है, जिसके फलस्वरूप नदी की संपदा नष्ट हो रही है। अपनी दौड़-भरी जिन्दगी में हमने प्रकृति का साथ छोड़ दिया। उससे मुँह मोड़ लिया। जो कुछ पा सकते थे छोड़ते चले आए । मानव अपनी भोगलिप्सा की पूर्ति केलिए प्रकृति पर बलात्कार करता है और प्रदूषण को

1. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 29

जन्म देता है। इस प्रदूषण की समस्या का सामना उसे खुद करना पड़ता है। भूकंप, बाढ़, महामारियाँ सब इसीके परिणाम है। नदी सूख गयी, जंगल कटने लगे, मानव जाति के समक्ष तापमान में बढ़ाव, ओज़ोन की परत में छेद, वन विनाश, हवा और पानी का प्रदूषण आदि चिन्ता के विषय बन गए। फिर भी वह रुकता नहीं है। शकुंत माथुर के शब्दों में-

"डुबाता गंदी झीलें
बढ़ रहा है
आज यह चश्मा
लिये ताज़ा नया पानी
चला आता है
यह चश्मा
उगाता है शहीदों को।"[1]

यहाँ बोतल पानी की संस्कृति ओर इशारा है, जहाँ शीशे के बोतल में विषैला जल भरकर जनता को पिलाकर स्वार्थी मनुष्य शहीदों को जन्म देता है। इन सबके पीछे इनसान की आत्मकेन्द्रित मनोवृत्ति है।

प्राकृतिक विपदाओं को देखकर संवेदनशील साहित्यकार सजग हो जाते हैं। सचेत होकर वे जनता को वापस प्रकृति से जोड़ने की कोशिश करते हैं जबकि प्रकृति को लेकर उनके मन में यह बोध जमा हुआ है कि-

"अब ये घास ऐसी वैसी जगह
खुद बखुद नहीं उगेगी

---

1. शकुंत माथुर - दूसरा सप्तक, पृ. 58

सिर्फ सजे संवरे विशेष लान में ही लगेगी

X X X

वह भी अब कीमती हो गया है, बेशकिमती।
विशिष्ट व्यक्तियों केलिए ही रहेगा-
सामान्य जनों के कमरों में चित्रों ही में दिखेगा
छत पर या आंगन में नहीं।"[1]

इन पंक्तियों से तात्पर्य यह है कि जीती-जागती प्रकृत की झलक अब केवल, ड्रॉयिंग रूम की तस्वीरों में या फिर पार्कों में ही हम देख पाएगे। जिन पहाडों, फूलों, तितलियों और झरने से हम या हमारे पूर्वज परिचित थे, आगामी पीढ़ी केलिए ये सब अपने बनकर रह जाएँगे। सार यही कि मनुष्य जाति का भविष्य धरती के साथ उसके व्यवहार पर निर्भर करता है। इस बोध को जगाने में कवयित्रियों ने भरसक प्रयास किया है।

आलोच्य युगीन कवयित्रियों ने अपने काव्य में प्रकृति की प्रतिष्ठा के साथ मानवीय संवेदना का भी हमेशा ध्यान रखा है। परंपरागत प्रकृति-विधानों (आलंबन-उद्दीपन) को अपनाकर कवयित्रियों ने एक ओर प्रकृति के साथ आत्मसंबंध स्थापित किया है। तो दूसरी ओर उसकी आराधना करते हुए उसके बचाव केलिए प्रयत्नशील दिखाई दे रही हैं।

4.1.7 युद्ध की विभीषिकाएँ

युद्ध मानव सभ्यता की नियति है। मानव-जीवन के विकास में संघर्ष की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी चीन से एक और

1. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी - पृ. 59

पाकिस्तान से तीन युद्ध हुए। कभी गुलामी की जंजीरों को तोड़ने केलिए तो कभी अपने धर्म और आस्था को दूसरों पर आरोपित-प्रतिष्ठित करने केलिए कभी साम्राज्य विस्तार केलिए तो कभी अन्याय के प्रतिकार केलिए युद्ध तो होते रहे। युद्ध के कारण चाहे कुछ भी रहे हों लेकिन परिणति हमेशा भयावह ही रही । क्या-बच्चे, क्या बूढ़े सब की हृदय-विदारक चीत्कारों से गगन थर्रा गया।

कवयित्रियों ने भी युद्ध की विभीषिकाओं को पहचानकर उसे वाणी दी। कवयित्री सुमनजी की लेखनी से उपजे ये शब्द कि-

"कैसी भी हो
गोरी काली या मटमैली
औरत ही चीथी जाती है
संगीनों की नोकों पर
झुलाए जाते हैं
शिशु मानव।"[1]

-इस बात की पुष्टि करते हैं कि बच्चे और स्त्रियाँ ही अधिकतर शिकार बनते हैं, युद्ध के कारण चाहे कुछ भी हो। हरेक देश यह चाहता है कि वह किसी युद्ध का हिस्सा न बने। युद्ध से जानमाल की भयंकर क्षति तो होती ही है साथ ही देश का विकास भी अवरुद्ध होता है। कभी स्वार्थ, तो कभी स्वाभिमान को प्रतिष्ठापित करने की दुर्दम्य आकांक्षा तो कभी साम्राज्य-विस्तार की लिप्सा ने मानवता को युद्ध की त्रासदी झेलने को मज़बूर किया।

---

1. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 9

युद्ध की विभीषिका से मानवता कराहती रही। एक ओर बच्चे और स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार तो दूसरी ओर विस्थापितों की समस्या जिन्हें अपनी ज़मीन से उखाड़ दिया गया।

युद्ध की अग्नि में झुलसती मानव सभ्यता को फिर से जीवंत करने की कोशिशें समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्रों के संकल्पों के साथ होती रहीं। किन्तु इनसे युद्ध के परिणाम को भोगनेवाले आम आदमी के जीवन में सुधार की गुंजाइश न के बराबर है। इस तथ्य से वाकिफ होकर कवयित्री तथाकथित व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करती है-

"युद्ध से लौटे हुए ये लोग
अपनी ज़मीन से उखड़े हुए ये लोग
इन्हें फिर से उगा सकोगे तुम?"[1]

इन पंक्तियों में पिछड़े हुए निस्सहाय लोगों के प्रति कवयित्री की सहानुभूति प्रकट होती है। इस प्रकार कवयित्रियाँ युद्धकालीन माहौल को पहचानकर उसकी विभीषिकाओं से जनता को अवगत कराने का प्रयत्न करती हैं।

उपर्युक्त सामाजिक यथार्थों के अतिरिक्त कवयित्रियों की लेखनी ने जातीय भेदभाव, बालजीवन, विश्वविद्यालय जीवन, आदि जीवन के अन्य पहलुओं को भी स्पर्श किया है।

---

1. सुमन राजे - एरका , पृ.72

4.2 राजनीतिक यथार्थ

आलोच्य युग की परिस्थितियाँ दो प्रकार की रही हैं, एक तो वह परिस्थिति जब देश परतंत्र था और देश की जनता के समक्ष एक ही प्रमुख समस्या थी परतंत्रता से मुक्ति की तथा दूसरी परिस्थिति वह रही है, जब भारत आज़ाद हुआ, और उसके बाद के देश की समस्याएँ तथा राजनेताओं की नैतिकता का ह्रास जनता को देखने को मिला। अतः कवयित्रियों की कविताओं में एक ओर देशप्रेम की भावना मुखरित है तो दूसरी ओर आज़ादी के बाद की मोहभंग की स्थिति और व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर सुनायी देता है।

4.2.1 देशप्रेम की भावना

पिछले अध्यायों में हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा की कुछ अल्पज्ञात कवयित्रियों के काव्य का परिचय दिया गया है। राष्ट्रीयता का व्यापक स्वरूप पूर्व छायावाद युग में प्रकट हुआ। आलोच्य युग में भी यह भावना इतनी कमज़ोर नहीं पड़ी है। निम्नांकित उद्धरण इसके उदाहरण हैं।

4.2.1.1 वीरों की स्तुति

परोक्ष रूप में राष्ट्रीयता के प्रचार-प्रसार केलिए कवयित्रियों ने वीर पुरुषों के उदाहरण देते हुए कहीं तो देश को उनका अनुसरण करने केलिए प्रेरित किया है और कहीं इस बात पर क्षोभ प्रकट किया है कि उन्हीं

महापुरषों की संतानें होते हुए भी संभवतः हमारे रक्त में अब उनके गुण, उनका शौर्य शेष नहीं रह गया है। कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की पंक्तियाँ-

"तिलक, लाजपत गांधीजी भी
बंदी कितनी बार हुए
जेल गए जनता ने पूजा
संकट में अवतर हुए।"[1]

-महापुरुषों का स्मरण कराते हुए देशवासियों को प्रेरणा दे रही हैं जिससे राष्ट्रीयता की भावना को बल मिला। इनकी कविताओं में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में आज़ादी के संघर्ष में खून बहानेवालों को वाणी मिली है। जिन लोगों ने देश केलिए बलिदान दिया उनका गौरवगान हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य का मुख्य विषय बन गया। स्वतंत्रता संग्राम की वीराँगना लक्ष्मीबाई की समाधि पर सुभद्राजी ने लिखा-

"सहे वार पर वार अंत तक
लड़ी वीर बाला सी
आहुति सी गिर चढ़ी चिता पर
चमक उठी ज्वाला सी।"[2]

यहाँ उस लक्ष्मीबाई का स्मरण किया गया है जिन्होंने देश को आज़ादी दिलाने केलिए रणभूमि पर वीर गति प्राप्त की। ऐसे वीर जवानों की स्मृतियाँ आगामी पीढ़ी को प्रेरणा देती हैं। इसी कारण से कविगण इन्हें अपनी कविताओं के ज़रिए देश के नौजवानों तक पहुँचाते हैं। सुभद्राजी ने झाँसी की रानी का गुणगान करके जन-जन के मन में स्वाधीनता की आकांक्षा को

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 106
2. वहि - पृ. 130

मुखरित किया है। कवयित्री ने राम, कृष्ण जैसे पौराणिक नायकों को उद्धृत करके उनकी भी स्तुति की है।

4.2.1.2 राष्ट्रोद्बोधन के स्वर

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास ही ऐसे समय में हुआ जबकि समूचे राष्ट्र में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता का आंदोलन चल रहा था। ये आंदोलन पराधीनता का बोध करा रहे थे। युगीन कलाकार जनता की भावनाओं को उद्वेलित करके उद्बोधित करते हैं।

आधुनिक भारत में प्रथम स्वाधीनता संग्राम की वीरांगना लक्ष्मीबाई की स्मृति में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने ऐसी ओजपूर्ण कविता लिखी, जिसे गा-गाकर राष्ट्रवीर और ललनाएँ जोश से भर जाती थीं -

"सन् सत्तावन में चमक उठी जो तलवार पुरानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।"[1]

इसके उपरांत तो हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता का जो प्रवाह उमड़ा वह स्वाधीनता प्राप्ति (सन् 1947) तक वेग से चलता रहा। सुभद्रा जी की सांसी की रानी' कविता में एक प्रकार का आवेग है। इसमें एक ओर झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई के प्रति कृतज्ञता का प्रकाशन है तो दूसरी ओर अंग्रेज़ी राज्य के अन्याय, अत्याचार और दुर्व्यवहार के प्रति आक्रोश को भी उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। कवयित्री ने लक्ष्मीबाई के स्वभाव में विद्यमान राष्ट्रीय भावना एवं साहस का वर्णन अत्यंत ओजस्वी शैली में किया है।

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 122

'विजया दशमी', 'राखी की चुनौती', 'राखी', 'मातृ मंदिर में', 'झांसी की रानी की समाधि पर', 'जालियावाले बाग में वसंत', 'वीरों का कैसा हो वसंत' आदि राष्ट्रोद्बोधन के स्वर से मुखरित सुभद्रा जी की कविताएँ हैं। वीरों के जयगान का अर्थ ही एक प्रकार से स्वतंत्रता का आह्वान करना है।

4.2.1.3 आत्मबलिदान की भावना

'देशभक्ति' और 'राष्ट्रीयता' की प्रवृत्ति में अंतर पाया जाता है। 'राष्ट्रीयता' का स्वरूप देशभक्ति' से अधिक व्यापक होता है, परंतु देशभक्ति के आधार पर ही 'राष्ट्रीयता' का स्वरूप निर्धारित होता है। देश के प्रति अनुराग, भक्ति या श्रद्धा के भाव से ही राष्ट्रवीरों में बलिदान की भावना उत्पन्न होती है।

स्वतंत्रता से प्रेम, और वह भी निस्वार्थ एवं निश्चल प्रेम जब तक किसी भी व्यक्ति में न होगा, तब तक वह अपने देश केलिए न तो स्वयं बलिदान करने केलिए ही कभी तैयार होगा और न राष्ट्रोद्बोधन के गीत गाएगा और न भारतीयों को जगाएगा। कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ऐसी नहीं थी। जब साहित्य में निराशा और अवसाद का ही स्वर सुनाई पड़ रहा था सुभद्राजी ने लिखा-

"सदियों सोई हुई वीरता
जागी, मैं भी वीर बनी
जाओ भैया विदा तुम्हें
करती हूँ, मैं गंभीर बनी।"[1]

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 107

अपने में आत्म चेतना लाने के साथ अपने भाइयों में भी अर्थात् देशवासियों में भी चेतना लाने की कोशिश कवयित्री के द्वारा हुई है। देश के वीरों को मातृभूमि की बलिवेदी पर मर मिटने का आह्वान देती हैं। यहाँ तक कि वे 'राखी' जैसे पुण्य पर्व पर अपने असहयोगी, सत्याग्रही भाई केलिए लोहे की हथकडियों की राखी भेजती हैं, जिससे वे भारतमाता के 'बंधन' काटने में समर्थ हो सके।

कवयित्री ने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति केलिए क्रांति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी। सुभद्रा जी की पंक्तियाँ-

न होने दूँगी अत्याचार
चलो, मैं हो जाऊँ बलिदान
मातृ-मंदिर में हुई पुकार
चढ़ा हो मुझको हे भगवान।"[1]

-राष्ट्रप्रेम को ही मुखरित नहीं करती बल्कि आज़ादी केलिए यदि यह शांतिपूर्ण आंदोलन जीवन की बलि माँगता है तो इसकेलिए भी जनता को तैयार रहना चाहिए, इस बात की ओर भी संकेत करती हैं। इस प्रकार की रचनाओं के द्वारा कवयित्रियों ने जनता में देश के प्रति प्रेम और भक्ति की भावनाएँ उत्पन्न करने का प्रयास किया है।

4.2.1.4 हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम

इस बात से तत्कालीन सभी कवि भली-भांति वाकिफ थे कि राष्ट्र की

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 98

गुलामी का एक कारण एकता की कमी एवं फूट की भावना थी। अनेक होकर भी एक होना वैसा ही है जिस प्रकार कई नदियों का जल एक समुद्र में ही विलय हो जाता है। विदेशियों के शासनानुसार अंग्रेज़ी भाषा सर्वत्र अनिवार्य थी। भारतवासियों पर वह भार स्वरूप लदी हुई थी। भारत की भाषा कौन सी हो, इस पर वाद-विवाद हुए, उपद्रव हुए। किन्तु कवियों केलिए यह समस्या कोई समस्या नहीं थी। इस युग में राष्ट्रीय एकता केलिए राष्ट्रभाषा प्रेम की जो अभिव्यंजना हुई है, उसमें हिन्दी की गुणगाथा गाकर अन्य भाषाओं के साथ उसके निकट संबंध को कवियों ने प्रदर्शित किया है।

कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की ये पंक्तियाँ-

"मुझ सी एक की बन तू
तीस कोटि की आज हुई।
हुई महान, सभी भाषाओं
की तू ही सरताज हुई।

x x x

तेरे ही द्वारा होवेगा
भारत में स्वातंत्र्य प्रभात।

x x x

तू होगी आधार, देश की
पार्लमेंट बन जाने में
तू होगी सुख-सार देश के
उजड़े क्षेत्र बसाने में।

तू होगी व्यवहार देश के
बिछड़े हृदय मिलाने में
तू होगी अधिकार देश भर
को स्वातंत्र्य दिलाने में।"[1]

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 112

-यह साबित करती हैं कि अंग्रेज़ी की बलिवेदी पर हिन्दी का बलिदान करना उन्हें न भाया। यद्यपि हिन्दी को राजभाषा और संपर्क भाषा बनाने की दिशा में विभिन्न आयोगों का गठन बहुत बाद में आगे चलकर हुआ, तथापि इसी युग से इस भाषा को 'राष्ट्रीय एकता' का एक सशक्त माध्यम माना जाने लगा था।

4.2.1.5 सुन्दर भविष्य की कल्पना

आलोच्य युग के लेखक देश की वर्तमान स्थिति से दुखी थे। फिर भी अपने हृदय में वे उसके स्वर्णिम भविष्य की आशा संजोये हैं। स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद की स्थिति की वे कल्पना करते हैं जबकि देशवासी अपने ढंग से इसका निर्माण करेंगे, जिसमें उनका अपना शासन होगा और अपना नेतृत्व होगा। कल्पना में ही कवयित्री को विश्वास होने लगता है कि पराधीनता रूपी अंधकार समाप्ति की और अग्रसर है और नया प्रकाश लेकर नयी सुबह आनेवाली हैं जहाँ-

"निर्धन हों धनवान, परिश्रम उनका धन हो
निर्बल हों बलवान, सत्यमय उनका मन हो।।
हों स्वाधीन गुलाम, हृदय में अपनापन हो
इसी आन पर कर्मवीर तेरा जीवन हो।"[1]

इन पंक्तियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कि महात्मा गाँधी ने भारत में जिस रामराज्य की कल्पना की थी वह कदाचित इन पंक्तियों में साकार हो उठी हों। जहाँ सभी को समान अधिकार मिले, सभी एक दूसरे से

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 109

प्रेम और भाई चारे की भावना रखें। ऊँच-नीच की भावना समाप्त हो तथा शासक और शासित में कोई अंतर न हो। वैसे भी इस काल के कवि अपनी रचनाओं को सही रूप नहीं दे पाये थे, शासन के कोप भाजन बनने का डर सदैव बना रहता था, इसी कारण वे स्वराज्य प्राप्ति के बाद के भारत की सुखद कल्पनाएँ अधिकता से नहीं कर सके। फिर भी जब कभी अवसर आया तब कवियों ने इस ओर भी अपनी लेखनी उठाई।

4.2.1.6. मूल्य संकट के संदर्भ में ध्वजवंदना

अंततः भारतवासियों की चिर प्रतीक्षित अभिलाषा पूरी हुई तथा 15 अगस्त 1947 को लाल किले की प्राचीर पर भारत का राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज लहरा उठा। चिर प्रतीक्षित स्वाधीनता प्राप्त हुई, स्वराज्य का आगमन हुआ। इस स्वतंत्रता केलिए पता नहीं कितने घरों के दीपक बुझ चुके थे, अहिंसा प्रिय राष्ट्र की धरती शोणित से रंग चुकी थी। यह एक वास्तविकता थी कि स्वराज्य ही प्राप्त हुआ है, बापू का रामराज्य साकार नहीं हो पाया था, जहाँ सब बराबर हों, सब कहीं प्रेम और आदर हों।

बदलती जीवनशैली के साथ मनुष्य भी आत्मकेन्द्रित होता गया। देश की धरती या देशप्रेम के भाव से कटता गया। ऐसे में देश का नक़्शा झंडा और राष्ट्रगीत सब उसकेलिए मज़ाक बन गए। इन सबके प्रति उसके मन में कोई सकारात्मक भावना नहीं रही। ऐसे संदर्भ में कवयित्री सुमन राजे 'मनु पुत्र के नाम के खुली चिट्ठी' नामक कविता के ज़रिए आनेवाली पीढ़ी को

स्मरण करा रही हैं -

“हिन्दुस्तान का नक्शा उस समय
कागज़ का एक टुकड़ा नहीं हुआ करता था
कई बार
ऊपर से नीचे हाथ फेरते हुए
हम महसूस करते थे
बर्फीली चोटियाँ
और लहराते समुन्दर
लगता था
हमने जरा सी ऊँगली घिसी
तो नीचे से भुरभुरी मिट्‌टी
निकल आएगी
और अपनी उँगली में हमें
सोंधी-सोंधी गंध आने लगती थी.”[1]

राष्ट्र-ध्वज के प्रति आदर और प्रेम प्रकट करते हुए-

“तब हमारे लिए झंडा
एक कपड़े का टुकडा नहीं था
एक पूरे महुरते हुए मौसम का
नाम या और अकसर
दूर पर बजती राष्ट्रगीत की
धुन-सुन हम सोता-नींदी में
भी उठकर खड़े हो जाया करते थे.”[2]

इन पंक्तियों में कवयित्री मंद पड़ती हुई राष्ट्रीय भावना की ओर

1. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 54, 55
2. वही, पृ. 55

संकेत करते हुए उसे वापस हमारे मन में, विशेषकर दूर होती पीढ़ियों के मन में यह भावना लौटाने की प्रेरणा देती है।

इस प्रकार ये कवयित्रियाँ देशप्रेम की भावना को अपने में समेटकर देश के प्रति न्याय कर रही हैं।

4.2.2 व्यवस्था विद्रोह

स्वराज्य प्राप्ति के साथ देशवासियों में एक आशा और उमंग की लहर दौड़ पड़ी। लेकिन आज़ादी के बाद जो समाज निर्मित हुआ। जिस देशी सरकार की स्थापना हुई, उसकी कारगुज़ारियों से देश की सामान्य जनता के साथ ही कवि वर्ग को भी बड़ी निराशा हुई। अपनी इस निरशा को कवयित्री शकुंत माथुर यों अभिव्यक्त कर रही हैं कि -

"ग्रहण अपने देश को लग गया है
सूरज प्रकाश सहित ढक गया है।"[1]

दूसरी ओर देश की आज़ादी प्राप्त होने की निरर्थकता को व्यक्त करते हुए स्नेहमयी चौधरी लिखती हैं -

"रोज़ सुबह
अखबार में बहुत सी खबरें होती हैं
एक देश ने दूसरे पर भयंकर बमबारी की है,
एक और ने किसी और के
हवाई जहाज़ों और टैंकों को मारकर गिरा दिया।

---

1. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 80

महँगाई बढ़ गयी है,
उधर लोगों ने कर दी भूख-हड़ताल
वहाँ देश का सांस्कृतिक स्तर
भाषा के सवाल पर अटका है,
भविष्य क्या है अपना ।"[1]

इन पंक्तियों में यह साफ नज़र आ रहा है कि आज़ादी के पूर्व जनता जिस अभिशप्त ज़िन्दगी को जी रही थी आज़ादी के बाद की स्थिति उससे भी बदतर हो गयी है। यहां कवयित्री देश के भविष्य को लेकर काफी चिन्तित हैं। आज़ाद भारत की सरकार नई नीतियाँ बनाती गई। जनता की हालत में कोई सुधार नहीं आया। आर्थिक दृष्टि से जनता शोषण केलिए बाध्य हुई । अपना क्षोभ भी प्रकट करती रही। लेकिन हुआ कुछ नहीं । इन्दु जैन की ये पंक्तियाँ कि -

"औसत से
हैसियत की सीढ़ियाँ
तय कर दी है सरकारी नीतियों ने
x x x
देशभक्त है अनजाने ही
औसत आदमी
बराबर सरकर को कोसता हुआ
चलता तो उसी के
नीति शतक पर है।"[2]

-सरकारी नीतियों के अधीन जीने केलिए विवश जनता की मानसिकता को दर्शा रही है जो चाहकर भी कुछ नहीं कर सकती।

1. स्नेहमयी चौधरी - एकाकी दोनों, पृ. 39
2. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 66

सरकार ने अपने शोषक की भूमिका अदा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत का जनतंत्र खड़ा है अपने बुनियादी चार स्तंभों पर। प्रत्येक का अपना लक्ष्य, दौत्य निर्णीत था। पुलिस हो या न्यायपालिका। किन्तु जनता के प्रति इनका व्यवहार भी शोचनीय था। सत्ता की व्यावहरिक उदासीनता को दर्शाने हेतु एक प्रसंग द्रष्टव्य है-

"सवालों का तेज़ क्लब जलाकर
शिनाख्त हो रही है
इतनी चौंधियाती रोशनी में
सच झूठ हो जाता है
झूठ सच।
x x x
ढूँढ़ा जा सकता है
कौन-सा रहस्य?
जो कैदी खुद नहीं जानता
वही उससे उगलवा लेना
दंड का आधार
क्योंकर बनेगा ?"[1]

यहाँ इन्दु जैन निर्दोष बेकसूर लोगों को डरा धमकाकर सवाल करने की पुलिस की रीति पर आक्षेप प्रकट करती हैं। एक समय था जहाँ राजा, राजा भी होते थे और फकीर भी। जनता के दुख-दर्द को महसूस कर सकते थे। समझ सकते थे। अमृता भारती के शब्दों में -

"अब आदमी की चमड़ी का
जूता पहननेवाले लोग राजा है।

---

1. इंदु जैन - सबूत क्यों चाहिए, पृ. 30

अहिंसक जूतों का व्यापार बढ़ रहा है
आदमी मारा नहीं जा रहा
अपनी चमड़ी के नीचे
खुद ही मर रहा है।"[1]

अर्थात् आजकल के नेता साधारण जनता को अपने पैरों तले दबाकर अपना अधिकार जमानेवाले हैं। बिना कुछ कहे, बिना कुछ किये यह शोषित जनता सबकुछ सहती है। इन्हीं के बलपर खड़ी है भारत सरकार, भारत की व्यवस्था। एक ओर समस्याएँ पूरे देश को निगल जाना चाहती थीं, दूसरी ओर देश के रक्षक, देश के नेता एवं कर्णधार, अपनी स्वार्थलिप्सा एवं पदलोलुपता के चक्कर में देश की वर्तमान स्थिति से बेखबर थे। उन्हें खबर थी सिर्फ 'कुर्सी' की राजनीति के कुर्सी की जिसकी वास्तविकता से हमें अवगत कराते हुए कवयित्री शकुंत माथुर कहती हैं-

"कुर्सी एक अजस्र धार है
ऊपर से नीचे तक
एक वही तार है
ज़रा छुओ
करंट लगता है
चमक उठता जब अचानक कोई
मक्खन वहीं पड़ता है
मानव मन भी
मशीन पर बैठते ही
यान्त्रिक हो गया है
लाल फीते का

1. अमृता भारती - आज, कल या सौ बरस बाद, पृ. 165

मकड़ जाल
चारों ओर कस गया
x x x
दोष किसी का किसी के सिर मढ़ा जाता
बड़े-बड़े प्लानों की फाइल
चूहा कुतर जाता
कागज़ी लड़ाई में
उजला भविष्य रुक जाता ।"[1]

इन पंक्तियों में राजनीति के क्षेत्र में होनेवाले उथल-पुथल, नेताओं की भ्रष्ट कार्यवाही आदि को सरल ढंग से अभिव्यक्ति मिली है।

सिद्धांत रूप में आज़ादी का लाइसेंस भले ही देश को मिल गया लेकिन व्यावहारिक रूप में वह मात्र राजनीतिक आज़ादी ही हासिल कर पाया था। देश के नेता, जिन्होंने आज़ाद भारत की बागड़ोर संभाली तथा देश में गांधी के रामराज्य की कल्पना को साकार बनाने केलिए आगे आये थे, अधिकार के प्रति उनकी स्वार्थलिप्सा एवं देश के शोषण में उन्हें रत देखते हुए कवयित्री की समाज प्रतिबद्ध आत्मा तड़प उठी है। वे बोल उठती हैं -

"हमारे देश ने हमें अधिकार
दिया है पेट भरने का
हमारे और हमारे खाने के बीच
आने की इज़ाज़त
किसने दी है तुम्हें?"[2]

इन पंक्तियों में कवयित्री का आक्रोश मुखर हो उठा है उन संवेदनशील

1. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 92
2. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 26

नेताओं के प्रति जो अपनी स्वार्थपूर्ति केलिए जनता से, गरीबों से उनका अधिकार छीनने को तुले हुए हैं। वैसे कवयित्री का हृदय इस तथ्य से बखूबी वाकिफ है कि-

> "संवेदन के
> तंतुओं को
> भोथरा करने के
> षड्यंत्र का नाम है
> सत्ता।"[1]

तात्पर्य यह कि जो सत्तासीन हैं उनके हृदय में पत्थर रखा हुआ है और सत्ता जो सोचती हैं, करती है वह जनता की समझ से बाहर है। नेतागण जो बोलने हैं, करते नहीं। कह सकते हैं कि यह जनतांत्रिक मूल्यों का अवमूल्यन है। इसकेलिए कवयित्री ने यहाँ 'षड्यंत्र' शब्द का प्रयोग किया है, जो बिलकुल उचित है। सत्ता के इस 'षड्यंत्र' सं लड़ने केलिए इन कवयित्रियों के खून में बेचैनी है। वे देखती हैं कि अफसरों और सौदागरों द्वारा जनता लूटी जा रही है। कवयित्रियों के लेखन में इस अन्याय के प्रति विद्रोह के स्वर मुखर हो उठे हैं-

> "रचना ही होगा
> अब कोई
> नया इंद्र
> कोई नई व्यवस्था
> बहुत हो चुका

1. सुमन राजे - एरका, पृ. 96

नहीं रहा जाता
नहीं सहा जाता
रोज़ रोज़
अनहोनी
अन्याय
अत्याचार
अप्रतिहत
नहीं रहा जाता अब
नहीं सहा जाता अब।"[1]

सुमन राजे की उपर्युक्त पंक्तियों में वे मंचासीन अव्यवस्थित सत्ता को हटाकर उसके स्थान पर एक नयी व्यवस्था के आने की चाह रखती हैं। कवयित्रियों की उपर्युक्त पंक्तियों में वर्तमान व्यवस्था के प्रति असंतोष के स्वर अवश्य सुनायी पड़ते हैं किन्तु वे हार नहीं मानती बल्कि आशाभरी दृष्टि से भविष्य को देखती है।

4.3 अन्य प्रवृत्तियाँ

4.3.1 पौराणिक संदर्भों का पुनर्पाठ

अलोच्य युगीन कवयित्रियों की कविताओं में पौराणिक गाथा को युगानुरूप नये संदर्भ दिये गए हैं और उन्हें वर्तमान स्थितियों के अनुरूप व्याख्यायित किया है। इनके काव्य में घटना प्रसंगों के पुरावृत्तात्मक स्वरूप के प्रति अवज्ञा का भाव नहीं दर्शाया बल्कि उसके स्वरूप को प्रामाणिक रूप में पुनःप्रस्तुत किया है। वैसे कविता और पौराणिक गाथाएँ अविच्छिन्न

1. सुमन राजे - एरका, पृ. 102

रूप से संबंधित रही हैं। यह संबंध इसी देश में नहीं अपितु विदेश में भी है। कविता का प्रारंभ ही पौराणिक गाथा से हुआ पर धीरे-धीरे कविता ने अपना अस्तित्व अलग कर दिया।

आधुनिक काल के काव्य की यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है कि उसने व्यक्ति के भोगे यथार्थ की अभिव्यक्ति केलिए मिथक के पुरातन, श्रेण्य-क्लासिकल विषय को अपनाया है। वस्तुतः आधुनिकता केवल नवीनता ही नहीं है, वरन् वस्तुगत मूल्य भी है। अतएवं पारंपरिक विषयों को अपनाकर भी कवि उसे परंपराबद्ध, पुरातन शैली के काव्य का रूप प्रदान कर सकता है। आधुनिकता विषयवस्तु को नूतन दृष्टि से प्रस्तुत करने में है, मात्र नवीन विषय को काव्य का आधार बनाने में नहीं। आलोच्ययुगीन कवयित्रियों की कविताओं में पारंपरिक विषयों को अपनाकर आधुनिक जीवन को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति द्रष्टव्य है जो आधुनिक काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है।

कवयित्री सुमन राजे का काव्य संकलन 'एरका' में महाभारत की कथा के अनेक चरित्रों को दर्शाया गया है जिनके चरित्रांकन पर विवेच्य युगीन सामाजिक-राजनीतिक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ उसी की ओर इंगित किया जाएगा।

कर्ण महाभारत की एक ऐसी धूलि-धूसरित नर-मणि है, भाग्य जिसके सदैव विपरीत रहा। आधुनिक काव्य में जब उपेक्षित चरित्रों को चीन्हा गया

तो कर्ण-चरित्र का पुनरुद्धार हुआ। वह आधुनिक काव्य का बड़ा लोकप्रिय चरित्र है। यह चरित्र इतनी महानता एवं गौरव-गरिमा लिए हुए है कि उसके सम्मुख एक नहीं अनेक अर्जुन भी छोटे हैं। कर्ण की सबसे बड़ी अन्तर्व्यथा यही है कि वह प्रकाश-पुत्र होकर भी जीवन भर अंधकार पूर्ण राहों में भटकता रहा। सूर्य-पुत्र होने में कर्ण का दोष नहीं किन्तु इसके परिणामों को वह बेचारा जीवन भर भोगता रहता है। वस्तुतः कर्ण को यह उपेक्षामय जीवन देनेकेलिए प्रमुखतः उसकी माता कुन्ती उत्तरदायी है। कुंती ने सद्यजात बालक कर्ण को जलमें बहाकर जीवन-पर्यंत उसकी सुधि नहीं ली। उसे कर्ण की सुधि तभी आती है जब उसके समाज स्वीकृत पुत्र अर्जुन एवं युधिष्ठिर का जीवन खतरे में हैं। वह इसी समय अपने मातृत्व की दुहाई देकर पाण्डवों के जीवन केलिए कर्ण से दया की भीग माँगती है। इस संदर्भ में कर्ण के मुँह से उद्धृत ये पंक्तियाँ -

> "चारों तरफ पटी-पड़ी लाशों के बीच
> खून में डुबाकर अपने
> बाये हाथ की उंगली
> लिखता हूँ एक शब्द
> माँ
> लेकिन यह शब्द
> तुम्हारेलिए नहीं है
> देवी, कुंती
> यह मेरी बांझ
> माँ की दूध भरी छाती के
> लिए है जिसकेलिए नहीं था मैं

कभी भी सूर्य पुत्र।
x x x
मात्र सूर्य पुत्र कर्ण केलिए ही
पड गई थी तुम्हारी गोद छोटी
क्या अर्थ रखता था
तुम्हारे लिए
माँ
बनना विवाह से पहले
या बाद।"[1]

उसे साधारण मानव के धरातल पर ले आती है जहाँ एक पुत्र अपनी माँ की ममता से जीवन भर वंचित रहा। इन पंक्तियों में एक ओर कुंती के क्रूर व्यवहार के प्रति कर्ण का आक्रोश झलकता है तो दूसरी ओर सूत-पत्नी राधा जैसी माता को पाने का गर्व जिसने उसे माँ की ममता और स्नेह दिया। कर्ण का यह चरित्र समाज के उन समस्त पुत्र-पुत्रियों का प्रतिनिधित्व करता हैं जिन्हें जन्म के तुरंत बाद अनाथ बना दिया जाता है।

महाभारत का एक और पात्र है युयुत्सु, । उन्हें धृतराष्ट्र का पुत्र कहा गया है जो वेश्या दासी से उत्पन्न हुए थे। कहीं उन्हें वेश्यापुत्र कहा गया है, कहीं दासीपुत्र। युयुत्सु सत्य के पक्षधर हैं। आलोच्य युगीन कवयित्रियों ने युयुत्सु के चरित्र को अपने काव्य में प्रतीक रूप में अपनाया है। किसका प्रतीक? यह निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

"रथियों, महारथियों, अतिरथियों के बाद
हमें ही सौंप दी जाती है

1. सुमन राजे - एरका, पृ. 38

सारी निष्पत्तियाँ
क्योंकि हम वेश्यापुत्र
भले ही राजा के वंश हो
या ऋषि के अंश
हम वेश्या-पुत्र ही कहलाते हैं
हमारी माँ का कोई नाम नहीं होता।
　　　　जब कुलीन पटरानियाँ
　　　　युवराजों की रचना करती हैं
　　　　तब हम युयुत्स जन्म लेते हैं।
हम ज़्यादा अच्छी तरह समझते थे
युद्ध का मतलब क्योंकि
इतिहास हमसे ज़्यादा
किसने भोगा है?"[1]

इन पंक्तियों में एक ओर वेश्याजीवन की त्रासदी को दर्शाया गया है तो दूसरी ओर इनकी कोख से जन्में युयुत्सुओं की अस्तित्वहीनता पर प्रकाश डाला गया है। जिन्हें समाज से कई तरह की प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं। आधुनिक युगीन कवियों ने युयुत्सु के उस चरित्र को अपनाया है जहाँ वह सत्य का पक्षधर बनकर आया है। जनता की लाँछनों के दबाव में आत्मसंघर्ष का अनुभव करनेवाले युयुत्सु के द्वारा वर्तमान समाज की एक ज्वलंत समस्या को ही कवयित्री ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

इसी तरह महाभारत में उल्लिखित माधवी, शिखंडिन, अश्वत्थामा, अर्जुन आदि कई चरित्रों को वैयक्तिक धरातल पर पेश करते हुए समाज के उपेक्षितों के प्रति पक्षधरता दिखाई है।

1. सुमन राजे - एरका, पृ. 65

कवयित्रियों के काव्य विवेचन से स्पष्ट है कि इन्होंने जिन पात्रों को अपनाया है, प्रायः उन सबका चरित्र-चित्रण बड़े कौशल से किया गया है। किसी भी पात्र के प्रति पूर्वाग्रह भरी दृष्टि नहीं रखी है। इसलिए समस्त पात्रों को नवीन भावभूमि पर प्रस्तुत किया है जिसमें वैज्ञानिक युग की बौद्धिकता के साथ मनोवैज्ञानिकता का आग्रह सर्वाधिक प्रमुख प्रेरक तत्त्व रहा है।

विवेच्य युगीन कवयित्रियों की कविताओं में उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त जातीय भेदभाव, अतीत एवं स्मृतियों के प्रति आस्था, कवि एवं साहित्य, आस्तिक-नास्तिक मनोवृत्ति, अंधविश्वासों का खोखलापन, पूजापाठ-त्योहार-पुरानी औषधियों का ज्ञान आदि पक्षों की ओर भी संकेत हुआ है।

4.3.2 प्रेम भावना

प्रेम एक ऐसी भावना है जिसे शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता। यह तो अनुभूति का विषय है। प्रेम का महत्व, उसका स्वरूप, उत्पत्ति का कारण, उसका प्रभाव, उसकी गति आदि के संबंधों में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रकट किए हैं। मनोविज्ञान के अनुसार प्रेम एक विशेष भावना है। जब कोई व्यक्ति किसी के प्रति इतना अधिक आकृष्ट हो जाता है कि वह उसके सामीप्य से ही प्रसन्नता का अनुभव करने लगता है, तो इसी मनस्थिति को प्रेम की संज्ञा दी जाती है। 'प्रेम' एक व्यापक भावना है किन्तु संकुचित अर्थ में दो भिन्न लैंगिक व्यक्तियों का काम-समन्वित प्रणय ही प्रेम है, जिसका संबंध श्रृंगार रस से है। इस प्रेम भावना की सार्थकता, इसका महत्त्व आदि

को स्पष्ट करते हुए सुमन राजे बोलती हैं-

> "दोस्ती एक रुक्का है
> कर्ज़ का
> जो समय के साथ-साथ
> गल जाता है
> x x x
> प्यार एक सिक्का है
> खोटा जो
> अंधेरे में
> कभी-कभी चल जाता है।"[1]

प्रेमोत्पत्ति के अनंतर प्रणय भावना का विकास नायक-नायिकाओं के पारस्परिक संपर्क एवं मिलन के द्वारा होता है। प्रणय के संयोग एवं वियोग के क्षणों को स्त्री काव्य में पर्याप्त जगह मिली है।

4.3.2.1. संयोग

यहाँ नायक-नायिका एक साथ रहकर दर्शन, स्पर्श एवं प्रेमालाप आदि सुखों का आनंदानुभव करते हैं। कवयित्री की ये पंक्तियाँ-

> "प्रथम जब उनके दर्शन हुए हठीली आँखें अड़ ही गई।
> बिना परिचय के एकाएक हृदय में उलझन पड़ ही गई।"[2]

-प्रेमी हृदय के संयोगकालीन क्षणों का, प्रथम मिलन का स्मरण कराती हैं। धीरे-धीरे यह प्रेम प्रगाढ़ होता जाता है। प्रणय की मिलनाकांक्षा को यहाँ शब्दबद्ध कर रही हैं सुभद्रा जी -

---

1. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 91
2. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 45

"हुई प्रेम विह्वल मैं उनके
चरणों पर बलिहार गई
बदले में प्रिय का चुंबन पा
जीत गई या हार गई।"[1]

प्रेमी हृदयों में होनेवाले स्नेहाकर्षण तथा स्वाभाविक स्नेह विकास को कुशलता से यहाँ अंकित किया गया है। संयोग प्रेम का वर्णन अत्यंत स्वच्छंद एवं उन्मुक्त हैं। वे श्लील-अश्लील की सीमा से परे है। संयोगानुभूति के चित्रण में इन्होंने भावात्मक दृष्टि का परिचय दिया है।

4.3.2.2 वियोग

वियोग श्रृंगार वहाँ होता है जब नायक दूर होते हैं और मिलन के अभाव में दुखी होते हैं। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि प्रेम क्षण भर का वियोग भी सहन नहीं कर सकता। किन्तु वास्तविकता तो यही है कि वियोग में ही यह प्रेम निखरता है। अतः इसका विशेष महत्त्व है। यही वास्तविक प्रेमानुभूति है। संयोग का अर्थ स्त्री-पुरुषों का एक साथ रहना नहीं है क्योंकि एक पलंक पर सोते रहने पर भी यदि ईर्ष्या आदि हो तो यह स्थिति वियोग ही कहलाती है। वियोग की दो कोटियाँ हैं प्रवासपूर्व विरह और प्रवास विरह।

4.3.2.2.1 प्रवास के पूर्व विरह

प्रियतम के साथ रहते हुए भी ऐसे अवसर अनेक आये हैं जब कवयित्री को विरह-वेदना का सामना करना पड़ता है। यह भावना अत्यंत

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 21

सुकुमार है। प्रियतम के साथ रहकर भी उनमें एक अतृप्ति बनी रहती है।

कवयित्री के ये पंक्तियाँ-

"खूनी भाव उठे उसके प्रति
जो हो प्रिय का प्यारा
उसकेलिए हृदय यह मेरा
बन जाता हत्यारा।"[1]

-यह उजागर करती हैं कि पति का प्यार बँटे तो, सपत्नीजन्य ईर्ष्या की वेदना सहनी पड़ती है। यह स्थिति असह्य है।

4.3.2.2.2 प्रवास विरह

मिलन के अवसरों पर क्षणमात्र का वियोग जब असह्य जान पड़ता है तब प्रवासकालीन विरह तो अत्यधिक मार्मिक है। प्रियतम की विरहानुभूति का अंकन बहुत कम है पर प्रेमिका की दशा दयनीय है। वह विवश विह्वल हो गयी है। प्रेमी के अलग होने पर प्रेमिका को संयोग के क्षण याद आते हैं, कभी अपने अपराधों पर दृष्टि ले जाती है। वह कहती है -

ज़रा-ज़रा सी बातों पर
मत रूठो मेरे अभिमानी
लो प्रसन्न हो जाओ
गलती मैंने अपनी सब मानी
x x x
सदा दिखाई दो तुम हँसते
चाहे मुझसे करो न प्यार।"[2]

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 27
2. वही - पृ. 25

इन पंक्तियों में यह बात साफ नज़र आती है कि किस प्रकार एक प्रेमिका अपने प्रियतम को खुश देखने केलिए अपने अहं को भूल जाती है या सारी गलतियाँ अपने ऊपर ले लेती हैं। मनोदशाओं का मार्मिक एवं स्वाभाविक अंकन यहाँ मिलता है।

यद्यपि प्रेमी चले गये हैं वर प्रियमिलन की अभिलाषा मन में बनी हुई है। वह उन्हें देखने तथा मिलने की अभिलाषा करती है। इसीलिए शिशिर समीरण के पास संदेश भेजती है -

"कहना किसी तरह वे सोचें
मिलने की तदबीर सखी।
सही नहीं जाती अब मुझसे
यह वियोग की पीर सखी।"[1]

इन पंक्तियों में यह स्पष्ट अभिव्यक्त है कि प्रेमिका के मन में प्रिय की चिन्ता बराबर बनी रहती है। यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो वस्तुएँ प्रिय के मिलन के समय सुखकर लगती हैं, वे ही विरह में दुखकर प्रतीत होने लगती हैं। प्रकृति की स्वाभाविक बातें भी विपरीत प्रतीत होती हैं जैसे -

"दिन में प्रचंड रवि-किरणें मुझको शीतल कर जातीं।
पर मधुर ज्योत्सना तेरी हे शशि है मुझे जलाती।"[2]

यहाँ चन्द्रमा की शीतल किरणें उसे सूर्य से भी अधिक जलाती है। विरह की अधिकता में सभी सुखदायक उपकरण उसे दुख पहुँचाते हैं। ये पंक्तियाँ कहीं न कहीं नागमती की विरह दशा का स्मरण करा रही हैं।

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 21
2. वही - पृ. 61

अत्यधिक विरहानुभूति मन की चेतनता को हर कर प्रलाप की स्थिति तक पहुँचा देती है। जिनसे प्रेम किया था, उनके बिछुडने से मन में असंतुलन का आ जाना स्वाभाविक है। कवयित्री का उन्माद अधिक तीव्र है। अतः एकांत में कभी उपालंभ देने लगती है तथा आँसू बहाती है। जिन नेत्रों ने प्रिय को अपने वश में किया था, वे आज अश्रु प्रवाहित करते करते अचेत हो रहे हैं :-

"कितना उन्माद भरा है, कितना सुख इस रोने में
उनकी तस्वीर छिपी है, अंतस्तल के कोने में।"[1]

यहाँ विरह व्यथा में भी, उस वेदना में भी सुख का अनुभव कर रही हैं। इन विविध भावनाओं में अनेक भावनाएँ साथ-साथ सम्मिलित हैं। वस्तुतः मानव मन की जितनी भी दशाएँ संभव हैं, सभी का विनियोग कवयित्री ने प्रेम वर्णन में, विरह वर्णन में किया है। प्रेम में करुणा भाव निहित है। इसीलिए प्रेम विह्वल होकर कर्तव्य से मुँह मोड़नेवाली प्रेमिका को नहीं बल्कि दिल में पत्थर रखकर प्रिय को कर्तव्य के पथ पर अग्रसर करनेवाली प्रेमिका को ही यहाँ कवयित्री ने दर्शाया है।

प्रेम के मनोवैज्ञानिक धरातल को प्रस्तुत करने के साथ ही प्रेम के नाम पर कर रहे भौतिक खोखलेपन की ओर भी कवयित्रियों ने तीखा बाण चलाया है -

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 60

"इतिहास बताता है
शाहजहाँ बादशाह ने
प्रेम से पीड़ित होकर
ताजमहल बनवाया था
यदि
प्रेम के प्रति उसकी
सच्ची भावना रही होती
तो पत्थर को गढ़नेवाला
कलाकार
बीच में न आता
वह
स्वयं
कलाकार हो जाता।"[1]

अर्थात् प्रणय भी एक ऐसा मूल्य है जिसमें आत्माविभोर होकर कोई भी अपने आपको न्योछावर कर देता है। बीच में किसी को आने की अनुमति वह नहीं देता ।

4.3.3 वात्सल्य

जैसे कि पिछले अध्याय में सूचित किया जा चुका है वात्सल्य दाम्पत्य प्रेम की परिणति है। वात्सल्य का आलंबन शिशु इसी प्रेम का मधुर फल है. पुत्र का जन्म प्रत्येक केलिए सुखदायी होता है। समाज में नारी जीवन के अनेक रूपों में मातृ-हृदय की एक अलग छवि है। इस मातृहृदय की अनुभूति केलिए समाज में एक सर्वोत्तर स्थान सुरक्षित है। स्त्री काव्य में

1. शकुंत माथुर - अभी और कुछ, पृ. 68

भी मातृ हृदय की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। वात्सल्य के दोनों पक्षों को इनके काव्य में अभिव्यक्ति मिली है।

4.3.3.1 संयोग

जब तक संतान अपने माता-पिता के समीप रहकर अपनी बाल स्वभावोचितक क्रीड़ाओं से उनको आनंदित करता है, तब तक का वात्सल्य संयोग वात्सल्य कहलाता है। पुत्र का जन्म किसे सुख नहीं देता। जो पुत्र अपने अंग-अंग से उत्पन्न हुआ जिसे हृदय का टुकड़ा ही कहा जाता है उसका संभव मानो अपना अपर जन्म है-

> "पाया मैंने बचपन फिर से
> बचपन बेटी बन आया
> उसकी मंजुल मूर्ति देखकर
> मुझमें नवजीवन आया।"[1]

कवयित्री की ये पंक्तियाँ उपर्युक्त तथ्य का समर्थन करती हैं। माँ को अपनी संतान में अपनी बाल्यावस्था की झाँकियाँ नज़र आती हैं। माँ केलिए उसकी संतान उसके जीवन की ज्योति है।

बाल्यावस्था मनोमुग्धकारी एवं जन हृदय रंजनकारी होती है। बालक के भीतर एक ऐसा स्वर्गीय मन रहता है कि नागरिक प्रवृत्ति उसके निकट पहुँचने का साहस नहीं करती है। बालक के वात्सल्य में जो हृदय लीन हो जाता है वह बालक की ही तरह निर्विकारात्मक अवस्था में पहुँच जाता है,

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 78

इस बात को दर्शाते हुए कवयित्री कहती हैं-

"मैं भी उसके साथ खेलती
खाती हूँ, तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं
मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ।"[1]

ये पंक्तियाँ एक ओर माँ-बच्चे के आत्मीय संबंध को दर्शा रही हैं तो दूसरी ओर यह संकेत दे रही हैं कि बालोचित चेष्टाओं को निरखने से एक अनुपम आनंद की प्राप्ति होती है। उसका सामीप्य सांसारिकता को भुला देता है।

बालदशा के बहुत से चित्रों का अंकन मिलता है। माँ का हृदय आशाओं से परिपूर्ण रहता है। वह चाहती है कि उसका बच्चा शीघ्र ही बड़ा होकर उसे माँ कहने लगे, आंगन में रुनझुन करता हुआ ठुमक-ठुमुक डोलने लगे। तोतली बोली बोले और अंचल पकड़कर कुछ झगड़ उठे। माता का वात्सल्य उनके कई अनुभावों द्वारा व्यक्त होता है -

"ये नन्हें-से ओठ और
यह लंबी-सी सिसकी देखो
यह छोटा-सा गला और
यह गहरी-सी हिचकी देखो।"[2]

यहाँ शिशु के छोटे से छोटे कार्य माता केलिए अत्यंत आनंददायक होते हैं। यह स्वाभाविक है । वात्सल्य के संदर्भ में स्त्री काव्य में बच्चों की

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 78
2. वही - पृ. 81

छवि और उससे उत्पन्न सख की राशि का अनुभव, उसके गभुवारे केश, आकर्षक नेत्र, मनोमुग्धकारी तोतली बोली, हाथ पैरों की रमणीय शोभा, धीरे-धीरे थपकियाँ देकर बच्चों को सुला देना आदि बातों का स्वाभाविक वर्णन मिलता है।

वात्सल्य में निष्काम प्रेम का भाव अधिक रहने के कारण सर्वाधिक शुद्ध भाव माना जाता है।

4.3.3.2 वियोग

संतान के दूर होने पर उसकी अनुपस्थिति के कारण माता-पिता वियोग के दुख में व्याकुल हो उठते हैं। यह अवस्था वात्सल्य का वियोग पक्ष है। पिता का हृदय माता के हृदय की अपेक्षा कठोर होता है, उसमें ममत्व होता है पर निरपेक्षता भी कम नहीं होती। पिता एक बार पुत्र की आकांक्षा की अवहेलना भी कर देगा, पर माँ का हृदय ऐसा करने में असमर्थ है।

जब बच्चे पर कोई विपत्ति आ जाती है तो माता का हृदय विचलित हो उठता है। वह पुत्र के कष्ट को सह नहीं पाती -

"भाई-बहिन भूल सकते हैं
पिता भले ही तुम्हें भुलावे
किन्तु रात-दिन की साथिन माँ
कैसे अपना मन समझावे।"[1]

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 84

इन पंक्तियों में मातृ-हृदय की सहज गंभीर वेदना मूर्तिमान होकर, बेबसी, लाचारी और तड़पन का दृश्य उपस्थित हो रही है। माँ कुछ भी त्यागने केलिए तैयार हो सकती है, परंतु अपने बच्चे को अपनी आँखों के सामने से ओझल होने देना नहीं चाहती। वात्सल्य में किसी भी प्रकार के स्वार्थ का गंध तक नहीं होता।

पुत्र कितना भी बड़ा क्यों न हो जाता हो, माता केलिए वह सदा बालक ही रहता है। वात्सल्य की प्रथम तथा पूर्व स्मृति के कारण माता उसे कभी भी अपने से वृद्ध नहीं मान सकती । बालक अपने कौमारावस्था में पहुँचते ही उत्तरदायित्व के कर्तव्य से बद्ध हो जाता है। अतः माता केलिए पुत्र-वियोग अनिवार्य हो जाता है, यह उसकेलिए असहनीय हो जाता है वह बिलखती है -

"मेरे भैया, मेरे बेटे, अब
माँ को यों छोड़ न जाना
बड़ा कठिन है बेटा खोकर
माँ को अपना मन समझाना।"[1]

माता के इन शब्दों में उनकी मनोगत व्यथा अभिव्यक्त होती है। कवयित्री ने यहाँ मातृ-हृदय की व्यथा को सफलतापूर्वक शब्दब्ध किया है।

वात्सल्य की सबसे अधिक उत्कृष्ट तथा मर्मस्पर्शी व्यंजना वियोग वात्सल्य के वर्णन में होती है। जिस प्रकार दिन के बाद रात होती है, उसी

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 84

प्रकार संयोग के बाद वियोग स्वाभाविक ही है। किसी की चिन्ता न करना और किसी की चिन्ता का विषय न बनना जीवन को नीरस बना देता है। उन कोमल तथा पावन चिन्ताओं की अभिव्यंजना साहित्य को भी सरस बना देती है। यदि वह अभिव्यक्ति किसी स्त्री हृदय की हो तो और भी मार्मिक बन जाता है साहित्य।

4.4 जीवनदृष्टि

आलोच्ययुगीन कवयित्रियों का जीवन के प्रति निश्चित दृष्टिकोण है। युगीन वातावरण और जीवन की विसंगतियों का प्रभाव इस जीवनदृष्टि के रूपायन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जीवन के प्रति इनकी दृष्टि आशाभरी है। राजनीतिक मोहभंग के माहौल में, ज़िन्दगी से दूर भागनेवाली जनता के प्रति इन कवयित्रियों ने एक साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह किया।

कवयित्री कीर्ति चौधरी की ये पंक्तियाँ-

"ज़िन्दगी को ऐसा न बनाओ
कि लगे बोझा ढोना।
दुनिया में बड़ी नियामते हैं मित्र
ज़रा उठो, हौसरा करो न!
थोड़ा हाथ-पैर चलाओ
इन्हीं पैरों की चाप से
निर्झर फूटेंगे,
इन्हीं हाथों से तो
उगेगा सोना।"[1]

1. कीर्ति चौधरी - तीसरा सप्तक, पृ. 56

-कर्म के महत्व की ओर इशारा कर रही है। वे कहना चाहती हैं कि इस दुनिया में ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनके हमें जीने की प्रेरणा मिल सकती है। ज़रूरत है, मन में एक चाह की कुछ करने की। जब कुछ करेंगे तब पायेंगे। अपने हाथों से सोना उगाएँगे और पैरों की चाप से निर्झर भी बहाएँगे। ज़िन्दगी को बोझ न मानकर उसका आस्वादन लेने में ही जीवन की सार्थकता है।

हमारी ज़िन्दगी आगे बढ़ती है सपनों के साथ। सपनों के बिना तो जीवन नहीं । सपने ही तो हमें जीने की प्रेरणा देते हैं। इस संदर्भ में सुमन राजे की ये पंक्तियाँ बहुत मायने रखती हैं कि -

"कभी-कभी सपने
सत्य से ज़्यादा अहमियत रखते हैं
इसलिए यह ज़रूरी है
कि हम सपने देखें
फिर उन्हें सच्चाई का आकार दें।"[1]

अर्थात् जब सपने देखते हैं तो उन्हें साकार करने का मन होता है। और जब यह इच्छा मन में जन्म लेती है तो जीने की अभिलाषा बन जाती है।

ज़िन्दगी का सफर हो या मंजिल की राह संघर्ष के बिना अधूरा है। आगे बढ़ना है तो संघर्ष करना ही है। इसीलिए कवयित्री कहती हैं -

---

1. सुमन राजे - यात्रादंश, पृ. 57

"जो भी हो संघर्षों की बात तो ठीक है,
बढ़नेवालों केलिए
यही तो एक लीक है।"[1]

यहाँ कीर्ति चौधरी कर्मरत जीवन की ओर इशारा कर रही हैं जो हमारे मंजिल तक पहुँचाएगा।

कर्म के इस रास्ते पर बहुत सी बाधाएँ होंगी । इन बाधाओं के सामने इनसान कभी-कभी दिग्भ्रमित हो जाता है। ऐसे में हमारे मूल्यों को सुरक्षित रखना आवाँ के सामने चुनौती है। जिसने इस चुनौती को स्वीकार किया, उसका अनुभव कवयित्री शकुंत माथुर यहाँ शब्दबद्ध कर रही हैं-

"दया का गड्ढ़ा
ईमानदारी
सचाई का गड्ढ़ा
इसमें जो बैठ जाता है
वह निकल नहीं सकता।"[2]

तात्पर्य यह कि जिसने दया, ईमानदारी, सच्चाई जैसे मूल्यों को अपनाया है, आत्मसात किया है वह इन मूल्यों के सामने नतमस्तक रहेगा। अर्थात् ये सारे गुण उसकी कमज़ोरी बनकर रह जाएँगे।

कवयित्री ने यहाँ 'गड्ढ़ा' शब्द का प्रयोग किया है, जहाँ गिरने पर बाहर निकलना मुश्किल है। यहाँ कवयित्री का संकेत तत्कालीन विसंगत समाज की ओर है जहाँ मूल्य, अवमूल्य बनकर रह गये हैं। लेकिन कवयित्री

---

1. कीर्ति चौधरी - कीर्ति चौधरी कविताएँ, पृ. 67
2. शकुंत माथुर - लहर नहीं टूटेगी, पृ. 49

सुभद्रा कुमारी चौहान हार माननेवालों में से नहीं है। उनकेलिए ये मूल्य उनकी संपत्ति है। वे कहती हैं कि -

"विश्वास, प्रेम, साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।"[1]

अर्थात् कोई भी दुराचार इन मूल्यों के आगे, प्रेम के आगे नहीं टिक पाएगा। कवयित्री को अपने प्रेम पर, अपने आप पर अड़िग विश्वास है। दूसरी ओर कवयित्री कीर्ति चौधरी जीवन की नस्सारता को दर्शा रही हैं -

"लगा शून्य अहम् यह स्पर्धा आडम्बर है
प्रणति नमन जीवन का एक मूल स्वर है।
धारा उद्दाम हर सागर की अनुवर्ती
मुकुलित हर पंखड़ी अर्पित होकर झरती
जीवन की गति ही बस केवल समर्पिता
एक टेक एक छाँह अर्पित हर गर्विता।"[2]

वे कहना चाहती हैं कि इस संसार में मनुष्य का अहं, स्पर्धा जैसे नकारात्मक गुण कोई महत्त्व नहीं रखता। हमारे जीवन का मूल स्वर ही विनम्रता है, समर्पण है। मुकुलित हर पंखुडी सदा समर्पण का भाव लिये नीचे ही गिरती है। अर्थात् मनुष्य को किसी बात का अहंकार नहीं करना चाहिए क्योंकि इस संसार में उसका अपना कुछ नहीं है, सब भगवान का दिया हुआ है। उपर्युक्त पंक्तियों में कवयित्री के जीवनानुभव की तीव्रता के दर्शन होते हैं।

---

1. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 48
2. कीर्ति चौधरी - कीर्ति चौधरी कविताएँ, पृ. 46

ज़िन्दगी का आस्वादन लेने केलिए हमें उसमें हमेशा नवीनता ढूँढनी चाहिए। नये सिरे से देखना चाहिए। इसे स्वीकार करते हुए कवयित्री स्नेहमयी चौधरी बोल रही हैं -

"हर बार नई दृष्टि से
देखना चाहती हूँ इस
चिर-परिचित जीवन को।"[1]

यह इसलिए कि नयी चीज़े हमेशा मनुष्य को अकर्षित करती है।

ज़िन्दगी के हर पल को सकारात्मक दृष्टि से देखेंगे तो ज़िन्दगी जीने लायक हो जाएगी। जीना आसान हो जाएगा। जीवन में सुख-दुख का सामंजस्य बना रहता है। यह एक वास्तविकता है। सुभद्रा जी की निम्नांकित पंक्तियाँ इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।-

"जन्म से मृत्यु, मृत्यु से जन्म
वहीं है विरह जहाँ संयोग
छिपी है दुख की छाया वहीं
जहाँ पुलकित सुख का उपभोग।"[2]

ज़िन्दगी यही है। हमारे पास सिर्फ एक ही ज़िन्दगी है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सफर में सुख-दुख, संयोग-वियोग साथ-साथ रहेंगे। हमें सिर्फ ज़िन्दगी का आस्वादन लेना है, समाज हित कुछ कर दिखाना है।

जैसे कवयित्री कीर्ति जी ने कहा है-

1. स्नेहमयी चौधरी - एकाकी दोनों, पृ. 16
2. सुभद्रा कुमारी चौहान - सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ, पृ. 58

"फूलों सम आओ हंस हम भी झरे
रंगों के बीच ही जिये और मरे
पुष्प अरे गये किन्तु खिल कर गये
फूल झर गये।"[1]

यहाँ कवयित्री फूलों को देखकर जीने की सलाह दे रही है। जियो तो फूलों की तरह, जो खिलकर ही झरते हैं। अर्थात् जियो तो कुछ कर दिखाकर जियो, मरो तो जीकर मरो। इसी में निहित है जीने कि सार्थकता।

जीवन की विसंगतियों से जूझकर, जीवन की सच्चाई को महसूस कर आलोच्य युगीन अन्य कवयित्रियों ने भी जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि अपनायी है।

4.5 भाषागत विशेषताएँ

छायावादोत्तर युग में रचना की दृष्टि से कवियों ने मौलिक परिचय दिया। आलोच्ययुगीन काव्यांदोलनों ने काव्यभाषा को छायावाद के रोमांटिक वातावरण से निकालकर सड़कों और पगडंडियों पर चलने को मज़बूर किया जिससे उसमें खुलापन आया। फलतः काव्यभाषा जन साधारण की भाषा बन गयी। यह विशेषता कवयित्रियों के काव्य के संदर्भ में भी सार्थक है। यहाँ प्रतीकों के द्वारा एक ओर सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्ति मिली है तो वहीं हमारी ऐन्द्रिक चेतना को नए यथार्थों से जोडते हुए बिम्ब योजना, चित्र योजना को भी प्रधानता दी मिली है। कवयित्रियों की कविताओं में भावधारा के अनुसार

1. कीर्ति चौधरी - तीसरा सप्तक, पृ. 69

काव्य-भाषा परिवर्तित होती रहती है। अर्थात् भाव और शब्दों के पारस्परिक विनिमय से उपजी भाषा यहाँ देखने को मिलती है।

जबसे ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ीबोली हिन्दी कविता केलिए ग्रहण की गई, तबसे उसके सामने संस्कृत का शब्द-कोष उपस्थिति था। अतः संस्कृत का प्रभाव सभी दिशाओं में प्रतिफलित हुआ। विवेच्ययुगीन स्त्री काव्य में भी 'मृत्यु', 'संयोग', 'प्रतिक्षण', 'कानन', 'प्राण', 'सुमन', 'अंतस्तल', 'परिश्रम', 'शिखा', 'भृंग', 'दृष्टि', 'अहं, नयन', 'क्रम उत्ताप', 'अवरोध धरित्री, कुवलय', 'वितृष्णा', 'अंकुल', 'क्षुब्ध', 'ऊर्म्मी', 'प्रखर', 'ज्वार', 'अरुणिमा', 'पावक, सागर', 'शुभ्र', 'ज्योति', 'मुक्ता जल', 'फेनिल', 'वर्तुल', आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलता है। इनके अतिरिक्त 'राह', 'फरिश्ता', 'सौगात', 'सैलाब', 'पुर्जा', 'नश्तर', 'खूबसूरत', 'दालान', 'फीता', 'दस्तक' आदि पेर्ष्यन शब्द और 'कलम', 'मर्ज़', 'इलाज', 'जुलूस', 'कब्रिस्तान', 'ताबूत', 'ताबीर', 'आदमकद दर्द', 'महफूज़', 'इंतज़ार', 'हिसाब' आदि कई अरबी शब्दों का भरमार भी इनकी कविताओं में देखने को मिलता है। अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का अधिकतर प्रयोग व्यंग्यात्मक कविताओं में किया गया। इनमें 'चीयर्स', 'कैलेण्डर', 'कंपनी', 'लान', 'बोर्ड', 'माडल', 'फोर्ड', 'बाथरूम', 'प्लेटफार्म', 'स्टेशन', 'मशीन', 'सिगरेट', 'गेट डाउन डें', 'सीट', 'रिज़र्व', 'ड्राइंग रूम', 'सोड़ा', 'फिनील', 'टावेल', 'लाण्ड्री', 'बेल्ट', 'सेक्रेटरी', 'डायरी', 'गेट', 'कार', 'लीडर', 'सिगनल', 'कार्निस', 'शेल्फ', 'मैनेजमेंट', 'कन्डोलेंस', 'रिटायर', 'फैक्टरी', 'सेल', 'सिनेमा', 'वाइन',

'टूरिस्ट', 'स्टील', 'फ्राक', 'सिल्क', 'जार्जेट', 'फोन', 'पाइप', 'लेटरबाक्स', 'रजिस्टर', 'होमवर्क', 'रेलिंग', 'ब्रीफकेस', 'पर्स', 'टिफिन', 'रि-साइकल', 'कॉपी', 'पासवर्ड', 'स्कूल', 'चार्ट', 'टॉप्स', 'पॉलिथीन', 'चॉक', 'गैट', 'पेन्डेन्ट', 'बल्ब', 'सी.डी', 'वॉशर', 'स्टियरिंग', 'ट्यूब', 'होर्डिंग', 'कोरस', 'स्लेट', 'फ्रेम', 'ट्रेजड़ी', 'फेल', 'फारमूला', 'पार्लमेंट' आदि स्थूल रूप में प्रकट हुए हैं।

वाक्य का आकर्षण और मार्मिकता मुहावरों पर निर्भर है। जीवित भाषा की एक पहचान है उसके प्रचलित मुहावरे। जब तक भाषा जन-संपर्क में रहती है उसमें लोक के अनुभव भी घुलते रहते हैं। भाषा के इस मुक्त प्रवाह को स्त्री काव्य में नूतन रंग मिल रहा है। 'पैर पसारना', 'बुझे हुए चूल्हे', 'आग लगाना', नींव की ईंट, 'यम के घर से हल्दी भेजना,' 'मन भर लाना', 'घुटने टिकाना', जी चुराना, 'घी मुहय्या कराना', 'सिर से ऊपर पानी निकल जाना' आदि मुहावरों का प्रयोग विवेच्ययुगीन काव्य में दर्शनीय है।

जीवनानुभवों से प्राप्त सारगर्भित ज्ञान को सूत्रबद्ध करके सूक्तियों के रूप में अभिव्यक्ति देकर कवयित्रियों ने अपनी कविताओं को प्रभावशाली बनाया है। 'सत्य पर चलना अकेले होते जाना है', 'चेतन की प्रकृति तो विकास है', 'हर रिश्ते की होती है उम्र, उम्र के रिश्ते नहीं होते', 'केन्द्र को बाँधा है दायरों ने, केन्द्र ने ही दायरे बनाये हैं', 'खूबसूरती सिर्फ संभावना में होती है', 'प्यार की पहचान कभी-कभी विस्फोट से होती है', 'साहस का

रहस्य है धैर्य', 'पथ बस अवरोधों में ही खोता है', 'जहाँ धर्म होता है, वहीं विजय होती है', 'मनुष्य अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं' आदि सुक्तियों के प्रयोग से कवयित्रियों ने भाषा को समृद्ध बनाने का प्रयास किया है।

काव्य को अधिक संप्रेषणीय और सौन्दर्य से युक्त बनाने केलिए यत्र-तत्र अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। प्रथम और चौथी पंक्ति एवं प्रथम और द्वितीय पंक्ति के अंत में 'मूर्ति-पूर्ति', 'झरना-मरना', 'भरना-बनना', 'धान-थान', 'मन वन', 'रुका-थका', 'गटर-शटर', 'शीत-रीत', 'रैन-बीन', 'प्रीत-मीत' आदि अनुप्रासयुक्त शब्दों के प्रयोग से काव्य में नाद-सौन्दर्य उभरकर आया है। उपमा-उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों के प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। 'घूम-घूमकर', 'थक-थककर' जैसे पुनरावृत्ति के प्रयोग भी शब्दों में द्रष्टव्य है। भावों में उत्कर्ष लाने में इनका स्थान सराहनीय है।

बिंब प्रतीकों के प्रयोग भी स्त्री काव्य में कम नहीं है। सामाजिक यथार्थों को, राजनीतिक यथार्थों को स्त्री शोषण आदि विभिन्न परिस्थितियों को कवयित्रियों ने बिम्बों के द्वारा दर्शाया है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -

"काले, चौड़े चिकने राजपथ पर
एक सफेद दीर्घकाय
रथ दौड़ रहा है
जिसमें एक दो नहीं
सैकडों हज़ारों -

घुटने के बल चलनेवाले
घोड़े के खुरवाले
आदमी-
आदमी जुते हैं-
उनके मुँह में
लगामें हैं, कँटीली विवशता की
होने की
ढ़ोने की
और आँखें किसी अदृश्य पट्टे से बंधी हैं।"

x x x

यह रथ चलता ही जाता है
उन
घोड़ों के खुरवाले मानवों के जिस्म से
बहते हुए खून को
हाँफते हुए पसीने को
सर्पों के लहरदार कोड़े
जीभ निकालकर चाट लेते हैं।"[1]

यहाँ व्यवस्था के जनविरोधी रूप को दर्शानेवाला यह दृश्य बिम्ब राजनीतिक पाखंड की ओर संकेत करता है। आम जनता की दर्दनाक जीवन की मार्मिक झांकी हमें यहाँ देखने को मिलती है। अन्य कवयित्रियों ने भी अपने भावों की अभिव्यक्ति केलिए बिंब योजनाओं को अपनाया है। बिम्बों के समान प्रतीक विधान को भी कवयित्रियों ने अपनाया है। एक ओर आँसू केलिए 'मुक्ता जल' तो दूसरी ओर स्त्री की उर्वरता को सूचित करने केलिए 'कैक्टस' को प्रतीक के रूप में चुना गया है। ऐसे अनेक बिंब-प्रतीक इनकी कविताओं में बिखरे पड़े हैं।

---

1. सुमन राजे - उगे हुए हाथों के जंगल, पृ. 23

शैली की दृष्टि से विवेच्ययुगीन कवयित्रियों की काव्यकला में एक नया अंदाज़ देखने को मिलता है। कुछ कवयित्रियों ने काव्य भाषा में पुल्लिंगक्रिया का प्रयोग किया है। विशेषकर कीर्ति चौधरी जी ने। उनकी कविताओं में 'बैठा हूँ', 'घूमा हूँ', 'प्यासा हूँ', 'आया हूँ', पाता हूँ', जैसे बहुत से उदाहरण व्याप्त हैं। हो सकता है यह स्त्री चेतना का एक अलग पहलू हो या फिर यह भी हो सकता है कि उन्होंने प्रयोगवादी काव्यचेतना से प्रभावित होकर एक नया प्रयोग अपनाया हो। इनके अतिरिक्त इंदु जैन और शकुंत माथुर में भी कहीं कहीं यह प्रयोग देखने को मिलते हैं। ऐसे प्रयोग से भाषा में किसी प्रकार की बाधाओं की गुंजाइश नहीं है। पुल्लिंग क्रिया को अपनाकर इन्होंने स्त्री भाषा को एक नया मोड़ दिया है। स्त्री काव्य के शिल्प-विधान में कहीं संवाद शैली को अपनाया है तो कहीं चिट्ठी की शैली और कहीं प्रश्नवाचक शैली। कविता के बीच-बीच में कोष्ठक में अभिव्यक्ति देते हुए नाटकीय शैली का आभास भी मिलता है। कहीं कहीं शीर्षक के अभाव में संख्याओं द्वारा कविता को अलग अलग हिस्से में विभाजित किया हुआ है। भाषा में सपाट बयानी पर बल देते हुए कवयित्रियों ने भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति केलिए अक्षरों की सजावट पर भी ध्यान दिया है। वाक्यों के अंत में पूर्ण विराम चिह्न के बदले अंग्रेज़ी भाषा में प्रयुक्त '.' (यात्रादंश) पूर्ण विराम को अपनाकर हिन्दी व्याकरण में भी एक नया प्रश्न चिह्न उपस्थिति किया है।

विवेच्ययुगीन स्त्री काव्य-भाषा में लोक-कथाओं का ज़िक्र, पुराने उपमानों को चुनकर उनका नया प्रयोग, उत्तम पुरुष सर्वनाम 'मैं' का

अधिकतर प्रयोग, इतिवृत्तात्मकता, स्त्री के संदर्भ में स्त्री के वातावरण में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग जो स्त्री भाषा गढ़ने में अपना योगदान देते हैं - आदि कई विशेषताएँ देखने को मिलती हैं।

निष्कर्ष

आलोच्य युग के पूर्व से ही देश एवं समाज की परिस्थितियाँ धीरे-धीरे विडम्बनापूर्ण होती जा रही थी तथा उन्हीं परिस्थितियों के बीच देश में नयी चेतना भी जन्म ले रही थी। छायावाद युगीन कवयित्रियों ने जिस समाज-सापेक्ष एवं यथार्थवादी काव्य-प्रवृत्ति को अपनाया, उसे छायावादोत्तर काव्यधारा की कवयित्रियों ने सशक्त रूप प्रदान करने की कोशिश की। आलोच्य युग की राष्ट्रीय काव्यधारा हो या प्रयोगवाद एवं नई कविता की काव्यधारा सभी कवयित्रियों ने युग समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप, युगीन सामाजिक संदर्भों को मद्देनज़र रखते हुए अपने काव्य-सृजन के दायित्वों का निर्वाह किया है।

आलोच्य युगीन कविता का एक हिस्सा स्वतंत्रता पूर्व की परिस्थितियों से गुज़र रहा था, वहाँ कवयित्रियों के देशप्रेम की भावना अपने संपूर्ण रूप में उभरकर आई है। दूसरा हिस्सा आज़ादी के बाद की परिस्थितियों से गुज़रा। स्वराज्य प्राप्ति के बाद देश की बागडोर राष्ट्रभक्त नेताओं के हाथ में आयी, किन्तु राजनेताओं की स्वार्थ लिप्सा के चलते भारतीय जनता के सपने बिखरते चले गए। इस संदर्भ में कवयित्रियों ने देश की जनता में व्यवस्था के खिलाफ खड़े होने केलिए नयी चेतना एवं प्रेरणा पैदा की है।

आलोच्य युग की कविता में एक ओर वैयक्तिकता की प्रवृत्ति दिखाई देती है तो दूसरी ओर सामाजिकता की। कवयित्रियों ने अपनी व्यक्तिचेतना को समष्टि चेतना के साथ जोड़ने की आकांक्षा रखी है। कवयित्रियों ने व्यक्ति, प्रेम और नारी के अतिरिक्त समाज के अन्य अंगों-उपांगों को देखा है, समझा है उसकी त्रुटियों की ओर अंगुलि-निर्देश किया है। उसके घटकों की यथार्थ स्थिति का चित्रांकन किया है और कहीं अपनी खीझ और आक्रोश तथा कहीं स्नेह-ममत्व व्यक्त किया है। इस व्यापक विषय चयन के पीछे का कारण कवयित्रियों की व्यापक दृष्टि और युग की माँग रही है। प्राचीन लोक-नायकों एवं महापुरुषों को, उनके चरित्रों को उसी रूप में ग्रहण न कर उन्हें युग संदर्भों के बीच रखकर नये रूपों में प्रस्तुत किया है। इसप्रकार चरित्रगत स्वरूप में भी क्रांतिकारी परिवर्तन लक्षित होता है। मिथक, बिंब-प्रतीकों के नये प्रयोग से उन्होंने अपने काव्य को संप्रेषणीय बनाया है। कुल मिलाकर बोलचाल तथा अभिव्यक्ति की लोक-ग्राह्यता की दृष्टि से आलोच्य युगीन कवयित्रियों की काव्यभाषा उल्लेखनीय है।

❖ ❖ ❖

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन स्त्री काव्यधारा

पूर्व छायावाद युग से शुरु होकर आधुनिक हिन्दी कविता की विकास यात्रा के चौथे पड़ाव तक पहुँचकर हिन्दी स्त्री काव्यधारा अपने आप में एक व्यापक परिवेश लेकर उपस्थित होती है। वर्तमान समय में नारी विमर्श का एक दौर सा चल रहा है, किन्तु ये विमर्श कहाँ तक अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे हैं, यह अभी तक तय नहीं हो पाया है। लेकिन कहीं न कहीं ये आंदोलन, ये विमर्श नारी हृत्तंत्रियों को अवश्य ही संकृत कर रहे हैं, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है समकालीन स्त्री कविता। इनके लेखन में सदियों से परतंत्रता के बंधन में जकड़ी स्त्री की छटपटाहट के भाव बड़ी तीव्रता से व्यक्त हुए हैं और साथ ही साथ स्त्रियों के साथ हो रहे पक्षपात व अन्याय के प्रति गहरा रोष भी। स्वतंत्रता के बाद नवउपनिवेशवाद के माहौल में समकालीन कवयित्रियाँ परिवेश एवं परिस्थिति को पहचानकर कविताएँ लिख रही हैं। समकालीन संदर्भ में कवयित्रियों की एक लंबी कतार बन पड़ी है। विषय सीमा भी काफी विस्तृत है। अतः नीलेश रघुवंशी, कात्यायनी, अनामिका, गगनगिल, प्रभा खेतान, ममता कालिया सविता सिंह, निर्मला गर्ग, सुशीला टाकभौरे, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, ज्योतिचावला, अर्चना वर्मा, अनीता वर्मा, चंपा वैद, सुनीता जैन, सरिता बडाईक, रजनी तिलक, रजतराजी मीनू आदि समकालीन कवयित्रियों की कविताओं के आधार पर यहाँ समकालीन स्त्री कविता का संक्षिप्त विश्लेषण विभिन्न शीर्षकों-उपशीर्षकों में किया जा रहा है।

5.1 स्त्री अस्मिता

समकालीन कविता में स्त्री की सर्वथा नई भूमिकाएँ और साहित्य में स्त्री

रचनाकारों का सार्थक हस्तक्षेप दोनों ही उल्लेखनीय हैं। समकालीन साहित्य में स्त्री का केन्द्र में आना समय की ज़रूरत है, उसी तरह कविता के क्षेत्र में स्त्रियों का दखल देना भी। जहाँ भी स्त्री विमर्श चलता है, सहज ही वहाँ स्त्री-अस्मिता का सवाल सामने खड़ा हो जाता है। पुरुष के समान स्त्री का समान अधिकार, स्त्री के प्रति विवेकमूलक दृष्टिकोण तथा स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व का प्रतिरोध; यही है स्त्री अस्मिता। इस स्थिति को पहचानते हुए स्त्री कविता स्त्री की आत्मा को स्वीकृति दिलाने केलिए आवाज़ उठाती है।

5.1.1 स्त्री शोषण के विविध आयाम

हमने यह देखा है कि औरत का सारा प्रशिक्षण उसको विद्रोह और जोखिम से दूर रखता है। समाज और माता-पिता द्वारा भी स्त्री को शुरु से आत्मदान ही की शिक्षा दी गई है। स्त्री की नियति यही है रोये भी और अपना रोना छिपाये भी। समकालीन संदर्भ में कवयित्रियाँ स्त्री की यथार्थ स्थिति को उद्घाटित करती हैं । ममता कालिया की ये पंक्तियाँ-

"वह रसोई में घुसी
उसने अपनी उँगलियों को नींबू-निचोड़नी बनाया
और कलाइयों को सिलबट्टा।
वह पिस गई पुदीने में
छन गई आटे में
वह कोना-कोना छँट गई।
वह कमरा-कमरा बँट गयी।

उसने अपनी सारी प्रतिभा आलू परवल में झोंक दी
और सारी रचनात्मकता रायते में घोल दी
उसने स्वाद और सुगंध का संवत्सर रच दिया
लेकिन पुरुष ने कभी नहीं कहा उससे 'शुक्रिया"[1]

-स्त्री शोषण का पारिवारिक संदर्भ हमारे सामने रख रही हैं जो यह उजागर करती हैं कि घरेलू स्त्री की पीड़ा की परिधि छोटी होती है साथ ही गहरी भी। स्त्री जितने आत्मसर्पण के साथ परिवार केलिए खुद को कुर्बान करती रही उसकी समस्याएँ भी उतनी ही संकीर्ण होती गयी। पूँजीवादी संस्कृति हो या सामंतवादी संस्कृति, पुरुष की दृष्टि में स्त्री जहाँ उपभोग की वस्तु मात्र बनकर रह जाती है, वहाँ उसकी नियति और क्या हो सकती है? अधिकांश पुरुषों की नज़र में औरत का अपना अस्तित्व अपने लिए नहीं होता। वह सिर्फ पुरुष के जगत् में विभिन्न भूमिकाओं को निभाती है।

समाज में स्त्रीत्व की मूल अवधारणा नकारात्मक है। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दायरों में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण और सापेक्ष जीवन के रूप में ही देखा गया है। यहाँ के धर्मशास्त्रों ने स्त्री को यही आदेश दिया है। धर्म के शिकंजे में पिसती नारी को चित्रित कर रही हैं कवयित्री इन पंक्तियों में -

"सोमवार को सुहाग केलिए
निरन्न रहती है खांटी घरेलू औरत
मंगल को आस पड़ोस सभी रहते हैं व्रत पर
यह भी देखा देखी करने लगी है वह

---

1. ममता कालिया, खाँटी घरेलू औरत, पृ. 61

बुध को वह खाती है
बीफे बीमार पड़ जाती है।
शुक्र को खाने का सवाल नहीं उठता
संतोषी माता का दिया हुआ है सब।"[1]

पीढ़ी-दर पीढ़ी महिलाएँ इन्हीं पारंपरिक भूमिका में बंधी रही हैं। यहाँ विरोध इस बात केलिए है कि धर्म की आड़ में पुरुषों के हित का मामला छिपा हुआ है। आम तौर पर महिलाओं की सहभागिता से ही उनका साम्राज्य टिका हुआ है। यह निष्ठा महिलाओं के मन में इतनी गहराई से जड़े जमा चुकी हैं कि उनको भय सताता है कि जब वे इन धर्म की बेड़ियों को खोल कर जीना शुरु करेंगी तो नारी जाति पर भयानक आपत्ति आ जाएगी। यह स्त्री के शोषण का धार्मिक संदर्भ है। धर्म शास्त्रों के इस रूप के प्रति कवयित्रियाँ विद्रोह प्रकट कर रही हैं।

नारी को अपने आर्थिक सांस्कृतिक और मानसिक पिछड़ेपन से स्वतंत्रता पानी है। धर्म औरतों की आज़ादी व अधिकारों के खिलाफ है। इतने समय से चली आ रही पुरुष तांत्रिक समाज व्यवस्था के कारण जिस तरीके का भयानक नारी-विद्वेष समाज के रंध्र-रंध्र में फैल चुका है उसे दूर करने केलिए सद्बुद्धि वाले लोगों को मिलकर काम करना होगा। अगर स्त्री को सुरक्षा का एकाधहिस्सा उपलब्ध भी कराया जाता है तो साथ में एहसान करने का भाव भी लाद दिया जाता है। यही वजह है कि कहीं उसे पारिवारिक सुरक्षा मिलती है तो आर्थिक आज़ादी से वंचित रखा जाता है। और अगर

1. ममता कालिया, खाँटी घरेलू औरत, पृ. 23

वह आर्थिक आज़ादी प्राप्त करने केलिए घर से बाहर कदम रखती है तो समाज उसे सुरक्षा देने से पीछे हट जाता है। यह स्त्री शोषण का सामाजिक संदर्भ है जिसे महसूस करते हुए कवयित्री नीलेश लिखती हैं -

"निकलना चाहती हूँ, आधी रात को बेखटके
रात बारह को शो देखकर
रेलवे स्टेशन पर घूमूँ जेब में हाथ डाले
कभी प्रतीक्षलय में जाऊँ तो कभी दूर कोने की
खाली बेंच को भर दूँ अपनी बेखटकी इच्छाओं से
इतनी रात गए सूने प्लेटफार्म पर समझ न ले कोई 'ऐसी-वैसी'
मैं 'ऐसी-वैसी' न समझी जाऊँ और
नुक्कड़ की इकलौती गुमटी पर चाय पीते
इत्मीनान से खींच सकूँ आधी रात का चित्र
x x x
यह देह भी क्या तुच्छ चीज़ है
बिगाड़कर रख दिए जिसने नागरिक होने के सारे अर्थ।"[1]

यहाँ मानसिक रूप से स्त्री चाहे जितनी मज़बूत हो, उसकी शारीरिक संरचना के आधार पर भेदभाव कर, यह साबित करने की साजिश निरंतर जारी है कि तुम कमज़ोर हो। उस पर अत्याचार कर चेतावनी दी जाती है कि शक्तिशाली बनने की कोशिश भी मत करना।

अपना कोई आर्थिक आधार न होने के कारण स्त्री के पास अधीनता की स्वीकृति के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था। स्त्री के सामाजिक पतन का मूल कारण आर्थिक ही है। एक ओर वर्तमान नारी आर्थिक स्वावलंबन

---

1. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 118

के साथ आगे बढ़ रही है तो दूसरी ओर आर्थिक पराधीनता के कारण देह व्यापार का रास्ता अपनानेवाली नारी का चित्र भी समकालीन कविता में द्रष्टव्य है। वेश्या रूप में नारी, जो पहले कला की देवी हुआ करती थी, वही नारी आज सिर्फ अर्थ से संबंध रखनेवाली सेक्स वर्कर के रूप में चित्रित की गई है। मज़बूरी में लड़की देह-व्यापार के ऐसे नर्क में प्रवेश कर जाती है जहाँ पर कोई मानवीय भावना का नहीं करती। ज्योति चावला की ये पंक्तियाँ-

"ये तो घिरती रातों को निकलती हैं सड़कों पर
और शामिल हो जाती हैं पुरुषों की दुनिया में
घिरती रातों में बनती पुरुषों की दुनिया में आनेवाली
ये स्त्रियाँ ऐसा नहीं है कि हो जाती हैं उनके बराबर
बल्कि उनकी दुनिया में शामिल होकर भी
वे होती हैं केवल स्त्री ही जिसके साथ
जुड़ी है एक देह, नरम मांस
भय का एक कोना
और पूरी एक संस्कृति।"[1]

-स्त्री शोषण के मूल में स्थित देह की वास्तविकता से हमारा सीधा सरोकार कराती हैं। नारी मात्र देह बनकर रह गई है। देह व्यापार का धंधा बहुत पुराना है, लेकिन अब उसका यह रूप नया और तड़क-भड़कवाला है। वैश्वीकरण के दौर में स्त्री बाज़ार में खड़ी है, वस्तु की तरह, अपनी देह पर कीमत का 'टैग' चिपकाए।

दूसरी ओर, विश्वभर में उन्मुक्त व्यापार आरंभ तो हो गया पर यह

1. ज्योतिचावला, माँ का जवान चेहरा, पृ. 71

उमन्मुक्त व्यापार किसे लाभ प्रदान कर रहा है - विचार करना होगा। कॉस्मेटिक्स के उत्पादन तथा इससे संबंधित विज्ञापन सबसे अधिक दिखाई देते हैं। इनकेलिए अनुबंध करती विश्व सुन्दरियाँ देह की दुनिया में ही निवास करने का संदेश देती फिरती है। इसके पीछे छिपा षड्यंत्र वे जानती हैं या फिर जानना नहीं चाहती या पैसों की दुनिया के खेल में सहभागी रहना चाहती है। फटी एड़ियाँ, फटे होंठ, सूखी-त्वचा केवल स्त्रियों की ही समस्याएँ हैं ? अधिकतर विज्ञापन केवल स्त्रियों को ही संबोधित होते हैं। अतः अस्वीकार भी स्त्री को ही करना है। देह की राजनीति को हमारे सामने दर्ज कर रही हैं कवयित्री-

"लड़की तेरे बाल मुलायम हैं
और मुलायम बना
लड़की तेरी त्वचा कोमल है
और कोमल बना
लड़की तू सुन्दर है
और सुन्दर दिख
    नित नई चिज़ें बनाई जा रही है
    तेरे लिए ही तो
    यह दुनिया सजाई जा रही है
    तेरे लिए ही तो
आसमान धरती पर उतारा जा रहा है
तेरे लिए ही तो।"[1]

स्त्री शोषण के इस राजनीतिक संदर्भ में, स्त्री स्वयं इस तथ्य से अनजान है कि उसका इस्तेमाल किया जा रहा है। उपभोग और उपभोक्ता

---

1. निर्मला गर्ग, कबाड़ी का तराजू, पृ. 79

संस्कृति की पैरोकारी ने औरत के सौन्दर्य को इसका केन्द्र बना दिया। भूमंडलीकरण ने स्त्री के सौन्दर्य की एक अधीनस्थ छवि बनायी तथा इसके संस्थागत इस्तेमाल को एक वैश्विक आयाम दे दिया।

स्त्री अपने विभिन्न स्वरूपों में अलग-अलग संदर्भों में शोषण का शिकार बनी हुई है। कहीं एक बेटी, बहन, पत्नी, माँ आदि रूपों में परिवार के भीतर तो कहीं समाज में कार्यकर्ता के रूप में और कहीं राजनीति में साहित्यकार के रूप में। शोषण का आयाम विस्तृत है। समकालीन कवयित्रियों की कविताओं में ये आयाम बखूबी उभारे गए हैं। ममता कालिया का 'खांटी घरेलू औरत', अनीता वर्मा का 'रोशनी के रास्ते पर', कात्यायनी के 'सात भाइयों के बीच चंपा', 'इस पौरुषपूर्ण समय में', अनामिका का 'दूबधान', ज्योति चावला का 'माँ का जवान चेहरा', सविता सिंह का 'अपने जैसा जीवन', निर्मला पुतुल का 'अपने घर की तलाश में' आदि संकलनों में शोषण के विभिन्न आयाम दृष्टव्य है। कहीं घरेलू स्त्री के शोषण को जगह मिली है तो कहीं कवयित्रियों के। कामकाजी स्त्री का शोषण, धार्मिक शोषण, यौन शोषण, प्रेम में धोखा, शादी शुदा स्त्री का सेक्स से वंचित रहना, बालिकाओं का यौन शोषण देह व्यापार के संदर्भ में, वेश्या जीवन की त्रासदी, आदिवासी स्त्री जीवन की त्रासदी आदि ऐसे कई संदर्भ कवयित्रियों की कविताओं में दर्ज हैं, जो शिक्षित स्त्री के शोषण के प्रति सचेत होने के परिणाम हैं।

5.1.2 पुरुष वर्चस्व का विरोध

समकालीन स्त्री कविता सदियों से पुरुष सत्ता द्वारा बनाए गये स्त्रीत्व के मानदंड को ठुकराती है। पुरुष की महानता का मिथ अब उसे स्वीकार नहीं है। आज उसके स्वरों में पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की कामना है। जहाँ स्त्री मुक्ति की चाह नज़र आती है वहाँ स्त्री भाषा में प्रतिरोध के स्वर बुलंद है। पितृ सत्तात्मक नियमों को ढोते-ढोते वह इस कदर थक गयी कि उस साँचे से बाहर निकलना भी उसकेलिए श्रमकर प्रतीत होता है। वह कह उठती है-

"मुक्त करो, मुक्त करो मुझे
इस बंदिरा से
अन्यथा मैं मर जाऊँगी।
जग को चकित कर जाऊँगी।"[1]

कात्यायनी की इन पंक्तियों में सम्मान से जीने केलिए तरस रही एक स्त्री की कराह सुनायी देती है। आज हम नयी सदी में पहुँच चुके हैं। महज कुछ स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ है। आज भी कुछ मजबूर औरतें अपने अस्तित्व को ढूँढ रही हैं। पितृसत्ता के अन्तर्विरोधों को पहचानकर स्त्रियों की स्थिति को सामने रखकर उस प्रभुत्व, वर्चस्व को चुनौती देती इनकी कविताएँ भारतीय समाज के उस आधे हिस्से की कहानी है जो सदियों से घर की चारदीवारी में कैद हैं।

बरसों से एक स्त्री को माँ, बेटी, बहन, पत्नी, गेलफ्रेंड, कॉलगेल और

---

1. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 77

वेश्या आदि अनेक रूपों में शोषण एवं गुलामी की पीड़ा और दमन झेलना पड़ता है। लेकिन आज वह अपने खिलाफ होनेवाले शोषण को पहचान रही है, उसका प्रतिरोध करने लगी है। वह एक नया रूप धारण करने लगी है जहाँ वह पहचानती है कि स्त्री सबसे पहले स्त्री होने के कारण शोषित है। रजनी तिलक की ये पंक्तियाँ -

“हर स्त्री मर्द केलिए
एक योनी....
एक जोड़ी स्तन।..
लरजते होंठ हैं।’[1]

-एक ओर यह साबित कर रही हैं कि इससे ज़्यादा स्त्री को कोई मानता नहीं है तो दूसरी ओर अब तक की स्त्री भाषा के रुख को बदलकर एक नया भाषिक अंदाज़ हमारे सामने प्रकट हो रहा है। यह एक दलित स्त्री का प्रतिरोध है जिसका लक्ष्य व्यवस्था के प्रति असहमति प्रकट करना है।

औरत केलिए पुरुष के हृदय में मिलती इज्जत है, उसे उनके व्यवहार, बातचीत से देख सकते हैं। पुरुष उसे डाँटना, फटकारना अपना अधिकार समझता है। किन्तु यही पुरुष जब नकाब पहनकर समाज में उतरता है तो यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि वह उसे बराबर का दर्जा देना चाहता है, अपनी तरह समझना चाहता है। लेकिन ऐसा वह कर कैसे पाएगा, उसके अंदर की दिखावे की ढेर सारी दया व्यर्थ जो हो जाएगी। इसीलिए वह अपनी पत्नी को अपनी संपत्ति, अपनी औरत कहता फिरता है।

1. रजनी तिलक - हवा सी बेचैन युवतियाँ, पृ. 81

आज की शिक्षित नारी यह हजम नहीं कर पाती। वह क्रोध से भर उठती है और कहती है -

"मैं किसी की औरत नहीं हूँ
मैं अपनी औरत हूँ
अपना खाती हूँ
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।"[1]

यहाँ की वर्तमान नारी पुरुष भाषा की कपटता से, उसकी बनायी मायावी दुनिया से भली भाँति वाकिफ है। प्रस्तुत पंक्तियों में अपनी भाषा में बोलनेवाली स्त्री का चित्र प्रकट होता है।

स्त्री की तमाम शक्ति घर गृहस्थी में ही खत्म हो जाती है। ज्ञान, विवेक, प्रतिभा की धनी होते हुए भी वह अपनी प्रतिभा प्रदर्शित नहीं कर पाती। उसकी प्रतिभा घर की चारदीवारी में कैद होकर रह गयी थी। जब लिखना शुरु किया तो पुरुष द्वारा उसके बारे में कहे गये अपशब्दों से वह आहत होती है। लेखन को नज़रअंदाज़ कर दिया गया। लेखन को अवरुद्ध करने की कोशिश करनेवालों के प्रति आज की शिक्षित नारी का रवैया शांत होने का नहीं था। वह प्रतिरोध का स्वर बुलंद करके कह उठी -

"पढ़ा गया हमको
जैसे पढ़ा जाता है कागज़
बच्चों की फटी कॉपियों का
चनाजोरगरम के लिफाफे बनाने के पहले

1. सविता सिंह - अपने जैसा जीवन, पृ. 40

x x x

हम भी इंसान हैं
हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बीए के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन

x x x

सुनो हमें अनहद की तरह
और समझो जैसे समझी जाती है
नई-नई सीखी हुई भाषा।"[1]

इन पंक्तियों में एक कवयित्री का आर्त्तनाद है जो समाज में अपने को एक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करने की जद्दोहद में है। इन पंक्तियों में कवयित्री रोज़मर्रे की ज़िन्दगी के कुछ बिंबों को जोड़कर अपने प्रतिरोध को गंभीरता से प्रस्तुत करने में सक्षम निकली है।

वैसे कहीं बताया गया है कि मुक्ति की चाहत को सिर्फ चाहत ही बने रहने देने से कोई फायद नहीं रहेगा, बल्कि उसे एक अदम्य लालसा, एक दुर्निवार ज़रूरत बनाना होगा। तब जाकर स्त्री अपने मुकाम को छू पाएगी। उसके पास अनेक सवाल हैं जिसकी गठरी थामे वह संघर्षरत है। सदियों का संघर्ष और मुक्ति की अदम्य लालसा के रहते वह चुप तो नहीं बैठ सकती। कवयित्री निर्मला पुतुल की इन पंक्तियों में यह साफ झलकता है-

"इसलिए चुप नहीं रहूँगी अब
उगलूँगी तुम्हारे विरुद्ध आग
तुम मना करोगे जितना
उतनी ही ज़ोर से चीखूँगी मैं।"[2]

---

1. अनामिका - खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 14
2. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 100

कड़वाहट भरी ज़िन्दगी जीने को विवश स्त्री कभी न कभी खुद को बदलने की ज़रूर सोचेगी। इन पंक्तियों में वह ऐलान कर रही है। यदि समाज इनके प्रति उदासीन रहता है तो इसकी सीधा मतलब है आधी आबादी की शक्ति को खतम करना, उसके भीतर की छिपी संभावनाओं को पनपने न देना। तमाम स्त्री लेखन स्त्री के मनुष्य होने का ऐलान करता है-

"मैं, मैं हूँ
मुझे यही
आज
कल
और हर युग में
कहना है।"[1]

वैसे तो हाशिए पर रहनेवालों की भाषा हमेशा ही अधिक जीवंत और रंग-रंगीली होती है। उपर्युक्त पंक्तियाँ इसका उदाहरण है।

उपर्युक्त पंक्तियों के अतिरिक्त ममता कालिया की 'खांटी घरेलू औरत' की कविताएँ, अनीता वर्मा के 'रोशनी के रास्ते पर', नीलेश रघुवंशी के 'कवि ने कहा', कात्यायनी के 'सात भाइयों के बीच चंपा', 'इस पौरुषपूर्ण समय में' जादू नहीं कविता,' निर्मला गर्ग के 'कबाड़ी का तराजू', रजनी तिलक के 'हवा सी बेचैन युवतियाँ सविता सिंह के 'अपने जैसा जीवन, अनामिका के 'खुरदुरी हथेलियाँ', 'अनुष्टुप', अर्चना वर्मा के 'कुछ दूर-तक' रमणिका गुप्ता के 'प्रतिनिधि कविताएँ' आदि काव्य संकलनों में संग्रहीत

---

1. सुनीता जैन - इस अकेले तार पर, पृ. 43

बहुत सी ऐसी कविताएँ हैं जो स्त्री विमर्श को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान कर रही हैं।

5.1.3 स्वत्त्वबोध का अन्वेषण

उपर्युक्त विवेचन से यह बात साफ झलक रही है कि समकालीन कवयित्रियाँ अपनी कविताओं में जहाँ स्त्री संदर्भ को जोड रही हैं वहाँ पुरुष वर्चस्व के खिलाफ एक प्रतिरोधी स्वर सुनायी देता है। प्रतिरोध का यह संदर्भ स्त्री के स्वत्व से जुड़ता है जहाँ वह पुरुष के समान सम्मान और अधिकार की तथा अपनी जीविका और जीवन पद्धति के संबंध में स्वाधीन रूप से निर्णय के अधिकार की माँग करती है। इनसे पाठक खास तौर से स्त्री को उन अंतर्विरोधों को पहचानने की दृष्टि प्राप्त होती है जिनकी वजह से वह उपक्षित, असुरक्षित तथा अस्तित्वहीन जीवन जीने को मजबूर है।

स्त्री शोषण का पहला संदर्भ तो परिवार ही है। वहाँ उसे यह बोध प्रारंभ से ही दिया जाता है कि वह पहले देह और बाद में मनुष्य है। समकालीन जागृत नारी अपने शरीर पर अपना हक जमाती है। वह पहचानती है कि जैसे शरीर उसका अपना है उसपर बोलने का हक भी सबसे पहले उसीका है। प्रथम स्राव और प्रसव पीड़ा स्त्री स्वत्व से जुडे दो अनोखे प्रसंग हैं जिसे हमेशा छिपाये रखने की बात समझकर टाल दी जाती थी। स्त्री का रजस्वला होना एक प्रकृतिदत्त प्रक्रिया है। किन्तु धार्मिक प्रतिबंधों के घेरे में खड़ा करके, एक निषिद्ध वस्तु के रूप में प्रस्तुत करके उसका अपमान किया गया। अस्पृश्य कहकर घर के किसी कोने में डाल दिया जाता था।

सच तो यह है कि प्रथम स्राव स्त्री की पहचान है जिसे लज्जा की बात कहकर, रहस्य समझकर तुच्छ माना गाया। इस मानसिकता के प्रतिक्रिया स्वरूप समकालीन कवयित्री अनामिका शायद पहली बार इस विषय पर कहते हुए लिखती हैं -

"कुंडलिनी-सी जगी बैठी/ पलंग पर।
उसकी सफेद फ्राक और जाँघिए पर
किसी परी माँ ने काढ़ दिये हैं
कत्थई गुलाब रात भर में ?
और कहानी के वे सात बौने
क्यों गुत्थमगुत्थी
मचा रहे हैं
उसके पेट में।"[1]

इस विषय पर लिखते हुए एक ओर कवयित्री स्त्री लेखन को शक्ति प्रदान कर रही हैं तो दूसरी ओर वर्जित विषय को केन्द्र में लाने की कोशिश कर रही हैं। इसके अतिरिक्त गर्भावस्था और प्रसव पीड़ा को भी स्त्री लेखन में जगह मिली है। प्रसवपीड़ा जी स्त्री केलिए हमेशा से आनंददायक माना गया है। या फिर यह कहना चाहिए कि तथाकथित पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने अपनी यह मान्यता स्त्री जीवन पर थोंप दी। समाज ने स्त्री को यही प्रशिक्षण दिया कि स्वयं स्त्री अब तक इसीकी रट लिए बैठी थी। यह सच है अपने शरीर से अपने अंश पाकर एक नन्ही जान को पाकर कोई भी स्त्री खुशी का एहसास कर सकती है। किन्तु प्रसवपीड़ा किसी स्त्री केलिए आनंददायक कैसे हो सकता है? समकालीन कवयित्री इस तथ्य को सामने

1. अनामिका - अनुष्टुप, पृ. 28

लाकर, स्त्री जीवन की सच्चाई से सबको रूबरू कराकर लिख रही हैं-

"यह तो नरक है, नरक! जन्म देना, एक यातना से गुज़रना है

x x x

प्रसव पीड़ा को कोई और नाम देना चाहिए।"[1]

यहाँ कवयित्री नीलेश रघुवंशी बता रही हैं, यह कहना आसान है कि जन्म देना सृष्टि का सबसे सुखद कार्य है किन्तु उस दौर से गुज़रना उतना आसान नहीं।

दूसरी ओर कात्यायनी इसी दर्दनाक स्थिति को कुछ और मार्मिकता के साथ दर्ज कर रही हैं -

"उफ! दु:सह पीड़ा से रहा नहीं जाता है

x x x

मर-मर कर जी उठना
नये की प्रतीक्षा में

x x x

बीत रहे हैं पल-पल युग-युग से
दुर्वह यह गर्भभार कठिन है।"[2]

स्त्री जीवन की यह मार्मिक अभिव्यक्ति यही दर्शा रही है कि कितनी वेदनाजनक परिस्थितियों से गुज़रकर एक स्त्री सृष्टि रचती है। फिर भी एक पुरुष इस बात को दिल की तह से स्वीकार करने में किस हद तक समर्थ बन पाता है यह सोचनेवाली बात है।

1. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 69
2. कत्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 104

वैसे भी पुरुष ने स्त्री को कभी अपने समकक्ष माना भी है क्या ? वजूद की स्थापना तो इनसानियत का पहला फर्ज है। उसका नैतिक व्यावहारिक गौरव बनाए रखना किसी भी मनुष्य के जीवनक्रम का रास्ता है। नैतिकता और मानवीय न्याय में दरक बनाकर स्त्री को निर्मित वस्तु बनाए रखने की गुस्ताखी आखिर कब तक चलेगी? खुद की अवस्था पर वह सोचने लगी -

"मैं न तो बिजली हूँ/ कि स्विच दबाया
तो जल गयी / न ही मैं रेडियो-टीवी हूँ
कि ऑन किया / तो बज उठी
प्राण हूँ मैं ।"[1]

इन पंक्तियों में अपने स्वत्व की पहचान वाली नारी की उद्‌घोषणा है जो यह ज़ाहिर करती हैं कि उनकी भी संवेदना है, आशाएँ-आकाक्षाएँ हैं। प्रत्येक स्त्री के सपनों में रहता आया है एक ऐसा जीवन जिसमें पति से अधिक जीवनसाथी हो। हर बार स्त्री होने से पहले वह भी अपने को एक संपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में पाना चाहती है जहाँ पुरुषत्व न सहना पड़ता हो पति का केवल स्त्री होने के कारण। निर्मला पुतुल की 'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए' कविता भी समान आशयवाली है।

अपने अस्तित्व को पहचानकर अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों को पहचानकर उसके खिलाफ आवाज़ उठाने की एक चाह कवयित्रियों के मन में होती है। शरीर की चिन्ता किसी स्त्री को कुछ भी करने से रोकती है। इसका एहसास करते हुए कवयित्री लिखती हैं -

1. सरिता बडाइक - नन्हें सपनों का सुख पृ. 103

"मैं कविता नहीं
शब्दों में खुद को रचती देखती हूँ
अपनी काया से
बाहर खड़ी होकर अपना होना।"[1]

तात्पर्य यह कि स्त्री कविता कवयित्रियों की स्वानुभूति का अभिव्यक्ति है। यहाँ वे अपने शरीर बोध को छोड़कर खुद को रूपायित करती है। इस तरह स्त्री स्वत्व का रूपायन उनके अंतर्मन से शुरु होकर बाहरी दुनिया की ओर बढ़ता हुआ दिखायी देता है। अर्थात् स्त्री अपनी अस्मिता को मात्र अपने से नहीं बल्कि समाज से जोड़कर देखती है। इस संदर्भ में अनामिका की ये पंक्तियाँ सार्थक निकलती हैं-

"एक हाथ में लुकाठी है मेरे
दूसरे में पानी का मटका
एक से चली हूँ बहिश्त राख करने
दूसरे से लपटें बुझाने दोजख की।"[2]

ये पंक्तियाँ एक समाजोन्मुख स्त्री के व्यापक स्वत्वबोध की ओर इशारा कर रही हैं जिसके एक हाथ में लुकाठी है जो क्रांति का प्रतीक है और दूसरे हाथ में पानी का मटका जो शांति एवं संवेदना का प्रतीक है। लुकाठी है समाज की असंगतियों को बहिश्त करने केलिए तो पानी है दुखियों की ज़िन्दगी का आग बुझाने केलिए। अर्थात् स्त्री का स्वत्वबोध उसकी बुद्धि और हृदय पक्ष का मिलाजुला रूप है।

समकालीन कवयित्रियों की उपर्युक्त सभी पंक्तियाँ नारी की प्रतिक्रिया

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 5
2. अनामिका - दूब-धान, पृ. 73

नहीं है बल्कि उसके चेतना संपन्न होते जाने का प्रमाण है। उसकी शैक्षिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने उसकी सोच और मूल्यों को बदला है। आज ऐसी कवयित्रियों की लंबी कतार है जो लीक पर न चलकर साहित्य जगत को अपने अनुभवों से कुछ नया प्रदान कर रही हैं। आज स्त्री स्वर आधिक मुखर होकर धीरे-धीरे केन्द्र की आवाज़ बन रही है। स्त्री जीवन के हर पक्ष को हम इसमें अभिव्यक्त होते देख सकते हैं ।

5.2 राजनीतिक यथार्थ

प्रायः स्त्री लेखन के संदर्भ में यह तर्क उठाया जाता है कि वह मात्र आत्माभिव्क्ति का माध्यम है, उसमें मात्र रोना-धोना है। किन्तु समकालीन स्त्री काव्य का यह अध्ययन यह संकेत दे रहा है कि 'वह' समाज के नवनिर्माण के महत् दायित्व का गंभीर निर्वहण है। सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों का लोगों पर अलग-अलग प्रभव पड़ता है।

भारत के राजनीतिक माहौल को दो संदर्भों में देखना होगा एक लोकतांत्रिक संदर्भ और दूसरा नवऔपनिवेशिक संदर्भ। ये दोनों संदर्भ हमारी शासन व्यवस्था को किस तरह प्रभावित कर रहे हैं यह विभिन्न शीर्षकों के तहत देखा जा सकता है।

5.2.1 लोकतांत्रिक संदर्भ

लोकतंत्र या प्रजातंत्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें जनता अपना शासक खुद चुनती है। भारत एक गणतंत्र राष्ट्र है। यहाँ सरकार को

जनता ही चुनाव के द्वारा चुन लेती है। लेकिन इनके द्वारा भी हमारे ऊपर शोषण चल रहा है। जनता को सिर्फ वॉट बैंक बनाकर रख दिया है। शोषण के विभिन्न पक्षों को यहाँ रेखांकित किया जा रहा है।

5.2.1.1 व्यवस्था का जनविरोधी रूप

भारत में नेताओं का स्वतंत्रता से पहले राजनीति में हिस्सा लेने का मतलब होता था- देश केलिए समर्पित और आज उसका मतलब हो गया- अपने लिए समर्पित । गुलमी की बेड़ियों से लंबे समय बाद आज़ादी तो ज़रूर मिली परंतु आम आदमी की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ा। सत्ताएँ बदली ज़रूर हैं, लोग उसे बदलने का प्रयास ज़रूर करते हैं मगर कुछ खास होता नहीं दिखाई पड़ता बल्कि फिर से वही इतिहास दोहराता है। व्यवस्था के जनविरोधी रूप का खुलासा करने के साथ जनता के मोहभंग को उजागर करने से भी कवयित्री चूकी नहीं है। वे कहती हैं -

"सरकारें चुनी तो जाती हैं प्रजा के माध्यम से ही
पर होती नहीं प्रजा केलिए
जहाँ की आधी से ज़्यादा प्रजा
नहीं जानती अपने राजा को
यह वह लोकतंत्र है जहाँ
लगते नहीं दरबार कि
सुनी जा सके प्रजा की गुहार।"[1]

लोकतंत्र में स्वतंत्रता का अर्थ ही बदल गया है। वह आज स्वार्थ तंत्र

1. ज्योति चावला- माँ का जवान चेहरा, पृ. 40

बन गया है। धनी और धनवान, गरीब और अधिक गरीब हो रहा है। देश बुनियादी समस्या भूख की है। भारतीय संविधान के तहत देश के प्रत्येक नागरिक का हक है - रोटी, कपड़ा और मकान। किन्तु देश की आधी आबादी इससे वंचित है। इसके बावजूद-

"भूख से बड़ी समस्याओं पर लोग करते हैं बहस।"[1]

यह आज के जनतंत्र की बदहालत है। कवयित्री को इस बात की आशंका है कि जीवन के बुनियादी हकों को हाशिए पर ढकेलने के षड्यंत्र के पीछे किसकी साजिश है। आज की शासन व्यवस्था बुनियादी समस्या को मिटाने में असमर्थ साबित हो रही है। क्योंकि उनके सामने बहस केलिए इससे भी बड़ी समस्याएँ हैं। किन्तु किसी बहस का सही नतीजा समने नहीं आ पाया अब तक, इसलिए कि-

"सरकार से एक पान लगाने को कहोगे तो उसमें भी दस
कमेटियाँ बिठा देगी।"[2]

कवयित्री की यह पंक्ति अपने उत्तरदायित्व को निभाने में असमर्थ सरकार को प्रकट कर रही है। वे अपने स्वार्थलाभ केलिए कई योजनाएँ बना रही हैं। अपने अधिकारों से अनजान भारतीय जनता संविधान द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाई। आज भ्रष्टाचार की राजनीति है। आम आदमी स्वतंत्रता से पहले भी शोषण का शिकार था और आज भी हो रहा है, मात्र शोषक वर्ग का चेहरा बदला है। इसकी जड़ें हर जगह-गाँव हो

1. अनीता वर्मा - रोशनी के रास्ते पर, पृ. 86
2. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ 105

या शहर-फैल चुकी हैं जिसकी वजह से ज़रूरतमन्द लोगों को उनकी बेहतरी केलिए प्रदन की जानेवाली अनेक सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। इनका हिस्सा कोई और ही डकार जाता है और उसकी स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता। अनपढ़-अशिक्षित रहने के कारण आदिवासी जनसमुदाय को इन-सबका शिकार कुछ ज़्यादा होना पड़ता है। ऐसे में गरीब लाचार आदमी सवाल करता है-

"उस आदमी को
कैसे मिल गया इंदिरा आवास
जिसके पाँव के जूते
मेरे पूरे बदन के कपडे से
चार गुणा ज़्यादा कीमती है ?"[1]

यही समकालीन जीवन की सच्चाई है। इन पंक्तियों में उस इनसान का आत्म रुदन है जिसे इंदिरा आवास केलिए भाग-दौड़ करने पर भी कुछ हासिल नहीं हुआ। सफलता उसे ही प्राप्त हो रही है जो नेताओं की जेबें गर्म करते हैं। ये पंक्तियाँ इसी ओर संकेत कर रही हैं। नेताओं की ही क्या ? सरकारी कामकाजों केलिए कार्यरत कार्यालय भी इससे अलग नहीं है। कोई कागज़ात ठीक करवाने केलिए आम आदमी को न जाने कितने जूते घिसवाने पड़ रहे हैं। इसपर व्यंग्य कर रही हैं कवयित्री-

"कार्यालय भी तो आलय हैं
                काम का घर-
और घर में रखना ही चाहिए

---

1. निर्मला पुतुल -अपने घर की तलाश में, पृ. 99

घर का माहौल!
'आलय' माने 'घर' और 'घर' में
करें नहीं तो करें कहाँ भला आराम
बेचारे काम !"[1]

यहाँ भी व्यवस्था का एक जनविरोधी रूप दर्शा रही हैं कवयित्री ।

'नई ईश-वन्दना' नामक कविता में कात्यायनी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के भ्रष्ट माहौल पर आक्षेप प्रकट कर रही हैं-

"प्रभु! यूनियनों की रीढ़ निकाल ले
इन्हें भ्रष्ट नेताओं से भर दे,
हड़तालियों को कुचलवा दे प्रभु
जो नहीं रहना चाहते भूखे
उन्हें गोलियाँ खिला दें
प्रभु! जनतंत्र को बचा
ज़रूरत हो तो आपातकाल ला।
इस दुनिया को नर्क बना
मँहगाई बढ़ा।
x x x
नास्तिकों, अधर्मियों और कम्युनिस्टों का
मुँह बंद कर दें।"[2]

-व्यंग्य भरी इन पंक्तियों में भ्रष्ट शासन व्यवस्था के प्रति कवयित्री का रोष प्रकट होता है।

भ्रष्ट लोकतंत्र का जनविरोधी रूप जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी देखने को मिल रहा है। आदिवासी समाज के सामने आज उपस्थिति सबसे बड़ी

1. अनामिका - खुरदुरी हथेलियाँ - पृ. 108
2. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 72

समस्या है - विस्थापन की समस्या। जिस मिट्टी में उनका प्राण बसा है, जिस मिट्टी में उन्होंने अपनी दुनिया देखी है वही ज़मीन उनसे छीनी जा रही है। रिसर्च टीम के नाम पर आकर मीठी-मीठी बातें बोलकर उनके सीधेपन का लाभ उठाकर उनके विश्वास की जड़ों को कुरेदा है। अपने इरादों के इन निरीह दिलो-दिमाग में थोपते रहे और अपने लोगों के बीच मन मुटाव पैदा करते रहे। अपने ऊपर हो रहे अन्याय को पहचानकर आदिवासी समाज अपनी भावनाओं को वाणी दे रहा है-

"हम चाहते रहे संतुलन
तुम करते रहे असंतुलित
तोड़ते रहे एकता, मिटाते रहे
हमारी पहचान
खदेड़ते रहे हमारे ही जंगलों से हमें
उजाड़ते रहे विकास के
नाम पर हमारी बस्तियाँ
बसाने के नाम पर ठेलते रहे हाशिए पर।"[1]

इन पंक्तियों में एक ओर जनतंत्र का षड्यंत्र नज़र आ रहा है तो दूसरी और कवयित्री का प्रतिरोधी स्वर भी मुखर हो रहा है। ज्योति चावला की 'उस पार की दुनिया' नामक कविता में भी उखाड़ दिए जानेवालों का आर्त्तनाद सुनायी देता है।

आज की हमारी भ्रष्टाचार से आकंट डूबी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में ऊपर के लोग सब कुछ हड़प ले रहे हैं, पर वे नीचेवालों की नज़रों से बच

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 94

नहीं पाते। मज़दूरों, सचेत लोगों को सबकुछ मालूम है। समाज के जुल्म, पीडन के प्रति सजग मज़दूरों में आक्रामकता के स्वर भी बुलंद है। समकालीन स्त्री कविता मज़दूरों के पक्ष में खडी दीखती हैं। रमणिका गुप्ता की ये पंक्तियाँ-

"तानाशाह और नौकरशाह
दो दलाल हैं सबसे बड़के
काठी डाल के चढ़ बैठे हैं
जनता के 'कान्धों' पर डट के

x x x

आन देश ते आई मशीन
मज़दूरों की छटनी कर दीन
मेहनतकश मज़दूर जवानी
हाथ मल-मल के रह गीन

x x x

कमीशन खाके करें दलाली
देश को करते धन से खाली
घाटे पे घाटा दिखलाकर वे
खानों में लगवाते ताली
हैम्मर-सब्बल हाथ में ले के
चल ताला खोलें
चल फाटक खोलें
चल हल्ला बोलें
चल हमला बोलें!"[1]

-एक साथ कई कार्य करती हैं । एक ओर जहाँ शोषण चक्र के रहस्यों का उद्‌घाटन करती हैं, मज़दूरों के दुख, और दुखों के कारणों की

1. रमणिका गुप्ता -भीड़ सतर मे चलने लगी है, पृ. 29

विवेचना करती हैं वहीं मज़दूरों को सजग, सावधान करती हैं, अपनी शक्ति का एहसास कराती हैं, अपना पक्ष चुनने केलिए प्रेरित करती हैं। 'सब सच-सच बोलूँ', 'मजदूरायण', 'हवाला! हवाला, हवाला!' 'चल हल्ला बोले', 'इन्हें खतम करना ज़रूरी है', 'खेतीहर मजूरिन' आदि रमणिका जी की कविताएँ और ज्योतिचावला की 'सच', 'संबंध', 'वह लौटता है तो लौट जाती है सारी उम्मीदें' ऐसी कविताएँ हैं, जो मज़दूर जीवन के विभिन्न पक्षों को उभारती हैं।

बाल मज़दूरों की समस्या आज भारत में काफी गंभीर रूप में विद्यमान है। अधिकांश लोग बच्चों को बचपन का अधिकार मुहैया नहीं कराते हैं। ऐसे में बच्चे बाल्यावस्था में ही वयस्कों की जटिल एवं दुरूह ज़िन्दगी जीने केलिए विवश होते हैं। परिवार का भूख मिटाने की खातिर बच्चे बाल-मज़दूर के रूप में बदनाम हो जाते हैं। कुछ बच्चे फुटपाथों पर अपनी ज़िन्दगी जीने केलिए अभिशप्त है। इन फुटपाथी बच्चों को कुछ अपराधी गिरोहों द्वारा अपने अपराधों केलिए इस्तेमाल किया जाता है। यदि ये उससे इनकार करते हैं तो उनका अंग-भंग कर दिया जाता है और उन्हें भीख माँगने केलिए मज़बूर कर दिया जाता है। कुछ गिरोह और माफिया-तंत्र इस हद तक अमानवीय कार्य करते हैं कि वे बच्चों की हत्या कर उनके अंगों का अवैध व्यापार करते हैं। कइयों से गुलामों की तरह काम लिया जाता, कइयों को झूठे मुकदमें में फँसाकर जेलों में बन्द रहने केलिए मज़बूर कर दिया जाता है। इन सबसे तंग बाल मज़दूर अपना प्रतिरोध यों ज़ाहिर करते हैं-

"बचपन में
बनवाते हो पटाखे
और

नौ जवानी में बम बनाने से
रोकते हो?
आज जीने केलिए
बनाते हैं पटाखें
कल जीने केलिए
क्यों न बनाए बम?
आज
तुम्हारे मुनाफ़े की शर्त है
हमारा जीना
लेकिन मत भूलना
कि हमारे जीने की शर्त है
तुम्हारे मुनाफे का खात्मा।"[1]

इन पंक्तियों में यह साफ झलक रहा है कि इस बाल मज़दूरी के पीछे बडे-बड़ों का हाथ है जिनके खिलाफ व्यवस्था की दृष्टि उदासीन है। बाल अधिकारों के रहते हुए बाल जीवन की यह त्रासदी दर्दनाक है।

अनामिका की 'कूड़ा बीनते बच्चे', 'ढोल', ज्योति चावला की 'तस्वीरें', रमणिका गुप्ता की 'गांठों की मुट्ठी में बंद जिन्दगियाँ', 'रीता की बेटियाँ', 'कि बची रहे मनुष्यता हममें' आदि कविताओं में बालश्रमिकों की दयनीय स्थिति प्रकट हुई है जिनके बंधे और पीडित व्यक्तित्व मानवता के चेहरे पर बड़े धब्बे हैं।

इस तरह समकालीन स्त्री कविता व्यवस्था के जनविरोधी रूपों के विभिन्न आयामों को स्पर्श कर रही हैं।

---

1. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ. 114

5.2.1.2 सांप्रदायिकता

यह एक ऐसा विध्वंसात्मक स्वरूप है, जो आदमी को उसकी आदमीयत से काटकर केवल घृणा का प्रारूप बना देती है। धर्म और संस्कृति, जिनका निर्माण मनुष्य ने अच्छा जीने और एकजुट होकर, मिल-जुलकर जीने केलिए किया था, उन्हीं का दामन पकड़कर यह मनुष्य को मनुष्य के खून का प्यासा बना रही है।

आलोचक नामवर सिंह की राय में गहरा धार्मिक आदमी उतना सांप्रदायिक नहीं होता, बल्कि बिलकुल नहीं होता। सांप्रदायिक वे होते हैं जिनमें धार्मिक आस्था नहीं होती। खुले शब्दों में कहें तो जब एक विशेष समुदाय अपने आपको अन्य समुदायों से श्रेष्ठ मानकर उनपर शासन करने को अपना दैवी अधिकार समझता है, तब सांप्रदायिक समस्या उद्‌भूत होती है। यह समस्या जब दंगों में तब्दील होती है तो सांप्रदायिकता के दुष्परिणाम सामने आते हैं। सांप्रदायिक दंगों में सामान्य जन या तो भीड़ में परिवर्तित हो जाता है या परिवर्तित कर दिया जाता है। अब हम उन्मादी-बौराई भीड़ से किसी रचनात्मक कार्य की अपेक्षा तो कर नहीं सकते, वह तो निश्चय ही तोड़-फेड़ करेगी। लूटपाट, दंगा-फसाद जैसे कार्य उसके प्रिय कार्यों की सूची में काफी ऊपर होते हैं। 'खुरदुरी हथेलियाँ' नामक संकलन में दी गई अनामिका की ये पंक्तियाँ-

"दंगाई पहले तो औरतों के फाडते है कपड़े
फिर पेट

बच्चों का सिर वे शायद
पत्थर पर यों पटककर तोड़ देते हैं
जैसे तुमने उस दिन बेल तोड़ा था
शरबत की खातिर।"[1]

-यह साबित कर रही हैं कि मूलतः सांप्रदायिक दंगों में किसी संप्रदाय विशेष का उतना नुक्सान नहीं होता, जितना कि मानवता का होता है। हर दंगों के बाद अब तक हम सिसकती-कलपती मानवता ही देखते आए हैं। हमारी समाजिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि ज़रा सी उथल-पुथल से औरतों का सारा जीवन तबाह हो जाता है। जाहिर सी बात है कि दंगों में सबसे ज़्यादा पीड़ित महिलाएँ और बच्चे ही होते हैं चाहे वे किसी भी संप्रदाय के हों।

वस्तुतः भारत में सांप्रदायिक दंगे मुख्यतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अंतर्विरोधों की उपज हैं। इन दंगों के पीछे औपनिवेशिक शासकों का यह मंतव्य था कि भारतीय जनमानस और जनांदोलन को धार्मिक उन्माद में डुबोकर अपना शासन बरकार रखा जाए।

वे हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विद्यमान संघर्ष के बिन्दुओं को लगातार उकसाते रहे जिससे वे एकजुट होकर गुलामी की बेडियाँ तोडने केलिए संघर्ष न कर सके। किन्तु 1855 में हिन्दुओं और मुसलमानों के बुजुर्गों ने मिलकर आपस में समझौता करके सन् 1857-58 में अवध में स्वतंत्रता केलिए भयानक संघर्ष, किया जिसके विफल होने के बाद से ही अंग्रेज़ों ने निरंतर प्रयास करके बाबरी-मस्जिद जन्मभूमि विवाद पर हुई हिन्दू-मुस्लिम एकता को नष्ट कर दिया और इस विवाद को ज़्यादा गहरे

1. अनामिका - खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 128

और भ्रामक आयाम प्रदान किए। परिणाम बड़े स्पष्ट रहे। न सिर्फ 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, बल्कि आज तक इस विवाद ने देश में सैंकड़ों सांप्रदायिक दंगों को जन्म दिया है। कवयित्री कह रही हैं-

"अयोध्या अब भी अयोध्या है
अपनी क्षत-विक्षत देह के साथ
अयोध्या अब भी अयोध्या है
पूर्वजों के सामूहिक विलाप के साथ
x x x
हमीद मियाँ चले गये हैं देखते मुड़-मुड़कर
जला घर
चले गये हैं रामचन्द्र जी भी मलबे की मिट्टी
खूँट में उडस।"[1]

सांप्रदायिक दंगे हमारे बीच ऐसी खाइयाँ पैदा कर देते हैं कि सदियाँ भी उन्हें पाटने में कम पड़ जाएँ। जन-धन की अपार हानि तो हर दंगे में होती है। दंगा करने-कराने वाली भीड़ यह समझने की शक्ति खो देती है कि वह जिस संपत्ति को खाक में मिला रही है, उसी की है। जिस राम के या बाबर के नाम पर ये दंगे फसाद हुए वे तो वहाँ है ही नहीं, शेष हैं केवल दंगे अवशेष। 'छह दिसम्बरः कुछ चित्र' नामक कविता में रमणिका गुप्ता लिखती है-

"विवेक औंधा
न्याय अन्धा
तर्क गूँगा
x x x

1. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराजू, पृ. 54

जय श्रीराम का दंभ
बमों के धमाके करता
लगा फूटने
x x x
धूल ने ग्रस लिया सूरज
आकाश में रात घिर आयी
x x x
भरा पड़ा था
माटी-पत्थर चूना
मौजूद थी शिलाएँ
पर नहीं था खुदा उन पर
कोई नाम
न राम का, न बाबर का।"[1]

भगवान के नाम पर इतना कुछ? प्रेम और कर्म का पाठ पढ़ानेवाले धर्म की खातिर ऐसी घिनौनी हरकत? यह कैसे हो सकता है? यह कहना वाजिब होगा कि सांप्रदायिकता के मूल में धर्म और संस्कृति नहीं, राजनीतिक सत्ता प्राप्ति की हवस है। धर्म, संस्कृति और साधारण जनता की धार्मिक भावना तो इस्तेमाल की चीज़ें हैं, जिन्हें राजनीतिक सत्ता की अंध दौड़ में शामिल लोग इस्तेमाल करते हैं, फलस्वरूप सत्ता का सुख भोते हैं। नीलेश रघुवंशी और अनीता वर्मा की कविताओं में भी सांप्रदायिक समस्या का उल्लेख करके उसकी सारहीनता पर प्रकाश डाला गया है।

5.2.2 नवऔपनिवेशिक संदर्भ

नवउपनिवेशवाद वह व्यवस्था है जिसमें पूर्व उपनिवेशी ताकतें अपने

1. रमणिका गुप्ता - प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 93

पूर्व उपनिवेशितों में वर्चस्व बनाये रखने की कोशिश करती हैं। देशी उत्पादों और देशी बाज़ार का सर्वनाश ही भूमंडलीकरण की प्रक्रिया है। भूमंडलीकरण और उपभोग संस्कृति का यह दौर वर्तमान पूंजीवाद का है। भारत में नब्बे के दशक से वैश्वीकरण की प्रक्रिया शुरु हुई और वह बड़ी तीव्र गति से बढ़ गयी। आज इस वैश्वीकरण ने पूरे संसार को अपने कब्जे में कर लिया है। उदारीकरण, निजीकरण, बाज़ारवाद आदि विभिन्न नाम भंगिमा के भीतर छिपे अमानवीय चेहरे को पहचानना मुश्किल है। आधुनिक मनुष्य इसके चंगुल में फँस गया है। वर्षों पुरानी भारतीय संस्कृति को नष्ट करनेवाली बाज़ार केन्द्रित इस संस्कृति के कोखलेपन की समझ समकालीन कवयित्रियों में है। इस संस्कृति का प्रभाव वाणिज्य के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सभी क्षेत्रों में पड़ रहा है। इसका ज़िक्र भी आगे हो रहा है।

5.2.2.1 नव औपनिवेशिक स्थिति की समझ

समकालीन स्त्री कविता में भूमंडलीकरण और उसके आर्थिक पहलुओं के स्त्री जीवन पर पड़नेवाले प्रभावों की चर्चा केलिए काफी जगह मिली है। इससे यह बात साफ ज़ाहिर है कि समकालीन कवयित्रियाँ नवउपनिवेश के दौर की बखूबी समझ रखती हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में बाज़र की हर चीज़ हमें उसकी और आकृष्ट कर रही है। चीज़ें उतनी ही लुभानेवाली एवं मनमोहक हैं कि कवयित्री के शब्दों में -

"खुशबू से सने
देखने में सुन्दर

कितने दुलारे, रस में भीगे
जैसे रसगुल्ले प्यारे-प्यारे।"[1]

अर्थात् नवऔपनिवेशिकता के नकली सुनहली चमक-दमक से आधुनिक मनुष्य इतना ज़्यादा मोहित है कि वह बिना किसी ठोस आधार के भी उससे चिपके रहना चाहता है। भूमंडलीकरण की गति अनिर्धारित है। आज भारत में उदारीकरण के दौर ने एक स्वतंत्र बाज़ार खोला है जहां सभी देशों के उत्पाद एक साथ मौजूद है। कवयित्री के शब्दों में यों कहा जाए कि-

"पटरी पर बिखरा था ब्रह्माण्ड
सुई से लेकर सितारे तक
एक दरी पर सजे थे
बिकने के वास्ते।"[2]

किन्तु इन उत्पादों में देशी कम विदेशी माल ज़्याद रहते हैं। स्वतंत्र बाज़ार ने विज्ञापन द्वारा प्रत्येक देश की संस्कृति को प्रभावित किया है। विज्ञापनों की हवा पर सवार होकर उपभोक्तावाद दूर-दूर तक यात्रा करता है। हर कहीं विशिष्ट वर्ग पश्चिमी सुख-साधन का सामान आयात कर रहा है। 'भूमंडलीकरण' शब्द के मूल में 'सब जन हिताय सब जन सुखाय' की ध्वनि मौजूद थी, इसके विपरीत यह व्यवस्था सारे संसार को कुछ सशक्त पूँजीवादी प्रतिष्ठानों यानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके सकेन्द्रण के सबसे सबल केन्द्र अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बनी हुई है। इसीलिए निर्मला गर्ग कहती हैं-

1. सुशीला टाकभौरे - स्वाति बूँद और खारे मोती, पृ. 95
2. अनामिका - अनुष्टुप, पृ. 116

"भारत भी तो कभी बहुत समृद्ध था
आज तो बस अमेरिका ही है जो भी है।"[1]

संसार को एक करने की भूमंडलीकरण की दृष्टि पूरी तरह एक आयामी है। यह सिर्फ व्यापार केलिए दुनिया को एक करना चाहती है, बाकी सारी बातें आनुषांगिक हैं। भूमंडलीकरण से एक ओर नयी सुविधाएँ मिलीं, तो दूसरी ओर नये जोखिम भी बढ़े हैं। वर्तमान शिक्षित समाज इस बात से बखूबी वाकिफ है कि तथाकथिक स्वतंत्र भारत आज भी नवऔपनिवेशिकता के चंगुल में पड़कर गुलाम बना हुआ है। वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता। आज का स्वार्थी मानव पश्चिम का अंधानुकरण करके अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए किसी भी हद तक गिर सकता है। वह सही और गलत की पहचान खो चुका है। वह अब द्वन्द्व की स्थिति में है।

कवयित्री को ये पंक्तियाँ

"लेकिन मनुष्य
भागता खोया हुआ बाज़ारों में
एक साथ खुश और डरा हुआ
जैसे कोई बीमार अपनी ही तीमारदारी करता हुआ

वह पहचानता है दुश्मन को उसके हज़ार हाथों के साथ
अपने घरों में बैठ उससे दोस्ती करता है
मिलाता है हाथ
आओ रहो हमारे घर
अभी हम और गिरने को तैयार हैं।"[2]

---

1. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराजू, पृ 45
2. अनीता वर्मा - रोशनी के रास्ते पर, पृ. 62

-यह उजागर करती हैं कि नवऔपनिवेशिक शक्तियों का जाल कितना संकीर्ण एवं प्रभावी है। यहाँ तक कि इनसान का अपना अस्तित्व भी संकट में है। उसका नियंत्रण किसी और के हाथ में है। समकालीन साहित्य देश और समाज की इस विसंगत यथार्थ के खिलाफ प्रतिरोध करता है। मानव जीवन के विभिन्न संदर्भों में इसका नकारात्मक प्रभाव और इससे जनसामान्य को आगाह कराने की चाह समकालीन स्त्री कविता में विद्यमान है। कात्यायनी, प्रभाखेतान, ज्योति चावला, निर्मला पुतुल आदि की कविताओं में यह समझ विद्यमान है।

5.2.2.2 उपभोग संस्कृति का प्रतिरोध

हम देख चुके हैं कि भूमंडलीकरण की गति अनिर्धारित है। इसकी तेज़ गति के सामने कोई ठहर नहीं पाता। जो कुछ भी स्थायी और स्थिर है उसे भूमंडलीकरण बहा ले जाता है। इसीका परिणाम है आज की प्रचलित उपभोग की संस्कृति। इसका आदर्श यह है कि उपभोक्ता जितना उपभोग करेंगे उन्हें उतनी ही खुशी मिलेगी। किन्तु इसके पीछे छिपी सच्चाई कोई जल्दी समझ नहीं पाएगा। भूमंडलीकरण ने प्रत्येक वस्तु को उपभोग के दायरे में ला खड़ा किया है। कला, साहित्य, धर्म, संस्कृति, संबंध यहाँ तक कि मनुष्य भी इसी श्रेणी में आ रहा है। इन सभी चीज़ों का उपयोग तब तक किया जाता है जब तक वह लोगों को रुचिकर लगती हैं। हमारी मनपसंद चीज़ क्या है, यह बाज़ार तय करता है। आज के इस जटिल जीवन में उपभोग की वस्तुएँ इस कदर उसी हुई हैं या घुसा दी गयी हैं कि मनुष्य उसके

बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। इस सच्चाई को पहचानकर कवयित्री कहती हैं -

"क्या करते हैं हम
रिश्तों की जगह चीज़ों को रखते हैं
चीज़ें पहले तो घेर लेती हैं
फिर मौका पाकर अकेला कर देती हैं।"[1]

इस बात को हम पहचानकर भी पहचान नहीं पा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति की माँग को समझकर बाज़ार में माल उतारा जाता है। हम हैं कि घर को बाज़ार बनाये जा रहे हैं और समाज में अपनी हैसियत और आत्मसम्मान से इसे जोड़ रहे हैं।

उपभोग की यह संस्कृति समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त है और उपभोग करने की इच्छा प्रत्येक स्तर के लोगों में। प्रकृति से जुड़ा आदिवासी जनसमुदाय जो आधुनिक सभ्यता से दूर अपने वनों, घाटियों, नदी-नालों पशु-पक्षियों तथा रूढ़ियों और संस्कारों से जुड़ी आदिम संस्कृति में जी रहे हैं, अपनी मेहनत की कमाई खा रहे हैं। दीन, हीन और अनपढ़ होने के कारण शहरी लोगों ने इनके शोषण में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इनके पसीने से उपजे चावल, दान आदि कोई भी चीज़ उन्हें नहीं मिलती, इन चीज़ों पर इनका कोई हक नहीं बनता। अपनी ही चीज़ें इन्हें पैसे देकर खरीदनी पड़ती है। आखिर वे 'विश्वग्राम' की संकल्पना के भाग जो बन गये हैं। इनकी अज्ञानता पर कवयत्री प्रश्न चिह्न लगा रही हैं -

---

1. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराजू, पृ. 14

"तुम्हारे पसीने से पुष्ट हुए एक दिन
लौटते हैं दाने
तुम्हारा मुँह चिढ़ाते तुम्हारी ही बस्ती की
दूकानों पर
कैसा लगता है तुम्हें जब
तुम्हारी ही पहुँच से दूर होती
दिखती हैं
तुम्हारी ही चीज़ें....?"[1]

खतरे में पड़े आदिवासी जनजीवन की और यहाँ संकेत है। तथाकथित सभ्य शहरी लोग इनकी संपत्ति इनकी मेहनत की उपज को हड़पकर इन्हें हाशिए पर धकेल देते हैं।

उपभोग की यही संस्कृति विज्ञापन की दुनिया में भी देखी जा सकती है। वैसे तो सदियों से मात्र उपभोग की वस्तु समझकर स्त्री का शोषण होता आया है। भूमंडलीकरण का यह दौर स्त्री के वस्तूकरण का एक नया अंदाज़ प्रस्तुत कर रहा है। कॉस्मेटिक्स के उत्पादन तथा इससे संबंधित विज्ञापन सबसे अधिक दिखाई देते हैं। इनकेलिए अनुबंध करती विश्व सुन्दरियाँ देह की दुनिया में ही निवास करने का संदेश देती फिरती है। इसके पीछे छिपा षड्यंत्र वे जानती हैं या फिर जानना नहीं चाहती या पैसों की दुनिया के खेल में सहभागी रहना चाहती हैं। फटी एडियाँ, फटे होंठ, सूखी-त्वचा केवल स्त्रियों की ही समस्याएँ हैं? अधिकतर विज्ञापन केवल स्त्रियों को ही संबोधित होते हैं। अतः अस्वीकार भी स्त्री को ही करना है।

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 10

जो देह की राजनीति को पहचानती है वह प्रतिरोध ज़ाहिर करती है -

"अब इतनी सकत नहीं रही
कि दिन भर मुस्कुरा सकूँ, अदाएँ दिखा सकूँ
निर्माता-निर्देशकों को रिझा सकूँ
या दूरदर्शन पर सौन्दर्य-प्रसाधनों का विज्ञापन कर सकूँ।"[1]

ये पंक्तियाँ इस ओर इशारा कर रही हैं कि आज पूरा बाज़ार स्त्री को लक्ष्य बनाकर चलता है। उपभोग की इस संस्कृति ने पूरे भारतवर्ष को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। उपभोग संस्कृति की यह पहचान समकालीन स्त्री कविता में ममता कालिया, निर्मला गर्ग, ज्योति चावला, अनामिका, कात्यायनी, निर्मला पुतुल आदि की कविताओं में सही रूप में देखने को मिलती है।

5.2.2.3 बदलते मूल्यबोध

उल्लेखनीय है कि पिछले तीस वर्षों में भूमंडलीकरण, उदारीकरण, उपभोक्तावाद, मुक्त बाज़ार व्यवस्था और नई आर्थिक नीतियों ने हमारे जन जीवन पर गहरा असर डाला। हमारे मानवीय मूल्य अपदस्थ हो रहे हैं और हम एक ऐसे उपभोक्ता के रूप में रूपांतरित हो रहे हैं, जिसका मनुष्यता, विचार और सांस्कृतिक मूल्यों से कोई वास्ता नहीं है। परिणाम स्वरूप हमारे मानवीय मूल्यों में जो गिरावट आई, जीवन परिस्थितियों में जो बदलाव आए उनका यथार्थवादी प्रतिबिंबन समकालीन स्त्री कविता में हुआ है। सामयिक समाजिक संदर्भों से जुड़ी होने के कारण ये कविताएँ हमें और भी आकर्षित

1. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 64

करती हैं। यहाँ एक ओर मूल्य संकट की स्थिति पैदा हुई है तो दूसरी ओर नवीन मूल्यबोध अपनाये जा रहे हैं। संवेदनहीन होते समाज की जड़ता को दूर कर मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के उद्देश्य से कवयित्री नीलेश बोल उठती हैं-

"खुद की जगह पक्की करने के फेर में
कभी किसी के चोटिल होने की प्रतीक्षा ना करना
धैर्य बिलकुल ना खोना उस समय
जब जादुई कलाइयों की जगह इठला रही हों जुगाड़ू कलाइयाँ
काबिलियत को परे धकेलने का नज़ला है जिन्हें
उन्हें देख गलत रास्ता ना पकड़ना कभी
मेरे हुनरमंद नन्हें खिलाड़ी
तुम खेल के पीछे के खेल में कभी ना उलझना
यह छीन लेगा तुमसे खेल का आनंद।"[1]

ये पंक्तियाँ संवेदनहीन समाज की स्वार्थपरता को दर्शाने के साथ भविश्य के प्रति एक सकारात्मक मोड़ अपनाती हुई नज़र आ रही हैं। आज का मानव इतना आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है कि वह अपना स्वार्थ साधने केलिए दूसरों का इस्तेमाल किये जा रहा है। ऐसी स्थिति में उसके भीतर स्नेह, दया, सम्मान, करुणा, जैसे भावों का अभाव महसूस हो रहा है। अनीता वर्मा की 'अनिंदो दा के साथ', अनामिका की 'देशप्रेम', 'गावतकिए और मूसल', 'झूठ प्रयोगशाला और कविता' आदि कविताएँ वर्तमान समाज में मौजूद मूल्य च्युति की ओर इशारा कर रही हैं।

---

1. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 114

बदलते सामाजिक परिवेश में नये मूल्यबोध को अपनाते हुए समकालीन स्त्री कविता जीवन के प्रति खुला और व्यापक दृष्टिकोण रखती हैं। मूल्यों को प्राप्त करने केलिए जीवन संघर्ष आवश्यक है। संघर्ष द्वारा ही व्यक्ति को जीवनदृष्टि प्राप्त होती है, फिर मूल्य प्रक्रिया स्वतः विकसित होती है। कवयित्री कहती हैं -

"दृष्टि को व्यापक बनाने केलिए अब
प्यार को निर्बन्ध कर दो
कोई कभी भी अब इसे सीमा न दो,
सहज-नैसर्गिक बनाओ।
जहाँ कुछ भी सहज-नैसर्गिक न होवे
उसे तोड़ो-उसे फोड़ो।'[1]

ये पंक्तियाँ कवयित्री की उन्मुक्त प्रेम की इच्छा को प्रकट कर रही हैं। वह प्रेम जिसे हमेशा से एक दायरे में केन्द्रित रखा है, समाजिक बंधनों के अंदर सीमित रखा है। समकालीन स्त्री कविता प्रेम की इस परिसीमा से एतराज़ प्रकट कर रही है। सहज-नैसर्गिक प्रेम का समर्थन करते हुए उसे स्वतंत्र रूप से अपनान चाहती है स्त्री कविता। इसीलिए ममता कालिया कहती हैं -

"प्यार शब्द घिसते-घिसते
चपटा हो गया है,
अब हमारी समझ में
सहवास आता है।"[2]

1. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 112
2. ममता कालिया -खांटी घरेलू औरत, पृ. 96

यहाँ परंपरागत विवाह पद्धति को छोडकर एक नयी जीवन रीति की ओर संकेत किया गया है। 'सहजीवन' या 'लिविंग टुगेदर' भारत में पश्चिमीकरण का परिणाम है। विवाह जैसी संस्थाओं में प्राप्त कोई बंधन, या बेड़ी यहाँ मौजूद नहीं। सहजीवन में दोनों इकाई पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। कानूनी तौर पर भी इसे स्वीकृति मिल रही है। समकालीन समाज प्राचीन परंपराओं एवं आस्थाओं का अंधानुकरण नहीं चाहता बल्कि उसका संशोधन-मूल्यांकन करके एक नया आयाम देने के पक्ष में है जिसके मूल में दूसरों को कष्ट न देने की इच्छा भी निहित है। हर नया तरीका कितना सफल और असफल निकलता है, यह अपनाने के ढंग पर निर्भर करता है। ज्योति चावला की 'प्यार में डूबी लड़की', 'लड़की', निर्मला गर्ग के 'कबाड़ी का तराजू' की कविताएँ प्रभा खेतान के 'अपरिचित उजाले' में संकलित कुछ कविताएँ आदि धोखा पाने के कारण प्रेम के प्रति मन में पैदा हुए अविश्वास को दर्शा रही हैं तो कहीं स्वतंत्र प्रेम की चाह प्रकट करती हैं। चंपा वैद की 'नेपाल' नामक कविता में समलैंगिकता का ज़िक्र है जिसे बच्चों में भी आम बात बतायी गयी है। इस तरह मौजूदा समाज में उत्पन्न मूल्यहीनता और नये मूल्यबोधों के प्रति समकालीन स्त्री कविता काफी सतर्क है।

5.2.2.4 बदलते मानवीय संबंध

मौजूदा सामाजिक माहौल में उभरे घटते एवं गढ़ते मूल्य संकल्पनाओं की चर्चा हमने की है। इन्हीं मूल्य सरणियों की बुनियाद पर खड़े मानवीय

संबंधों की जटिलता और शिथिलता को यहाँ परख रहे हैं। समकालीन स्त्री कविता बनते और बिखरते मानवीय संबंधों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर रही है। हम एक ऐसे समय में जीते आये हैं जहाँ रिश्तों की कद्र की जाती थी। किन्तु प्रत्येक रिश्ते में एक दूरी भी कायम रही थी। सम्मान की दीवार को संबंधों के बीच खड़ा करके खुलकर व्यवहार करने की संभावना बहुत कम थी। पिता और पुत्री के संबंध को ही लीजिए। गुज़रे हुए ज़माने में पिता घर का मुखिया था, उनके प्रति बच्चों की भय भरी दृष्टि थी। बचपन से यही सिखाया जाता रहा कि पिता सम्मान के पात्र है, उनके साथ कोई बचपना व्यवहार गलत है। इसीलिए हमेशा एक दूरी, एक अलगाव पिता और पुत्री के बीच बना रहता था, पिता और पुत्र के बीच शायद इतना नहीं था। किन्तु इससे भिन्न वर्तमान समाज में पिता-पुत्री के बीच दोस्ती का एक अटूट बंधन कायम हुआ दिखता है जहाँ पुत्री केलिए पिता एक आदर्श बन जाता है -

"जब तक थे आप मेरे साथ
मेरा कोई भी सवाल
अनुत्तरित नहीं था
आप मेरी मुश्किल झट से निपटाते
x x x
आपने सहमति की सीमा
असहमति की शक्ति समझाई।
x x x
आपके पास बैठना
एक उपनिषदीय अनुभव से गुज़रना था।

x x x

मैं कृतिकार नहीं, मैं कृति हूँ
पिता तुम्हारी में आकृति हूँ ।"[1]

यहाँ अगर बाप-बेटी के बीच जमते रिश्ते पर ज़ोर दिया गया है तो मौजूदा समाज में तथाकथित उपभोग संस्कृति के दुष्प्रभाव से विघटित मानव संबंधों की संख्या भी कम नहीं है जहाँ बाप का बुढ़ापा बच्चों से हजम नहीं होता-

"पिता बुढ़ापे में अच्छे नहीं लगते
या शायद
अच्छा नहीं लगता बुढ़ापा पिता पर।"[2]

यह रिश्तों के बिखराव की पहली कड़ी है। रिश्तों की शुरुआत होती है माँ के कोख से जन्म लेने के बाद। माँ-बच्चे का यह रिश्ता दुनिया का सबसे अनोखा रिश्ता है। एक माँ अपने जीवन के अंतिम क्षण तक अपनी संतान केलिए जीती है। यह बात साफ ज़ाहिर है कि माँ की ममता को महसूस करनेवाली संतान वह प्यार देने में नहीं कतराएगी। बीमार माँ के प्रति एक बेटे के प्यार की मासूमियत को दर्शा रही हैं कवयित्री-

"माँ जब मैं बाहर को जाऊँगा
प्यास अगर तुमको लग जाएगी
और तुम पुकारोगी
तो कैसे मैं फिर सुन पाऊँगा?
नन्हे-से हाथों से सिर को
सहलाता है

x x x

1. ममता कालिया - खाँटी घरेलू औरत, पृ. 73-74
2. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 51

उसके ही नन्हे-से हाथों के
साये में
बच्ची बन करके सो जाती हूँ।"[1]

ये पंक्तियाँ हमें यह सोचने को मज़बूर करती हैं कि एक बच्चे की मासूमियत बढ़ते उम्र के साथ बदलते सामाजिक परिवेश के दबाव में क्या ऐसी ही टिक पाएगी? क्योंकि समकालीन पारिवारिक और सामाजिक जीवन में व्यक्ति की बाहरी शालीनता बढ़ी है, भीतरी सहिष्णुता उतनी कम हुई है। इससे मानवीय संबंधों में गहरा तनाव उत्पन्न हुआ है। मनुष्य केलिए आज मानवीय संबंधों के संदर्भ में सिर्फ यही एक प्रश्न शेष रह गया है कि क्या दोगे? या कितना दे सकते हो? आज की उपभोग- संस्कृति मानव समाज को यही सख दे रही है कि जो उपयोग के लायक न हो उसे फेंक दो। लोग अपने रिश्तों में भी इसी बात को आजमाते हुए नज़र आ रहे हैं। बुढ़ापे में अपने बच्चों के समने माँ-बाप के हाथ खाली हैं तो उनके प्रति बच्चों में कोई दिलचस्पी नज़र नहीं आ रही। कवयित्री की ये पंक्तियाँ-

"बेटों में से कभी-कभी कोई आता है
अपने हिस्से के रुपये लेने
कोई नहीं कहता आप चलकर हमारे साथ रहें
हमें खुशी होगी
बड़ी बहन बीच-बीच में आती है
जितना होता है सब व्यवस्थित कर जाती
नौकर को तनखा से अलग और रुपयों का लालच देती है
ताकि टिका रहे।"[2]

1. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 110
2. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराजू, पृ. 92

-यही दर्शा रही हैं कि वृद्धजन अपने परिवार में 'अनफिट' होते जा रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी वृद्ध माँ-बाप को एक अनुपयोगी एवं बोझ की तरह समझती है। ज्योति चावला की 'अनफिट होते वे' नामक कविता युवा पीढ़ी की मानसिकता को यों दर्शा रही है-

"कितना अच्छा हो अगर
बाज़ार उपलब्ध करवा दे इनके बदले भी
कोई आकर्षक ऑफर तो
इनकी ज़रूरत कुछ समझ में आए।"[1]

नवउपनिवेश के परिणास्वरूप उपजी बाज़ारू संस्कृति ने जनमानस को किस हद तक प्रभावित किया है, यह इन पंक्तियों में साफ नज़र आ रहा है। समकालीन साहित्य में बिखरते रिश्ते की बौखलाहट ने जीवन को नीरस बनाया है तो बनते रिश्तों की सघनता एवं ताज़गी ने जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि अपनाते हुए नयी उम्मीद पैदा की है।

अनामिका की 'छप्पर की मालाएँ', 'वृद्धाएँ धरती का नमक हैं,' 'पचास बरस', सुनीता जैन की 'वे आती थीं', सविता सिंह की 'सारा का सुन्दर बदन' आदि कविताओं में बिखरते रिश्तों का रुदन सुनायी दे रहा है तो अनामिका की 'रिश्ता' नामक कविता उम्मीद की नयी किरण है।

5.3 प्रकृति बोध

'प्रकृति' से यहाँ तात्पर्य मात्र वनस्पतियों से नहीं है बल्कि उन समस्त

1. ज्योति चावला - माँ का जवान चेहरा, पृ. 67

चराचरों से हैं जिनसे यह जगत भरा पड़ा है। इसके प्रति इनसान के मन में जो भाव है वह प्रकृति बोध है। वैज्ञानिक विकास और औद्योगीकरण की उपज 'उपभोग संस्कृति' के कारण मानव और प्रकृति के बीच का तालमेल बिगड़ गया जिसकी वजह से प्रकृति के प्रति मानव नकारात्मक दृष्टि अपना रहा है। संवेदनशील साहित्यकार प्राकृतिक संकटों को देखकर अपनी लेखनी चलाते हुए समाज को जागृत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। समकालीन स्त्री कविता में यह प्रवृत्ति काफी गंभीरता के साथ प्रकट हुई है। यहाँ एक ओर कवयित्रियों ने स्त्री और प्रकृति दोनों के उद्धार को अपना जीवनादर्श बनाया है और दूसरी ओर इस आदर्श पर चलते हुए पारिस्थितिक संकट के कारणों पर प्रतिरोध भी ज़ाहिर किया है। इसका उल्लेख निम्नांकित शीर्षकों में हुआ है।

5.3.1 पारिस्थितिक स्त्रीवाद

इस सोच की बुनियाद में प्रकृति और स्त्री जो समानधर्मी हैं, उसके ऊपर, पुरुषसत्तात्मक समाज के शोषण को समाप्त करने का इरादा निहित है। दोनों उनके उपभोग की वस्तुएँ हैं। पारिस्थितिक स्त्रीवाद स्त्री और प्रकृति दोनों के शोषण के खिलाफ लड़कर समस्त जैव विविधता के साथ सहिष्णुता का मनोभाव रखता है। समकालीन स्त्री कविता इस आदर्श को अपनाकर, एक अलग पहचान बनाती हुई दिखती है। इस दृष्टि से कवयित्रियों के कुछ काव्यांश यहाँ उद्धृत हैं।

कवयित्री निर्मला पुतुल की निम्नांकित पंक्तियों की ओर एक दृष्टि अनिवार्य है-

"मैं धरती नहीं
पूरी धरती होती है मेरे अंदर
पर यह नहीं होती मेरे लिए।"[1]

पारिस्थितिक स्त्रीवाद में मानवता की भलाई केलिए स्त्री और प्रकृति दोनों को बचाने का दायित्व स्त्री पर है। उपर्युक्त पंक्तियों में इस दायित्व को कवयित्री अपने ऊपर ले रही हैं। इन पंक्तियों में दुख की एक आहट सुनायी देती है कि जिस धरती को वे अपने मानती है वह उनके लायक है ही नहीं। समान आशयवाली पंक्तियाँ हैं अनीता वर्मा की-

"मैंने देखे हैं पहाड़ नदी और जंगल
मेरे भीतर है पहाड़ नदी और जंगल
मेरे बाहर रहता है मेरा भीतर
मेरे भीतर मेरा बाहर।"[1]

यहाँ भी स्त्री पूरी पृथ्वी को अपने अंदर समा रही है। संपूर्ण प्रकृति को कवयित्री अपने अंतर्मन की अभिव्यक्ति मानती हैं। उसे अपने से अलग नहीं अपने साथ लेकर आगे बढ़ रही हैं मानो प्रकृति उन्हीं के जीवन का एक अंश हो । कवयित्री चंपा वैद की पंक्तियाँ देखिए -

"भीतर का पेड़ उग रहा है
जिसके बीज मैं निगल गयी थी बचपन में

---

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 3
2. अनीता वर्मा - रोशनी के रास्ते पर, पृ. 102

इसके बड़े होने में पूरे साठ वर्ष लग गये
मेरी नसें इसकी जड़े हैं
मेरी नाड़ियाँ इसकी शाखाएँ
मेरे विचार इसके छोटे बडे पत्ते
शब्द भीतर अपनी जगह बनाते
उगलने लगते हैं
पिछला सब करा धरा।"[1]

ये पंक्तियाँ यह दर्शा रही हैं कि स्त्री के समान प्रकृति भी स्त्रैण है। प्रकृति और स्त्री इस कदर घुल-मिल गयी है कि प्रतीत हो रहा है जैसे स्त्री स्वयं पेड़ है। वह पेड़ जिसकी छाया में सभी जीवजंतु अपना आश्रय पाते हैं और अपना सबकुछ दूसरों के हित समर्पित करता है।

पेड़ ही वह तत्व है जिससे प्रकृति का संतुलन बना रहता है। पेड़ के प्रति अपनत्व का यही भाव नज़र आ रहा है अनीता वर्मा की 'अपना पेड़' नामक कविता में-

"मैं फुनगियों में सिर रखती हूँ तने में शरीर
अपने पत्तों वाले हाथ हिलाती हूँ
बचपन की किसी आँधी में उसके साथ
मैंने बारिश को पुकार है
साथ-साथ हम बड़े हुए मनुष्यों के जंगल में।"[2]

इन पंक्तियों में स्त्री और पेड़ को अलग करके देखा ही नहीं जा रहा है। जिस तरह पेड़ सबकेलिए उपयोगी बनकर जीता है, उसी तरह स्त्री भी

1. चंपा वैद - स्वप्न में घर, पृ. 82
2. अनीता वर्मा - रोशनी के रास्ते पर, पृ. 55

अपनी सहृदयता और आर्द्रता से जीवनराशि को आगे बढने की प्रेरणा देती है। दोनों आज शोषण के गिरफ्त में है। अर्थात् जीवनराशि का भविष्य अवरुद्ध है।

समकालीन स्त्री कविता में अनेक ऐसी कविताएँ हैं जहाँ स्त्री की तुलना पेड़ से की गयी है या पेड़ को स्त्री का प्रतीक माना गया है। कात्यायनी की 'आविष्कार', अनामिका की 'अभ्यागत', 'जादू का पेड़', सविता सिहं की 'जंगल के पेड़', आदि ऐसी ही कुछ कविताएँ हैं। इन कविताओं में प्रकृति और स्त्री के अटूट रिश्ते को दर्शाया गया है जिसका सार अनामिका की इस पंक्ति में निहित है-

"पेड हरे स्तन हैं माँ के।"[1]

यह स्त्री और प्रकृति की समान धर्मिता दर्शा रही है। इस पंक्ति की व्याख्या शब्दों के परे हैं। दूसरी ओर निर्मला गर्ग कहती हैं कि -

'मैं पेड़-पौधों की नस्ल की हूँ।"[2]

शब्द और पंक्तियों में चाहे विविधता हो, लेकिन समकालीन स्त्री कविता उजागर करना यही चाहती है कि -

" x x x मैं
बेइन्तहा प्यार करती हूँ
इस धरती को।"[3]

1. अनामिका - दूब-धान, पृ. 36
2. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तरजू, पृ. 75
3. कात्यायनी - जादू नहीं कविता, पृ. 132

उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त ज्योति चावला की 'वह टिफिनवाली', अनामिका की 'पूरे चाँद की रात', 'हरियाली है एक पत्ती का खो जाना', चिट्ठी लिखती हुई औरत, 'बहिनाबाईः इक्कीसवीं सदी', 'चौका', सविता सिंह की 'नींद में रुदन' आदि अनेक कविताएँ हैं जहाँ स्त्री और प्रकृति के अंतर्संबंध को काव्य वस्तु के रूप में प्रतिष्ठित किया है, दोनों की समान स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। इसलिए प्रकृति और लोकजीवन के जिन तत्त्वों का ह्रास हो रहा है उन्हें स्त्री अस्मिता के साथ बनाये रखने की कोशिश स्त्री कविता में बुलंद है। इस दृष्टि से ये कविताएँ पारिस्थितिक स्त्रीवाद की कविता के अंतर्गत गिने जा सकते हैं।

5.3.2 पारिस्थितिक संकट

पारिस्थितिक संकट उपभोग संस्कृति का परिणाम है। विश्व आज 'ग्लोबल वार्मिंग' की समस्या से जूझ रहा है। इस गंभीर समस्या को देखते हुए अपने परिवेश के प्रति जागरूक कवयित्रियाँ इसे अनदेखा कैसे कर सकती हैं ? अपने साथ संपूर्ण शोषित जीव-जगत के उद्धार को लक्ष्य-माननेवाली स्त्री का पर्यावरण-असुंतलन के खिलाफ प्रतिरोध ज़ाहिर करना स्वाभाविक है।

घास और मिट्टी का संगम जो हमें मुक्ति दिलाता था, हमारे मन को विस्तार देता था, आज दूषित होती जा रही है। इसे शुभ संकेत तो नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति स्वार्थ से इतना भर चुका है कि वह अपने फायदे केलिए

बेजुबान पृथ्वी को प्रदूषित कर रहा है। इसपर प्रकाश डाल रही हैं कवयित्री ज्योति चावला-

"घरों की इमारतें जितनी ऊँची होती जा रही हैं
उतने ही छोटे होते जा रहे हैं उनके दिल
और उन छोटे दिलों में अब नहीं अटपाता
वह विशाल जामुन का पेड़।"[1]

बढ़ती आबादी के कारण कंक्रीट के जंगल पैदा हो रहे हैं और बड़े-बड़े दुर्लभ, पुराने पेड़ खतम हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में इनके खत्म होने पर उन पेड़ों के नाम भी हमारी भाषा से एक दिन गायब हो जाएँगे। उपर्युक्त पंक्तियाँ इसी ओर इशारा कर रही हैं।

भविष्य की परवाह किये बिना आज मानव विकास के नाम पर पर्यावरण से विवेकहीन बर्ताव करता जा रहा है। मानव की खुद की गतिविधियों ने पृथ्वी के साथ ही साथ उसके स्वयं के अस्तित्व पर भी प्रश्नचिह्न लगा दिया है। इसके दूरगामी प्रभावों के प्रति कवयित्रियाँ चिन्तित दिखाई देती हैं। विकास के नाम पर जंगलों का सफाया हो रहा है। जंगल की ताज़ा हवा तभी बची रह सकती है जब पेड़ों का काटना रोका जा सके। उन पेड़ों के नाम तभी सुरक्षित रह सकते हैं जब ये पेड़ पृथ्वी पर जिन्दा रहेंगे। नदियों की निर्मलता और पहाडों का मौन यानी पहाडों की संस्कृति तभी बची रह सकती है जब वहाँ औद्योगीकरण न हो। किन्तु सब कुछ इसके विपरीत

1. ज्योति चावला - माँ का जवान चेहरा, पृ. 46

हो रहा है। कवयित्री के ये पंक्तियाँ-

"पेड़ कट रहे थे
मिट्टी गल रही थी
बारिश का बोझ संभाल नहीं पाया
धसक गया पहाड़।"[1]

-पर्यावरण के प्रति उनके विशेष अनुराग के व्यक्त कर रही हैं। इन पंक्तियों में कवयित्री प्रकृति और साथ ही मानवीय संवेदना के इस ह्रास को देखकर रचनात्मक ढंग से उसके प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त करती हैं।

पेड़ों की ही नहीं नदियों की स्थिति भी बदतर है। कहीं नदी सूखने की समस्या तो कहीं नदी प्रदूषित होने की । नदियाँ हमारी संस्कृति की धरोहर रही हैं। जिनपर हमारा जीवन टिका है, या जो चीज़ें हमारे जीवन का आधार है आज वे ही खो रही हैं। 'नदी जो खो गई' नामक कविता में निर्मला गर्ग सरस्वती नदी की याद दिलाते हुए कहती हैं-

"सरस्वती तुम चली गई
रह गयी रेत
क्या तुम वाकई थी?
x x x
सूखे खेत भला कुछ भी
कैसे सजो पाएँगे
तुम्हारा पानी उनकेलिए जीवनद्रव था।"[2]

आज यदि धन धान्य से संपन्न रहे इस क्षेत्र में कोई दृश्य दिखाई देता

1. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराजू, पृ. 38
2. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराजू, पृ. 39

है तो वह है पानी की तलाश और उसके संरक्षण केलिए किए जा रहे प्रयासों का। वैज्ञानिक बताते हैं कि प्रकृति जो भी आचरण करती है वह मनुष्य का उसके साथ हो रहे व्यवहार के आधार पर है। कवयित्री की इन पंक्तियों में सरस्वती नदी के गायब होने का गम झलक रहा है तो निर्मला पुतुल की कविताओं में गंगा को बचाने की आहट सुनायी देती है। उन्हें दुख है इस बात का कि दाल-रोटी के मुद्दे की तरह गंगा की मुक्ति का सवाल कोई उछाल नहीं पा रहा है।

आज का मानव अपने स्वार्थ केलिए प्रकृति को दूषित करने से नहीं कतराता। भले ही उससे कोई और प्रभावित हो रहा हो या किसी के जीवन केलिए घातक सिद्ध हो। उसे सिर्फ अपना स्वार्थ साधना है। प्रकृति की सुन्दर दृश्यावली अब ड्राइंग रूमों में टंगी पेंटिंग्स तक सीमित होती जा रही है। इस तरह का प्रश्न अब प्रकृति प्रेमियों को दिन रात सताने लगा है। भौतिकता और विलासिता के दैत्य ने आज ऐसा विकराल रूप धारण कर लिया है कि उसने मनुष्य की कुछ ऐसी मति फेर दी है कि वह प्रकृति का दुश्मन बन गया है। धन कमाने और वैभवशाली जीवन जीने के फेर में मनुष्य ने सजी-धजी सौन्दर्ययुक्त प्रकृति की ऐसी-तैसी करने केलिए अपने हाथ में कुलहाड़ी उठा ली है। इस तरह के स्वार्थी लोगों को निशाना बनाकर कवयित्री पूछती हैं-

> "क्या तुमने कभी सुना है
> सपनों में चकमती कुल्हाडियों के भय से
> पेडों की चीत्कार...?

कुलहाडियों के वार सहते
किसी पेड़ की हिलती टहनियों में
दिखाई पड़े हैं तुम्हें
बचाव केलिए पुकारते हज़ारों-हज़ार हाथ?"[1]

इन पंक्तियों में कवयित्री पर्यावरण असंतुलन केलिए जिम्मेदार कारणों को पहचानकर तथा सबके सामने इस ज्वलंत प्रश्न को रखकर समाज को सोचने केलिए बाध्य कर रही है जिन्हें न नदियों का रुदन सुनायी देता है न टूटकर बिखरते पत्थरों की चीख। कवयित्री को एहसास हो रहा है मानो प्रकृति की प्रत्येक वस्तु अपने अस्तित्व की छटपटाहट में है। मनुष्य इस कदर स्वार्थी हो गया है कि निर्जीव पत्थरों को, बड़ी चट्टानों को भी फाड़कर अपनी पैरों तले बिछा देता है। प्रकृति में होनेवाली ये तमाम विनाश लीलाएँ उपभोग संस्कृति के ही नतीजे हैं। सुन्दरलाल बहुगुणा के शब्दों में 'संस्कारित होना ही विकास है। भारतीय संस्कृति में ऐसे ही विकास को संस्कृति का पर्याय माना गया है। परंतु भारतीय गणतंत्र में संस्कार नहीं अपितु भोगलिप्सा केलिए बलात्कार की प्रवृत्ति बढ़ी है।"[2] मानव अपनी भोगलिप्सा की पूर्ति केलिए प्रकृति पर बलात्कार करता है, और प्रदूषण को जन्म देता है। ऐसे में सुन्दर-सुमोहित प्रकृति 'सुनामी', 'कट्रीना', 'सैंड़ी' और अब 'ओखी' के नाम से विकराल रूप धारण कर रही है। भविष्य में प्रकृति का कौन सा गुस्सैल रूप हमारे सामने प्रकट होगा पता नहीं। विज्ञान के सामने लाचार खड़ी धरती के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कवयित्री के मन में शेष है एक आग्रह-

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 41
2. सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार, पृ. 83

"बच्चों केलिए मैदान
पशुओं केलिए हरी-हरी घास
बूढ़ों केलिए पहाड़ों की शांति।"[1]

प्रकृति तो मानव से काफी दूर हो गयी है। लेकिन स्त्री कविता मानव को प्रकृति से जोड़ रही है। यह एक सच्चाई है कि मनुष्य जाति का भविष्य धरती के साथ उसके व्यवहार पर निर्भर करता है।

उपर्युक्त पंक्तियों के अतिरिक्त अनीता वर्मा की 'नीम का पेड़', कात्यायनी की 'नगरपालिका को पत्र', अनामिका की 'पॉलीथीन', सविता सिंह की 'नाचो पृथ्वी' चंपा वैद की 'दो पेड़' आदि कुछ कविताएँ हैं जो मानवराशि को प्रकृति से जोड़ने का कार्य कर रही है, जिन्हें कवयित्रियों के संवेदनशील मन का परिणाम कहा जा सकता है।

5.4 सांस्कृतिक स्वत्वबोध

संस्कृति संस्कारमूलक होती है। वास्तव में 'संस्कृति' बड़ा व्यापक शब्द है। इससे मनुष्य के उस विकास का बोध होता है जो उसने असभ्य-अवस्था से लेकर सभ्य और सुव्यवस्थित जीवन तक पहुँचने में किया है। इस दृष्टि से देखा जाय तो संपूर्ण मानव-जाति की संस्कृति एक ही है, किन्तु मानव-इतिहास के आरंभ से अब तक मनुष्य के जीवन-क्रम में परिस्थिति, वातावरण आदि कारणों से अनेक परिवर्तन हुए हैं और अलग-अलग प्रभाव पड़े हैं। यही कारण है कि संसार में मानव जाति के भिन्न-भिन्न समूहों में

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 27

सांस्कृतिक विकास की प्रवृत्तियों और दिशाओं में समानता होते हुए भी अलग-अलग प्रदेशों में रहनेवाली जातियों में भेद पाया जाता है। एक जाति और दूसरी जाति, एक देश से दूसरा देश, एक युग से दूसरा युग इसी आधार पर अलग-अलग पहचान बनाते हैं।

"भारतीय परंपरा के मूल स्वर' में पांडे गोविन्द चन्द्र जी ने इस बात का उल्लेख किया था कि काल में घटित और विघटित ऐतिहासिक संरचनाएँ संस्कृति का बाहरी कलेवर हैं। उसमें अभिव्यक्त अकालिक मूल्यों की चेतना उसका आंतरिक पक्ष अथवा स्वरूप है। आस्था पर आधारित भारतीय संस्कृति के स्वत्व का प्रश्न जिस रूप में हमारे सम्मुख है उससे यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि भारतीय संस्कृति के मूल से जुड़े उन पहलुओं पर दृष्टि डाली जाए जिनका एक बड़े पैमाने पर आज पश्चिमीकरण हो रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी इस बात के समर्थक रहे थे कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। तात्पर्य यही है कि भारत की संस्कृति गाँवों की संस्कृति हैं, खेती की संस्कृति है। प्रकृति की संस्कृति है। भारतीय पाश्चात्यों से भी अधिक पाश्चात्यीकृत होते जा रहे आज के संदर्भ में गाँव किसान, प्रकृति से जुड़े आदिवासी जन समुदाय आदि का अस्तित्व दाव पर लगा है। समकालीन स्त्री कविता में अभिव्यक्त सांस्कृतिक स्वत्वबोध की झलक को प्रस्तुत शीर्षक के अंतर्गत रेखांकित किया जा रहा है।

भारत में मूलतः संस्कृति का उत्सबिन्दु और विस्तार क्षेत्र ग्रामीण

समाज रहा। किन्तु देखते-देखते गांव शहर हो गए। शहर में जिस चकाचौंध और रंगीनियों के नज़ारे दिखाई देते हैं वे गाँव में पहुँच गये हैं। गाँव न तो भारतीय सांस्कृतिक पहचान का वह गाँव रहा और न ही गाँव के रहनेवाल व्यक्ति गंवार रहा। कवयित्री कहती हैं -

"शहर है यह
दहकते अंगार से सौन्दर्य का
बर्फ से व्यवहर
गुनगुने आभार
ढके मन
तन उघड़ आने के
अनोखे गर्व का।"[1]

आखिर गाँवों की बदलती रौनक का कारण क्या है? सरकार की बजट प्रधान योजनाएँ या वैश्वीकरण के दौर में गाँवों में प्रवेश कर रहा बाज़ारवाद। ग्राम स्वराज के हल्ले में ग्राम खुद समझ नहीं पा रहा है कि उसे किस तरह का गाँव रहना है। गाँव के इस सोच में शामिल है वह ग्रामीण जिसे गंवार कहा जाता रहा है और जिसका जन्म आज़ादी के पूर्व हो चुका था उस ग्रामीण को शहर में पहुँचाने केलिए जब सड़क बनाई जाने लगी, मोटरें चलाई जाने लगीं, रेलगाडियों को उसके स्टेशन पर रोका जाने लगा तो उसे लगा वह भी उसी नस्ल का एक जीव है जो शहर में पैदा होते हैं। विकास के दो तीन दशक में उसने महसूस किया कि उसमें स्वाभिमान की भावना जन्म लेने लगी है। जहाँ उसे काल्या या गंगू के नाम से पुकारा जाता था,

1. ममता कालिया - खाँटी घरेलू औरत, पृ, 34

मतदान सूची में अब उसका नाम कालूराम या गंगाराम हो गया है। इस शहरी संस्कृति पर अपना केद प्रकट कर रही हैं कवयित्री -

हमारी सारी सक्रियता पर
गीला कपड़ा डाल देगा यह शहर
धीरे-धीरे हमें
पालतू नागरिक बना डालेगा यह शहर।"[1]

आज भारत अपनी परंपरागत संस्कृति से दूर होता हुआ इण्डिया बन चुका है। शहरी संस्कृति में तो विदेशी लक्षणों के प्रभाव बहुत पहले से आ ए थे, किन्तु अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी भारत कम और इण्डिया की संस्कृति की मात्रा अधिक दिखाई दी जा रही है। सही है कि आज संसार एक गांव बन गया है और व्यवसाय इतना ज़्यादा हावी हो गया है कि गांवों में भी विश्व बाज़ार घुस गया है। इस दौर में कृषि क्षेत्र जिस तरह उपेक्षा का शिकार होता रहा है, उसके दुष्परिणामों की तरफ ध्यान देना अब ज़रूरी हो गया है। कृषि का क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। विगत कुछ वर्षों में बाज़ारवाद की उपस्थिति से उद्योग, व्यवसाय और सेवा के क्षेत्रों में जिस तरह आर्थिक रफ्तार देखी जा रही है उसकी तुलना में कृषिक्षेत्र एक कमज़ोर कड़ी बनता जा रहा है। कृषि विकास की योजनाओं और कृषक कल्याण के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन उस तरह की रफ्तार नहीं पकड पाए जिसकी अपेक्षा की जाती रही है। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि किसान परेशान हो गए। नीतियों और नियमों के बावजूद भी किसानों के आवश्यक

---

1. ममता कालिया - खाँटी घरेलू औरत, पृ, 85

साधन सुविधाएँ मुहैया नहीं कराए जाने और उनकी उपजों का वाजिब मूल्य नहीं मिल पाने के कई प्रकरण प्रकाश में आए। यह किसा जीवन की त्रासदी है। जिसे समकालीन कवयित्री यों दर्ज कर रही हैं -

"कचहरी के चक्कर लगाता
पानी की आस में प्याऊ केलिए दर-दर भटकता
मंडी में बोरों से लदी गाड़ी की चौकीदारी करता
बाद भी इसके दो-चार बोरे गेहूँ गायब हो ही जाते हैं
x x x
बाखर और अटारी में बमुश्किल खीसे से पैसे निकालता
चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए की तर्ज़ पर
और बाज़ार में उलट जाती पूरी जेब
लुटा-पिटा अगली फसल की आस में गाँव को लौटता
ये हमारे समय का किसान है न कि किसान का समय है ये।"[1]

विभिन्न राजनीतिक दलों की सत्ताओं के चलते योजनाओं का राजनीतिकरण होता चला गया। यही किसान जीवन की त्रासदी का कारण है। समकालीन स्त्री कविता में एक ओर भारत की किसानी संस्कृति को बचाने की कोशिश मुखर है तो दूसरी ओर जल, जंगल और ज़मीन से जुड़ी अपनी आदिम संस्कृति को बनाये रखने का आदिवासियों का प्रयास कायम है।

आदिवासी लोग दीन है, हीन है, और अनपढ़ है। लेकिन वे अपनी संस्कृति को कायम रखकर जीते हैं। पर्यावरण का संरक्षण-संवर्धन करने का महान कार्य आदिवासी जनजातियों ने बड़ी सहजता से, लगन से किया है। यही कारण है कि उन्हें आज भी प्रकृति पुत्र की संज्ञा से अभिहित किया जाता

1. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 92

है। प्रकृति से जुड़ी इनकी संस्कृति में मिट्टी की महक विद्यमान है। उनकी बोली से उनका गीत झरता है, वाणी से उनका संगीत फूटता है और उनकी चाल से नृत्य छलकता है। अपने इस गीत, संगीत, नृत्य को वे किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहते। उपभोग संस्कृति के परिणाम स्वरूप अपनी संस्कृति में आए संकट के प्रति वे जागरूक हैं। फिल्मी धुन पर अपने गीतों को तोड़-मरोड़कर गाते सुनकर वे आगाह करते हैं-

"तोड़े-मरोड़कर बिगाडे नहीं
उसका स्वरूप
झौंसे-पकाए नहीं
वक्त की आग में
भूख की डेगची में सीझांए नहीं
भात की तरह उसे।"[1]

तात्पर्य यह है कि उनका संगीत उनकी पहचान है।

यह बात ध्यातव्य है कि लंबी संस्कृति की परंपरा कोई भी हो उसमें कुरीतियाँ, कुप्रथाएँ, अपने किस्म के कर्मकांड और अंधविश्वास पनपते हैं। आदिवासी समाज भी इनसे मुक्त नहीं है। किन्तु लोक देवताओं के प्रति इनकी आस्था और विश्वास को वे बनाये रखना चाहते हैं। कवयित्री का मानना है कि इन कथाओं के माध्यम से, उसके होने के भ्रम, उसके होने के एहसास से हमारे भीतर कुछ न कुछ डर बना रहता है और इस डर की वजह से अगर हम कुछ गलत करने से रुक जाते हैं तो इस विश्वास को बनाये

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 76

रखने में कोई बुराई नहीं है। निर्मला पुतुल की 'माँझी-थान' नामक कविता इसका संकेत देती है।

आज के समय में परिवेश में आये बदलाव के कारण भाषा के गायब होने की चिन्ता तथा उसे बचाने की कोशिश और चाह इन कविताओं में देखी जा सकती है। क्योंकि इनकी भाषा ही इनकी संस्कृति को जीवित रखती है। यही नहीं आदिवसियों की पुरानी तथा संस्कृतिक विरासत की चीज़े भी धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं। इन चीज़ों की हालत से अवगत करवाते हुए 'संताल परगना' कविता कहती है-

"खो गई है इसकी पहचान
कायापलट हो रही है इसकी
तीर-धनुष-माँदल-नगाड़ा-बांसुरी
सब बटोर लिये जा रहे हैं
लोग संग्रहालय।"[1]

यह समस्या हमारे देश के सभी परगनों पर लागू होती है। इन पंक्तियों में उद्धृत तीर, धनुष, माँदल, नगाड़, बांसुरी आदि वस्तुएँ आदिवासी संस्कृति के परिचायक हैं। इन पंक्तियों में अपनी बस्तियों को शहर की आबो-हवा से बचाने की सख्त ज़रूरत का आभास मिल रहा है।

आज भूमंडलीकरण की इस नयी सदी में आर्थिक और मानसिक रूप से हम पूरी तरह गुलामी की ओर बढ़ रहे हैं। हम अपनी संस्कृति को भूलकर अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। यह स्थिति बहुत ही भयानक नज़र आती है।

1. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में, पृ. 24

ऐसे में कवयित्री आगाह कर रही हैं-

"कितना भी हो जायें आधुनिक
या छू लें चाँद
आखिर लौटना होगा
जल ज़मीन और जंगल
ओखली ढेकी और हल
यही हमारी संस्कृति की
धरोहर।"[1]

ये पंक्तियाँ प्रकृति से जुड़ी संस्कृति के प्रति कवयित्री का लगाव व्यक्त करती हैं जिसे वे हर कीमत पर बनाये रखना चाहती हैं। निर्मला पुतुल, सरिता बडाइक आदि की कविताओं में आदिवासियों की नष्ट होती संस्कृति को वापस अपनी ओर खींचने की चाह प्रकट होती है। इनके अतिरिक्त अनीता वर्मा की 'झारखंड', निर्मला गर्ग की 'चाँदनी चौक', 'सड़क की ख्वाहिश', दिल्ली', 'कारोबार', ज्योति चावला की 'दयाराम', तस्वीरें,' अनामिका की 'मायानगरी का प्रथम वर्ष' आदि कविताएँ क्रमशः आदिवासी जनसंस्कृति, महानगरीय परिवेश, किसान जीवन, अंधविश्वासों पर व्यंग्य आदि विषयों को लेकर प्रस्फुटित हुई हैं। सांस्कृतिक स्वत्व को लेकर चिन्तित कवयित्रियाँ महानगरीय जीवन के प्रति उपेक्षा प्रकट करते हुए सादगी की ओर इशारा कर रही हैं।

5.5 जीवनदृष्टि

पिछले अध्यायों में जीवनदृष्टि को लेकर जो प्रतिपादन हुआ है उससे

1. सरिता बडाइक - नन्हे सपनों का सुख, पृ. 66

यह बात साफ ज़ाहिर है कि किसी भी महान लेखक या लेखिका का जीवन के प्रति एक समुचित दृष्टिकोण रहता है। समकालीन कवयित्रियों की कविताओं में व्यापक अनुभव, प्रतिबद्ध जीवनदृष्टि और परिवर्तनवादी चेतना की मुखर अभिव्यक्ति मिलती है। स्त्री लेखन के मूल में स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता को रूपायित करने का उद्देश्य निहित है।

स्त्री स्वत्व के रूपायन में शुरुआती दौर में समाज में जितने नारीवादी आंदोलन कार्यरत थे उनमें से कइयों का आदर्श समाज में पुरुषों को पूर्ण रूप से नकारने की मानसिकता से जुड़ा था। किन्तु समकालीन स्त्री रचनाकारों ने इस सोच के प्रति नकारात्मक दृष्टि अपनायी हैं। ऐसे स्त्री विमर्शकारों पर व्यंग्य करते हुए कवयित्री कह रही हैं-

> "मिल जानी चाहिए अब मुक्ति स्त्रियों को
> आखिर कब तक विमर्श में रहेगी मुक्ति
> बननी चाहिए एक सड़क, चलें जिस पर सिर्फ स्त्रियाँ ही
> मेले और हाट-बाज़ार भी अलग
> किताबें अलग, अलग हों गाथाएँ
> इतिहास तो पक्के तौर पर अलग
> खिड़कियाँ हों अलग-
> झाँके कभी स्त्री तो दिखे सिर्फ स्त्री ही
> हो सके तो बारिश भी हो अलग।"[1]

ये पंक्तियाँ यह दर्शा रही हैं कि समकालीन स्त्री कविता पुरुष के विरोध में खड़ी नहीं है बल्कि वे अपनी जीवन यात्रा में पुरुष की सहभागिता

---

1. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 45

की अपेक्षा रखती हैं। स्त्री कविता पुरुष विरोधी नहीं बल्कि पितृसत्ता के विरोधी है जिसके तहत जीने केलिए स्त्री कविता प्रतिरोध की मांग करती हैं-

‘मनुष्यता की रक्षा केलिए
कहना नहीं, सहना तुरंत बंद कर देना होगा।”[1]

यहाँ कवयित्रियाँ एक स्वर में इस बात को स्वीकार रही हैं कि स्त्रियों की चुप्पी ही उनकी गुलामी के अभिशाप का मूल कारण है। जब चुप्पी टूटेगी तब संघर्ष छिड़ेगा। बहुत कुछ खोना भी पड़ेगा।

किन्तु कवयित्रियाँ निराश होने के पक्ष में नहीं हैं। वे जिन्दगी में आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रही हैं-

“जाने केलिए जिसे घर हो न घाट
    जहन्नुम, न जंगल!
उसे अपने भीतर ही
    खेनी चाहिए
    एक नाव।”[2]

इन नाव को आगे बढ़ाते समय एक बात याद रखें कि

“उम्मीद, विश्वास
बटुए में रखे संजो के।”[3]

कवयित्रियों ने अपने जीवन में इस बात को महसूस किया है कि स्थिरोत्साह और दृढ़ निश्चय के रहते हुए ज़िन्दगी में कुछ भी असंभव नहीं

1. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 84
2. अनामिका - बीजाक्षर, पृ. 17
3. अनामिका - अनुष्टुप, पृ. 98

है। थोड़ी सी उम्मीद को बनाये रखना है। सोच को विस्तार देकर व्यापक दृष्टि अपनानी है। अपने समय से सरोकार रखते हुए समाज की जड़ीभूत विकल मान्यताओं का निराकरण करके तर्क बुद्धि के साथ गतिशील होने के पक्ष में हैं कवयित्री-

"जीवन है गतिमान दृष्टि को गतिज बनाओ
मत बाँधो सुन्दरता को जड़ मानक द्वारा
नैतिकता के मूल्य भी भला कैसे थिर हो?
अपनी दृष्टि-उड़ान-लक्ष्य तुम-क्षितिज बनाओ

x x x

चिन्तन का, शब्दों का व्यापक क्षितिज बनाओ
जीवन है गतिमान, दृष्टि को गतिज बनाओ।"[1]

समकालीन स्त्री कविता प्रगतिशील जीवनदृष्टि अपनानेवाली हैं जो अपने जीवन की सफलता की कुंजी अपने हाथों में मानती हैं।

कवयित्रियों के इस व्यापक दृष्टिकोण में संसार की प्रत्येक जीवंत इकाई केलिए जगह मिली है। हरेक के व्यक्तित्व को समर्थन मिला है। समकालीन स्त्री कविता इस बात को स्वीकार करती है कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी जीवन रीति है, जो दूसरों से अलग है। इस बात को सूचित करते हुए अतीत के प्रति उनके लगाव को दर्शाती हैं ये पंक्तियाँ-

"अपना-अपना ढंग है
पुरानी चीज़ों को देखने का
बीत गयी बातों पर
सोचने का।"[2]

---

1. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 99
2. वही - पृ. 78

समकालीन कवयित्रियाँ अतीत को अपने ऊपर हावी न होने देकर कर्मपथ पर अकुंठ आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रही हैं। हर चीज़ को नये अंदाज में देखने में तत्पर हैं ये, यहाँ तक कि प्रेम में भी -

"मुझे प्रेम चाहिए
सारी दुनिया रहती हो जिसमें
प्रेम चाहिए मुझे।"[1]

इन पंक्तियों में स्त्री कविता की व्यापकता साफ नज़र आ रही है। उनके प्रेम में संपूर्ण जगत समाहित है। वर्तमान समय में जब सब प्रेम में स्वार्थी होते दिख रहे हैं तब यहाँ स्वार्थ को त्यागा जा रहा है। प्रेम चाहे प्रेमी से हो या संतान से।

संतान के प्रति प्रेम को ही तो ममता या वात्सल्य के नाम से अभिहित किया जाता है। अब तक हिन्दी साहित्य के अंतर्गत वात्सल्य वर्णन के संदर्भ में प्रसवोपरांत, बालसुलभ क्रीड़ाओं को देखकर माता-पिता के मन में होनेवाले वात्सल्यविह्वल मनोदशाओं का चित्रण ही देखने को मिला है। समकालीन स्त्री कविता में वात्सल्य वर्णन का एक नया पक्ष उभरा है जो उनकी जीवनदृष्टि का निर्धारण करता है। समकालीन नारी शिक्षित होने के कारण यह बात बखूबी समझती है कि एक शिशु प्रसव से पहले गर्भावस्था में ही बाहरी चेष्टाओं को समझता है, उसपर उसका प्रभाव भी पड़ता है। इसीलिए समकालीन स्त्री कविता में गर्भावस्था में मातृ-हृदय में उत्पन्न वात्सल्य का वर्णन मिलता है-

---

1. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 28

'मैं कल्पना करने लगती हूँ उसकी उत्सुक आँखों की
उसकी चंचलता की, उसकी मासूमियत की
और उसकी बेसब्री की भी
मुझे दिखने लगता है उसका छोटा लाल-सा मासूम चेहरा
और मैं मुग्ध हो जाती हूँ।"[1]

कवयित्री ज्योतिचावला की पंक्तियों में द्रष्टव्य उनका वात्सल्य बोध मात्र अपनी संतान केलिए ही नहीं है बल्कि अन्य बच्चों के प्रति भी उनके मन में यही भाव उद्भूत होता दिखता है। कवयित्री नीलेश रघुवंशी गर्भस्थ शिशु से संवाद भी करती है। इन सबका तात्पर्य यह है कि समकालीन स्त्री अपना प्रेम पूरे संसार के साथ बाँटना चाहती है। यह उनका नया जीवनबोध है। वर्तमान समय में इनसान की बदलती मनोदशा के साथ संचार करती हैं कवयित्रियाँ। समकालीन स्त्री कविता में आत्मसुधार और आत्मालोचन की भावना इस हद तक निहित है कि एक अच्छे कवि की पहचान उनमें है जो उनकी कविताओं के ज़रिए हमारे सामने है। आलोच्य युगीन कवयित्रियों की जीवनदृष्टि किसी विशेष विचारधारा के प्रभाव की उपज है, यह हम नहीं कह सकते। किन्तु उनकी कविताओं में सबसे सुन्दर दुनिया केलिए कहीं धार्मिक एकता ही चाह प्रकट हुई है तो कहीं कम्युनिस्ट होने की ज़रूरत को महसूस कर रही हैं। सारतः समकालीन स्त्री कविता जीवन में निरंतर संघर्ष करते रहने की प्रेरणा देते हुए जीवन के हरेक दिन को ऐसे जीने का संदेश दे रही है जैसे वह अंतिम हो। समकालीन कवयित्रियों की जीवनदृष्टि आशावादी है।

1. ज्योति चावला - माँ का जवान चेहरा, पृ. 72

5.6 भाषागत विशेषताएँ

काव्य-भाषा का प्रश्न दर असल वहाँ बहुत महत्वपूर्ण हो उठता है, जहाँ हम अपनी रचनाओं को, एक भिन्न संसार और सौन्दर्य-मान की रचना करने के पहले अपने मुक्ति संघर्ष में विश्वसनीय और कारगर हथियार बनाने का इरादा लेकर चलते हैं। यहीं पर रचना सामर्थ्य का भी प्रश्न उठता है। अपने विचारों को दृढ़, स्थिर एवं गंभीर बनाने के उद्देश्य से समकालीन स्त्री कविता की भाषा अपने-आप में विविधता को लेकर प्रकट होती है।

शब्द भाषा का आधार है। समकालीन स्त्री कविताओं में संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा अन्य देशज, विदेशी शब्दों का प्रयोग भरपूर मात्र में विद्यमान है। 'तुष्ट', 'हतप्रथ', 'निर्वाक्', 'प्रत्युत्पन्नमतित्व', 'किंकर्त्तव्यविमूढ़', 'परिणति', 'आकलन', 'कुशल', 'रणनीति', दक्षता', 'दत्तचित्तता', 'छिद्र', 'निरभ्र' 'नित्यप्रति', उद्यम, 'अहर्निश', 'क्षणभंगुर', 'उभयनिष्ठ', 'समता' आदि संस्कृत 'रिपोर्ट', 'ड्यूटी', 'कप-प्लेट', 'डिग्री', 'क्रॉस', 'स्लीपर', 'स्पिरिट', 'फुटपाथ', 'स्पीडब्रेकर', 'ऑपरेशन', 'डॉक्यूमेंट्री', 'स्टीड़ी शॉट', विंग्स, 'फिंगर प्रिंट', 'इंजन', रिज़लट', 'वाक् आउट', 'प्रोग्राम', 'रेड अलर्ट', 'रॉयल्टी', 'एजेंट', 'फायर', कैरियर, कॉम्प्लेक्स आदि अंग्रेज़ी, 'पंगा', 'बगल', 'गुलम', 'पेट', धंधा जैसे देशज और 'दहलीज़', 'ज़ेहन', 'फितरत', 'हिमाकत', 'हैरत', 'हिफाजत' आदि अरबी शब्दों के प्रयोग से कवयित्रियों ने अपनी भावाभिव्यक्ति को विशेष भंगिमा प्रदान की है जिससे स्वाभाविक प्रवाह आ जाता है। 'चाकोड', 'लेदरा', 'मडुवा', पुटूस', 'ठेहुना' जैसे

आंचलिक शब्दों के प्रयोग भी कम नहीं है।

कविता के चमत्कार-उद्रेक केलिए कवयित्रियों ने अलंकारों का भी सहारा लिया है। कविता में या तो प्रथम और द्वितीय पंक्ति के अंतिम वर्णों में या द्वितीय और चतुर्थ पंक्ति के अंतिम वर्णों में व्यंजन के साम्य को दिखाकर अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है। 'साथ-हाथ', 'अचारी-यारी', 'गुस्सा-किस्सा', 'बीमारी -तैयारी', 'गतियाँ-अतियाँ', 'नाव-ठाँव', 'घातें-बातें', 'रेला-मेला' आदि शब्द जोड़ियाँ इसके उदाहरण हैं।

कहीं पर कवयित्री केलिए अपने पस्त अकेलेपन को सहना इतना मुश्किल बताया है जितना कि बारिश में बदन पर सीले कपड़े पहनना। यह प्रयोग अर्थालंकारों के प्रति समकालीन स्त्री कविता के लगाव को व्यक्त करता है।

बिम्बों की उपस्थिति ने समकालीन स्त्री कविता में नया भावोन्मेष भर दिया है जिसमें वस्तु का यथार्थ रूप नहीं बल्कि उसका प्रितबिंब रहता है। स्त्री कविता में अभिव्यक्त यह दृश्य बिम्ब-

"खोलती हूँ जैसे ही खिड़की
दिखते हैं
सड़क पर शौच करते लोग
कीचड़ में भैंसों के संग धंसते बच्चे
बिना टोंटी वाले सूखे सरकारी नल पर
टूटे-फूटे तपेले में अपना मुँह गड़ाए

एक-दूसरे पर गुर्राते कुत्ते
दिखता है
कूडे और नालियों पर बसर करता
सडाँध मारता जीवन।"[1]

-हमारे सामने देश की दरिद्रता का दर्दनाक चेहरा प्रस्तुत कर रहा है। कवयित्रियों की कविताओं में उभरकर आए ये बिम्ब उनके काल्पनिक जगत में विचरण करने का एहसास नहीं बल्कि उनके यथार्थबोध को दर्शाते हैं। बिम्बों के समान विभिन्न स्थितियों के प्रकाशन केलिए स्त्री काव्य में प्रतीकों की प्रभावशाली योजना भी द्रष्टव्य है। प्रतीकात्मक प्रयोग एक ही शब्द अथवा शब्द चित्र के द्वारा अनेक अनुभूतियों अथवा विचारों की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरण केलिए वृद्ध जीवन की झांकी को प्रस्तुत करती इन पंक्तियों में-

"बच्चा है 'पुरातत्त्व सर्वे ऑफ इंडिया'
मैं उसकी मोहनजोदाडो - हडप्पा।"[2]

'पुरातत्त्व सर्वे ऑफ इंडिया' से तात्पर्य बच्चे की प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने की इच्छा से है और 'मोहनजोदाडो-हडप्पा' प्रतीक है उस वृद्ध व्यक्तित्व का जो अपने-आप में एक इतिहास है, जिन्हें हर प्राचीन परंपरा का ज्ञान रहता है। इसी तरह कात्यायनी ने 'सिटकिनी' को मनुष्य की कायरता का प्रतीक माना है तो अनामिका ने 'दरवाज़ा' को स्त्री का प्रतीक

1. नीलेश रघुवंशी - कवि ने कहा, पृ. 109
2. अनामिका - खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 64

माना है जिसे जितना पीटा गया दरवाज़ा उतना खुलता गया। कवयित्रियों की कविताओं में जगह-जगह पर प्रतीक बिखरे पड़े हैं। इस प्रकार अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति केलिए समकालीन कवयित्रियों ने विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है जिसे विशिष्ट पद्धति भी कह सकते हैं। कहीं पर वर्णनात्मक और आत्मकथात्मक शैली है तो कहीं मिथकीय और लोकगीत की शैली प्रयुक्त है। जहाँ सामान्य भाषा के द्वारा काम नहीं चलता वहीं व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग भी हुआ है। उदाहरण केलिए -

"अक्तूबर में खरीदा था
छूट मिलती है जब तीस प्रतिशत की
सौ का कुरता पड़ता है सत्तर में
दो जोडे ले लिये साल भर की छुट्टी
गाँधीजी इस एक मौके पर
सर्वाधिक सटीक मालूम पड़ते हैं।"[1]

ये पंक्तियाँ कहना चाहती हैं कि जिस महात्मा ने हमारे देश केलिए अपनी ज़िन्दगी कुर्बान की थी, उनका या उनके चिन्तन का आज कोई मायना नहीं है। उपभोग संस्कृति की गिरफ्त में पड़कर आज उनका भी उपयोग किया जा रहा है। बात व्यंग्यात्मक ढंग से ही क्यों न हो पाठक के मन पर चुभती ज़रूर है। कविताओं में संवाद शैली का प्रयोग करके नाटकीयता लाने की कोशिश हुई है। प्रयोग के धरातल पर समकालीन स्त्री कविता ने समाचार की शैली, गद्यात्मक शैली, चिट्ठी की शैली, नोटीस की शैली, नाटक की शैली आदि कई रचनात्मक तरीकों को अपनाया है।

---

1. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराजू, पृ. 17

कुछ कवयित्रियों ने शीर्षक विहीन कविताएँ की हैं, कहीं-कहीं पंक्तियों को अलग करने केलिए '/' चिन्हों का प्रयोग हुआ है। पंक्तियों के अंत में प्रश्न चिह्नों की अधिकता यह दर्शाती है कि समकालीन संदर्भ को लेकर जनमानस शंकाकुल है। द्वन्द्व में है। कविताओं में जहाँ पुरुष मानसिकता की झलक मिलती है वहां पुल्लिंग क्रिया का प्रयोग मिलता है। कुछ कविताएँ सूक्तियाँ जैसी है तो कुछ परिभाषाएँ जिन्हें एक ही शीर्षक के नीचे संख्याक्रम में दिया गया है।

कवयित्रियों ने पाश्चात्य लेखकों की उक्तियों को उद्धृत करके अपने अध्ययनशील होने का परिचय दिया है। पूर्ण विराम चिह्नों की अनुपस्थिति भी नज़र आ रही है। 'पानी' केलिए 'धरती का सारा रक्त', 'बूँदों को मिट्टी पर चिट्ठी टाइप करते देखना' जैसे कुछ नये प्रयोग देखने को मिल रहे हैं। आशय गंभीरता केलिए मुहावरे, तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। 'चुल्लू भर पानी में डूब मरना', 'मुँह में राम, बगल में छुरी', 'न घर का न घाट का', 'पौ फटना' आदि मुहावरे और 'होनी को भला टाल सका है कोई'? 'काटा वही जाए जो बोया था जैसी लोकोक्तियाँ उदाहरण हैं। समकालीन कवयित्रियों की कविताओं में रेखांकित सूक्तियाँ उनके, जीवन में अनुभवी होने का प्रमाण है।

"जीवन का सदा से / बोध गति में ही निहित है"[1], "लड़ने में थकना ही मन को/निपट अकेला कर जाता है।"[2], "सफलता उत्कृष्टता की गारंटी कत्तई नहीं।"[3] आदि सूक्तियाँ पाठकगण केलिए भी प्रेरणादायी हैं। प्रत्येक

1. कात्यायनी - सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 112
2. वही, पृ. 115
3. निर्मला गर्ग - कबाड़ी का तराज़ू, पृ. 15

इनसान की मनोवृत्ति को अपनाकर लिखी गयी इनकी कविताओं में संघर्षशील मन की गूंज है और संघर्ष करने की प्रेरणा है। इसीलिए कवयित्रियों की कविताएँ क्रांति बन गयी हैं। कवयित्रियों ने चाहे किसी भी तरह की भाषिक संरचना को अपनाया हो उनका ध्येय नारीमुक्ति और मानवमुक्ति ही रहा है। कहना यह चाहिए कि समकालीन स्त्री कविता की भाषा तथाकथित पुरुषसत्ता द्वारा अब तक की बनी-बनायी, भाषा नहीं बल्कि उनकी अपनी गढ़ी हुई भाषा है, जो भाषा के वर्चस्ववाद को भंग करने लगती है। सभी प्रदेशों की अभिव्यक्तियों को देखती-परखती है और उनमें विद्यमान सत्ताधिकारों एवं यौन-सूचनाओं को खोल देती है। किसी भी अभिव्यक्ति को पिछड़ नहीं मानती । स्त्री भाषा के इस संदर्भ में कात्यायनी की ये पंक्तियाँ काफी सार्थक एवं सांदर्भिक महसूस हो रही है कि "यदि यह कविता बन सकी एक थकी हुई मगर अजेय स्त्री की पहचान तो यह कविता रहेगी असमाप्त और यह दुनिया जब तक रहेगी, चैन से नहीं रहेगी।"[1] यह एक स्त्री का संकल्प है।

निष्कर्ष

स्त्री कविता का यह समकालीन संदर्भ विषय वस्तु की दृष्टि से बहुत ही व्यापक और शिल्प की दृष्टि से गंभीर नज़र आ रहा है। समकालीन दौर में कवयित्रियों की एक लंबी कतार नज़र आ रही है। स्त्री की यह चेतना उसके भीतर जन्मी उसके स्वत्वबोध का परिणाम है। समकालीन स्त्री कविता में यह पहचान है कि स्त्री, दलित और प्रकृति शोषण में समान है। इसीलिए

1. कात्यायनी - इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 62

समकालीन स्त्री कविता स्त्री मुक्ति के साथ हाशिये पर खड़े उन तमाम दमित-पीड़ितों के उद्धार के पक्ष में है जो पारिस्थितिक स्त्रीवादी सोच है। सबकी मुक्ति में ही वह अपनी मुक्ति मानती है। समकालीन राजनीतिक संदर्भ से बखूबी वाकिफ कवयित्रियाँ भ्रष्ट लोकतंत्र के अभिशापों को भली-भांति समझती हैं। उनमें राजनीतिक दलों के अन्तर्गत वर्तमान संस्थागत स्वामित्व को भी पहचान लेती है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में जहाँ उम्मीद की किरण दिखाई पड़ती है उसे स्वीकार करने से कवयित्रियाँ नहीं हिचकतीं। मानवहित की बातों को संजोती हुई आज की कवयित्री इस समाज के सभी स्तरों पर विद्यमान असमानताओं पर बोलती हैं। यहाँ उनका स्वत्व एक कवयित्री का बन जाता है। समकालीन स्त्री कविता में परंपराओं का अंधानुकरण नहीं है बल्कि नये जीवनमूल्यों की तलाश है। सांस्कृतिक संकट के इस संदर्भ में स्त्री कविता में सांस्कृतिक स्वत्वबोध को रूपायित करने की कोशिश विद्यमान है। युगीन साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर भी इन कवयित्रियों ने अपनी अभिव्यक्ति केलिए अपनी शैली में शिल्पों को गढ़ा। यह स्त्री भाषा की निर्मिति का ज्वलंत पड़ाव है।

❖ ❖ ❖

उपसंहार

उपसंहार

आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की कविताओं पर केन्द्रित प्रस्तुत अध्ययन काफी सारगर्भित महसूस हो रहा है। अध्ययन इस निष्कर्ष पर आ पहुँचा है कि आधुनिक हिन्दी कविता की विकासयात्रा में स्त्री कविता का लंबा तथा व्यापक इतिहास है जो अपने में वैविध्यपूर्ण है। प्रस्तुत अध्ययन की शुरुआत हिन्दी साहित्य के इतिहास में दर्ज उन कवयित्रियों के काव्याध्ययन से हुई थी मात्र जिन्हें अब तक हम पढ़ते आये हैं। किन्तु विषय की व्यापकता एवं गहराई को महसूस करते हुए हमारा ध्यान आकर्षित हुआ उन अचर्चित एवं अल्पचर्चित कवयित्रियों की ओर जिनकी लेखन की उपज हिन्दी साहित्य कोष को समृद्ध करने की क्षमता रखती है। पूर्व छायावाद युग, छायावद युग, छायावोदोत्तर युग एवं समकालीन संदर्भ के इस लंबे दौर में हिन्दी काव्यक्षेत्र में कार्यरत इन कवयित्रियों के काव्यांशों का उल्लेख प्रस्तुत शोध-विषय को एक मौलिक आयाम प्रदान कर रहा है। आधुनिक हिन्दी कविता की इन चर्चित-अचर्चित कवयित्रियों की कविताएँ अपने समय के पुरुष कवियों की तरह समाज प्रतिबद्ध होने का दावा कर रही हैं। साहित्य की अन्य विधाओं में भी इन कवयित्रियों ने अपनी सृजनात्मकता का परिचय दिया है। इसके बावजूद इन्हें साहित्येतिहास में वह स्थान नहीं मिल पाया जिसका वे हकदार हैं ।

आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की कविताओं का विवेचन-विश्लेषण इस प्रबंध के प्रत्येक अध्याय में युगानुरूप हुआ है। विश्लेषण के उपरांत यह

तथ्य उभर आया है कि स्त्री लेखन की उपज होने के कारण सभी कवयित्रियों ने स्त्री मुक्ति को प्रश्रय दिया है। अध्ययन के तहत यह ज्ञात हुआ कि हिन्दी के नवजागरणकाल में स्त्री जागरण और स्त्री शिक्षा को केन्द्रीकृत करते हुए जितने समाज सुधारक एवं नेतागण कार्यरत थे उनमें से किसी ने भी बौद्धिक रूप से स्त्री मुक्ति के प्रयास नहीं किए। शिक्षा के प्रारूप और पाठ्यक्रम के संदर्भ में सबकी एक राय थी कि आदर्श शिक्षा वही जो लड़की को सुघड़ गृहिणी, समर्पिता पत्नी और कर्तव्यपरायण माँ बनाए। कवयित्रियों की कविताओं में यह बात निर्विवाद रूप से प्रकट हुई है कि उनके भीतर जिस आत्म-चेतना का प्रसार हुआ है वह उन्हें शिक्षा द्वारा प्राप्त हुई है। उन्होंने यह महसूस किया कि उनके जीवन की बागडोर तथाकथित पुरुष वर्चस्ववादी समाज के हाथों में है। आधुनिक हिन्दी स्त्री कविता में स्त्री मुक्ति के संघर्ष का एक लंबा सफर विद्यमान है। शुरुआती दौर की कवयित्रियाँ जहाँ मुक्ति के लिए आवाज़ उठा रही हैं, वहाँ ऐसा प्रतीत होता है मानो उनकी मुक्ति किसी और के हाथ में है। कवयित्रियाँ अपनी पंक्तियों में मुक्ति की माँग करते हुए नज़र आ रही हैं। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक युग की स्त्री कविता यही आभास दिला रही है। अपनी दासता का एहसास दिलानेवाली इन स्त्री कविताओं में नवजागरण की चिनगारी दिखाई पड़ती है। मुक्ति की अदम्य चाह रखनेवाली स्त्री कविता आगे चलकर अपने ऊपर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार के प्रति विद्रोह ज़ाहिर करती हैं। स्वातंत्र्योत्तर स्त्री कविता इस बात से बखूबी वाकिफ है कि स्त्री की मुक्ति किसी और के हाथ में नहीं बल्कि उसी के अंदर मौजूद है। किन्तु इस परिवेश में जहाँ स्त्री का प्रतिरोधी व्यक्तित्व नज़र आता है,

वहीं दूसरी ओर पैरों में पड़ी हुई गुलामी की बेड़ियाँ उसे पीछे की ओर खींचती दिख रही है जहाँ धर्म और संस्कृति के नाम पर स्त्री हमेशा बंधनग्रस्त रही है। किन्तु समकालीन दौर में आकर इसकी अगली कड़ी देख सकते हैं। यहाँ स्त्री का आक्रामक व्यक्तित्व नज़र आता है। यहाँ स्त्री अपनी भीतरी चेतना को अच्छी तरह पहचानती है और अपने स्वत्व रूपायन में अपनी गढ़ी हुई भाषा में प्रतिरोध ज़ाहिर करती है। समकालीन स्त्री कविता में स्वावलंबी नारी नज़र आती है जिसे अपनी हुनर पर विश्वास है, पर निर्भरता पर नहीं। इससे पूर्व की स्त्री-छवि पुरुष के हिसाब से ढली हुई थी, कहीं-न-कहीं स्वयं स्त्री केलिए भी यही मायना रखता था। समकालीन स्त्री कविता में स्त्री का आदर्श रूप नहीं बल्कि कर्मठ रूप नज़र आ रहा है। स्त्री मुक्ति के संघर्ष की यह गाथा आज जिस मोड़ पर आकर खड़ी है वहाँ उसका स्वत्व बोध मात्र अपने में सीमित नहीं है, संपूर्ण जीवनराशि को अपने में समाती है। यहाँ आकर पारिस्थितिक स्त्रीवादी विचार सार्थक हो उठता है जिसकी नींव शुरुआती दौर की कविताओं में देखी जा सकती है। इसके तहत स्त्री अपने उद्धार के साथ संपूर्ण प्रकृति के उद्धार केलिए कार्यरत है। स्त्री के समान हाशिये पर पड़ी प्रकृति, दलित, आदिवसी आदि सभी इकाइयों के स्वत्व-संघर्ष को स्त्री कविता ने अपना ध्येय माना है। आधुनिक हिन्दी स्त्री काव्यधारा का यह वर्तमान पड़ाव स्त्री जीवन के वर्जित पहलुओं को काव्य-वस्तु के रूप में अपना रहा है जिसे अब तक अश्लीलता की कोटि में रखकर त्याज्य माना जाता रहा है। स्त्री का ऋतुमति होना, प्रसवानुभूति, आदि बातों को आज की स्त्री खुले आम वाणी देने का साहस रखती है।

संपूर्ण आधुनिक स्त्री कविता में प्रकृति के प्रति विशेष लगाव देखा जा सकता है। कहीं पर भावाभिव्यक्ति की तीव्रता केलिए प्राकृतिक उपादानों को चुना गया है तो कहीं पर स्त्री कविता प्रकृति को अपने जीवन का विस्तार मानती है। कहीं प्रकृति का सुन्दर-सुमोहित रूप विद्यमान है तो कहीं पर प्रकृति का विकराल रूप भयावह प्रतीत होता है। प्रकृति के भयानक रूप के प्रति चिन्तित कवयित्रियाँ बढ़ते औद्योगीकरण की उपज प्राकृतिक प्रदूषणों के प्रति गहरा असंतोष एवं प्रतिरोध ज़ाहिर करती हैं। कवयित्रियों की पंक्तियाँ प्रकृति के साथ उनके घनिष्ट संबंध को स्थापित करती हैं जहाँ वे अपने दुखद क्षणों में सहारी पाती हैं।

आधुनिक हिन्दी स्त्री काव्यधारा का राजनीतिक संदर्भ दो हिस्सों में बंटा हुआ है। एक स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटीश शासन का समय तो दूसरा स्वातंत्र्योत्तर नवऔपनिवेशिक संदर्भ। दोनों संदर्भ में कवयित्रियों की कविताएँ राष्ट्रीयता की भावना से मुखर हैं। ब्रिटीश उपनिवेश के समय जब भारत पराधीन था समस्त भारतीय काव्य धारा देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत थी। स्त्री कविता भी इससे अलग नहीं थी। वर्तमान दुर्दशा का चित्रण करती कवयित्रियों की कविताओं में राष्ट्रोद्‌बोधन के स्वर बुलंद हैं। स्त्री, जो पराधीनता के अभिशाप को सदियों से सहती आयी है, जब वह देश की आज़ादी केलिए लड़ेगी तो उसमें वह गंभीरता अवश्य रहेगी जो शायद किसी कवि की कविताओं में अप्राप्य है। इसीलिए कहा जा सकता है कि आलोच्य युगीन स्त्री काव्य में स्त्री जागरण और स्वदेश जागरण एक दूसरे के पर्याय

बनकर खड़े हैं। जहाँ स्वदेश जागरण को प्रश्रय मिला है वहाँ देश के अस्त-व्यस्त सामाजिक माहौल में पौराणिक-लोक कथाओं के ज़रिए नीति और आदर्श को स्थापित करने की कोशिश द्रष्टव्य है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के नवऔपनिवेशिक संदर्भ में स्त्री काव्यधारा काफी संकीर्ण नज़र आ रही है। यहाँ कवयित्रियों की कविताएँ एक साथ कई आयामों को लेकर प्रस्फुटित हुई हैं। एक ओर लोकतांत्रिक संदर्भ में जनता के मोहभंग को दर्शाते हुए व्यवस्था के जनविरोधी रूप से परिचय कराया है तो दूसरी ओर धर्म के राजनीतिकरण से उत्पन्न सांप्रदायिकता की खतरनाक परिणति को दिखाकर उसके प्रति नकारात्मक दृष्टि अपनायी है। किन्तु लोकतांत्रिक व्यवस्था की उपलब्धि को स्वीकार करने से ये कवयित्रियाँ कतराती नहीं है। यह तथ्य आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की राजनीतिक चेतना को व्यक्त कर रहा है जो यह साबित करता है कि स्त्री कविता मात्र रोने धोने की नहीं है बल्कि समाज प्रतिबद्ध है। आधुनिक हिन्दी स्त्री कविता नवऔपनिवेशिक माहौल में उपजी उपभोग संस्कृति से भली भाँति वाकिफ है जहाँ इनसान भी वस्तु में तब्दील होता जा रहा है। नई संस्कृति ने नये मूल्यबोध को जन्म दिया है। स्त्री कविता परंपरागत मान्यताओं का अंधाधुंध अनुकरण करना नहीं चाहती बल्कि नये मूल्यों के आजमाना चाहती है। सहजीवन और उन्मुक्त प्रेम की इच्छा प्रकट करते वक्त स्वतंत्र जीवन जीने की उनकी चाह उभर आती है। इसका तात्पर्य यह कतई नहीं है कि स्त्री कविता मानव संबंधों पर विश्वास नहीं रखती। क्योंकि उपभोग संस्कृति के परिणाम स्वरूप मानव संबंधों में जो बिखराव आया है, उसपर आधुनिक

हिन्दी स्त्री कविता अपना क्षोभ प्रकट करती है। वहीं दूसरी ओर बदलते हुए सामाजिक परिवेश में, खुले पारिवारिक संदर्भ में मज़बूत होते, बनते हुए रिश्तों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है।

ग्रामीण किसान जीवन की त्रासदी, महानगरीय जीवन का संत्रास, दलित आदिवासी जन समुदाय का सांस्कृतिक संकट आदि को शब्दबद्ध करते समय कवयित्रियों का सांस्कृतिक स्वत्वबोध नज़र आता है जो प्रत्येक युग में देखा जा सकता है। यहाँ स्त्री कविता नई जीवन रीति को अपनाने की चाह रखते हुए भी मानव राशि को जीवंत बनानेवाले तत्त्वों को नष्ट होते देखना नहीं चाहती। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखनेवाली कवयित्रियाँ मानवराशि को कर्मशील और संघर्षरत होने की प्रेरणा दे रही हैं। शुरुआती दौर से लेकर अब तक की स्त्री काव्यधारा में एक उम्मीद बरकरार रही है। एक अनोखी बात यह नज़र आयी कि सभी आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों ने प्रेम और वात्सल्य को अपने से अलग नहीं होने दिया, अपनी ताकत बनाकर अपने साथ बनाये रखा। परिवर्तित परिवेश के अनुसार उसमें विस्तार एवं नयापन अवश्य आया है। आधुनिक स्त्री कविता में स्त्री, ईश्वर का पुनर्निर्माण नहीं करती और न उसे ठुकराती है। उसकी मूल चिन्ता यही है कि स्त्री की निष्क्रिय छवि को कैसे तोड़ा जाय। इनकी कविताओं पर सामाजिक राजनीतिक प्रक्रियाओं आंदोलनों की गहरी छाप मिलती है।

युगीन साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर भी आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों ने अपनी अभिव्यक्ति केलिए अपनी शैली में शिल्पों को गढ़ा।

यह एक वास्तविकता है कि प्रारंभिक दौर की स्त्री कविता की भाषा में जो तरलता और कोमलता विद्यमान थी वह आत्म चेतना के विस्तार के साथ गंभीर बनती गई। विषय के समान भाषिक अभिव्यक्ति में भी कवयित्रियाँ खुलती आयी हैं। उनके गढ़े हुए सारे बिम्ब-प्रतीक स्त्री जीवन से ही चुने गये हैं जो स्त्री की अपनी एक भाषा को रूपायित करने की ओर अग्रसर हैं। वस्तुगत दृष्टि से देखा जाय तो आधुनिक हिन्दी स्त्री कविता पुरुष-विरोधी नहीं मनुष्यस्नेही है। विभिन्न परिवेशों से होने के बावजूद आधुनिक हिन्दी स्त्री काव्यधारा 'मानवतावाद' की एकमात्र विचारधारा को अभिव्यक्त कर रही है। आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की कविताएं, आधुनिक हिन्दी कवियों के समान ही संवेदनशील एवं समाज प्रतिबद्ध रही हैं। कवियों की अपेक्षा कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री चेतना का विस्तार एक अतिरिक्त इकाई है। आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों ने कथासाहित्य के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी चलायी है।

स्त्री साहित्य की बड़े पैमाने पर मौजूदगी और साहित्येतिहास में उसकी अनुपस्थिति ने नये सिरे से साहित्येतिहास लिखने की ज़रूरत को पैदा किया है। प्रस्तुत विषय की गहनता और व्यापकता अपने आप में एक विस्तृत अध्ययन की माँग रखती है। प्रबंध का प्रत्येक अध्याय शोध की नई संभावनाओं को लेकर हमारे सामने प्रस्तुत है।

❖ ❖ ❖

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रंथ

1.	अनुष्टुप	अनामिका किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998
2.	अपने घर की तलाश में	निर्मला पुतुल, रमणिका फाउंडेशन प्रकाशन प्र.सं. 2004
3.	अपने जैसा जीवन	सविता सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.सं. 2001
4.	अपरिचित उजाले	प्रभा खेतान अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1981
5.	अभी और कुछ	शकुंत माथुर भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन प्र.सं. 1968
6.	इस अकेले तार पर	सुनीता जैन, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1995
7.	इस पौरुषपूर्ण समय में	कात्यायनी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1999
8.	उगे हुए हाथों के जंगल	सुमन राजे ज्ञान भारती प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं. 1987

9. एक दिन लौटेगी लड़की	गगन गिल राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 1989
10. एकाकी दोनों	स्नेहमयी चौधरी राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1966
11. एरका	सुमन राजे नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र.सं. 1990
12. कबाड़ी क तराजू	निर्मला गर्ग राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं. 2000
13. कवि ने कहा	नीलेश रघुवंशी किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2016
14. कहती हैं औरतें	अनामिका इतिहासबोध प्रकाशन प्र.सं. 2003
15. कहीं भी खत्म कविता नहीं होती	नरेन्द्र मोहन संभावना प्रकाशन सं. 1978
16. कीर्ति चौधरी कविताएँ	कीर्ति चौधरी राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1958

17. कुछ दूर तक — अर्चना वर्मा
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1981

18. खाँटी घरेलू औरत — ममता कालिया
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2004

19. खुरदुरी हथेलियाँ — अनमिका
राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली, प्र.सं. 2005

20. खुले हुए आसमान के नीचे — कीर्ति चौधरी
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद, प्र.सं. 1968

21. चौथा सप्तक — अज्ञेय (सं)
सरस्वती विहार प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1979

22. जादू नहीं कविता — कात्यायनी
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली,
प्र.सं. 2002

23. तीसरा सप्तक — अज्ञेय (सं)
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दसवाँ, सं. 2013

24. दीपशिखा — महादेवी वर्मा
भारती भण्डार, इलाहाबाद
छठा सं. 1962

25. दूब-धान — अनामिका,
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दू.सं. 2008

26. दूसरा सप्तक — अज्ञेय (सं)
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
चौथा सं. 2012

27. नन्हे सपनों का सुख — सरिता बडाइक
रमणिका फाउंडेशन
दिल्ली, सं. 2013

28. नीरजा — महादेवी वर्मा
भारती भण्डार, इलाहाबाद
द्वि. सं. 1960

29. नीहार — महादेवी वर्मा
हिन्दी साहित्य प्रेस
इलाहाबाद
द्वि.सं. 1957

30. पिता भी तो होते हैं माँ — रजत रानी मीनू
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
प्र.सं. 2015

31. प्रतिनिधि कविताएँ रमणिका गुप्ता — मदन कश्यप (सं)
अक्षर शिल्पी प्रकाशन
प्र.सं. 2008

32. बीजाक्षर — अनामिका
भूमिका प्रकाशन,
नई दिल्ली, प्र.सं. 1993

33. भीड़ सतर में चलने लगी है — रमणिका गुप्ता, रमणिका फाउंडेशन, दिल्ली, प्र.सं. 2002

34. महादेवी साहित्य — महादेवी वर्मा, सेतु प्रकाशन झांसी, सं. 1970

35. माँ का जवान चेहरा — ज्योति चावला, आधार प्रकाशन, प्र.सं. 2013

36. मेरे काव्य संग्रहः स्वाति बूँद और खारे मोती, हमारे हिस्से का सूरज — सुशीला टाकभौरे, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि. सं. 2014

37. मेरे काव्य संग्रहः यह तुम भी जानो, तुमने कब पहचाना उसे — सुशीला टाकभौरे, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 2013

38. यात्रादंश — सुमन राजे, साहित्य निकेतन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1987

39. यामा — महादेवी वर्मा, भारती भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ सं. 1961 ई

40. रश्मि — महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं 1957

41. रोशनी के रास्ते पर	अनीता वर्मा राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 2008
42. लहर नहीं टूटेगी	शकुंत माथुर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्र.सं. 1990
43. सप्तपर्णा	महादेवी वर्मा राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं. 1960
44. सबूत क्यों चाहिए	इंदु जैन अभिव्यंजना प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 1999
45. सांध्यगीत	महादेवी वर्मा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र. सजिल्द सं. 2008
46. सात भाइयों के बीच चंपा	कात्यायनी आधार प्रकाशन हरियाणा, प्र.सं. 1999
47. सुभद्रा कुमारी चौहान की श्रेष्ठ कविताएँ	चंद्रा सदायत (सं) नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली प्र.सं. 2006
48. सुमित्रा कुमारी सिन्हा रचनावली (खण्ड-1)	आजित कुमार (सं) ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1990

49. स्त्री काव्यधारा — जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह (सं) अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स्, नई दिल्ली, प्र.सं. 2006

50. स्वप्न में घर — चंपा वैद नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्र.सं. 2001

51. हवा सी बेचैन युवतियाँ — रजनी तिलक स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2014

52. हिमालय — महादेवी वर्मा लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1963

समीक्षात्मक ग्रंथ

1. आदिवासी कौन — रमणिका गुप्ता (सं) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 2008

2. आधुनिक कविता राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण के संदर्भ में — डॉ. एस पद्मप्रिया मिलिन्द प्रकाश प्र.सं. 2010

3. आधुनिक बोध — रामधारी सिंह दिनकर पंजाबी पुस्तक भण्डार दिल्ली, प्र.सं. 1973

4.	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	नामवर सिंह लोकभारती प्रकाशन सं. 1990
5.	आधुनिक हिन्दी कविता और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता	कमला प्रसाद, साहित्यवाणी प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1994
6.	आधुनिक हिन्दी कविता का वैचारिक पक्ष	रतन कुमार विश्वविद्यालय प्रकाशन प्र.सं. 2000
7.	आधुनिक हिन्दी कविता में नवीन मूल्य	डॉ. हुकुम चन्द्र राजपाल राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, प्र.सं. 2004
8.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	नागेश्वर लाल भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन सं. 1971
9.	आधुनिक हिन्दी कविता में विचार	डॉ. बलदेव वंशी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002
10.	आधुनिक हिन्दी कविताः सर्जनात्मक संदर्भ	डॉ. रामदरश मिश्र इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1986
11.	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	बच्चन सिंह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2007
12.	इतिहास में स्त्री	सुमन राजे भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन प्र.सं. 2012

13. एको-फेमिनिज़्म — डॉ. के. वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2013

14. कविताएँ 1965 — अजित कुमार, विश्वनाथ त्रिपाठी (सं), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1968

15. कविता का संघर्ष — कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2016

16. कविता के सौ बरस — लीलाधर मंडलोई (सं), शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2008

17. कविता में औरत — अनामिका, साहित्य उपक्रम प्रकाशन, प्र.सं. 2004

18. छायावाद-एक पुनर्मूल्यांकन — रवीन्द्र भ्रमर, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 1971

19. छायावादोत्तर काव्य — प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वि. सं. 2003

20. छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ — डॉ. टी.एन. मुरली कृष्णम्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1986

21. छायावादोत्तर हिन्दी -कविता	डॉ. द्वारकाप्रसाद ब. साँचीहर चिन्ता प्रकाशन प्र.सं. 1990
22. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र	ओमप्रकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 2001
23. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर	विमल थोरात अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली प्र.सं. 2008
24. दसवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में सांप्रदायिक सौहार्द -	मंजुला राणा वाणी प्रकाशन, प्र.सं.2008
25. धरती की पुकार	सुन्दरलाल बहुगुणा राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली सं. 1996
26. नया काव्य नये मूल्य	ललित शुक्ल दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड प्रकाशन प्र.सं. 1975
27. नयी कविताः नये कवि	विश्वंभर 'मानव' लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, द्वि.सं.1968

28. नयी सदी की हिन्दी कविता - डॉ. राधा वर्मा
प्रकाशन संस्थान
प्र.सं. 2011

29. नवजागरण, देशी स्वच्छंदतावाद और नयी काव्यधारा कृष्णदत्त पालीवाल
स्वराज प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 2007

30. नागपाश में स्त्री मनीषा
राजकमल प्रकाशन
प्र.सं. 2010

31. नारी चेतना के आयाम डॉ. अलका प्रकाश
लोकभारती प्रकाशन
प्र.सं. 2007

32. नारी मुक्ति संग्राम शांति कुमार स्याल
आत्माराम एण्ड सन्ज़
दिल्ली, प्र.सं. 2004

33. नारीवादी विमर्श राकेश कुमार
आधार प्रकाशन
प्र.सं. 2001

34. पर्यावरण और हम राजीव गर्ग
राजपाल एण्ड सन्ज़
प्रकाशन, सं. 1989

35. प्रकृति, पर्यावरण और बाज़ारवाद राजेन्द्र जोशी
अमित प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 2009

36. बाज़ार के बीचः बाज़ार के खिलाफ	प्रभा खेतान वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2004
37. बाधाओं के बावजूद नई औरत	उषा महाजन मेधा बुक्स प्रकाशन प्र.सं. 2001
38. भारत में बाल मज़दूर	सुभाष शर्मा प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, द्वि.सं.2006
39. भारतीय संस्कृति	नरेन्द्र मोहन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1997
40. भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ	सच्चिदानंद सिन्हा वाणी प्रकाशन प्र.सं. 2003
41. महादेवी - नया मूल्यांकन	गणपति चन्द्र गुप्त लोकभारती प्रकाशन द्वि. सं. 1997
42. महादेवी वर्मा	जगदीश गुप्त साहित्य अकादेमी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 1994
43. लेखन में महिला	डॉ. उषाकीर्ति राणावत साहित्यागार प्रकाशन जयपुर, प्र.सं. 2010
44. संस्कृति की उत्तरकथा	शंभुनाथ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 2000

45. समकालीन कविता की भूमिका — डॉ. मोहन
अनंग प्रकाशन,
नई दिल्ली, सं. 2005

46. समकालीन कविता में मानवमूल्य — डॉ. हुकुमचन्द्र राजपाल
शारदा प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र. सं. 1993

47. समकालीन हिन्दी उपन्यास — डॉ. एन मोहनन
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली, प्र.सं. 2012

48. साहित्य और सामाजिक मूल्य — डॉ. हरदयाल
विभूति प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1985

49. साहित्य और सामाजिक संदर्भ — शिवकुमार मिश्र
कला प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 1977

50. साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन — डॉ. के. वनजा
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली, प्र.सं. 2011

51. सुभद्रा कुमारी चौहान — सुधा चौहान
साहित्य अकादेमी प्रकाशन
दिल्ली, द्वि. सं. 1990

52. स्त्री अस्मिता के सवाल — डॉ. प्रभा दीक्षित
साहित्य निलय प्रकाशन,
कानपुर, सं. 2011

53. स्त्री उपेक्षिता — सीमोन द बोउवार
हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट
लिमिटेड, सं. 2002

54. स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ	रेखा कस्तवार राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्र.सं. 2006
55. स्त्री लेखन और समय के सरोकार	हेमलता महिश्वर नेहा प्रकाशन, प्र.सं. 2006
56. स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प	रोहिणी अग्रवाल राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 2011
57. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास	डॉ. संजय गर्ग (सं) सामयिक प्रकाशन प्र.सं. 2012
58. स्त्री विमर्श का लोकपक्ष	अनामिका वाणी प्रकाशन प्र.सं. 2012
59. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्यः युगीन संदर्भ	सुभद्रा पैठणकर विद्याविहार प्रकाशन प्र.सं. 1988
60. हिन्दी काव्य का इतिहास	रामस्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती प्रकाशन सं. 2012
61. हिन्दी की कवयित्रियाँ	डॉ. रमप्रसाद मिश्र प्रेम प्रकाशन मंदिर नई दिल्ली, प्र.सं. 1990
62. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास	डॉ. सुमन राजे भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन प्र.सं. 2003

63. हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, सं. 2005

64. हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन नौएड़ा, तैंतीसवाँ सं. 2003

65. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास — बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली, तृतीय सं. 2009

कोश ग्रन्थ

1. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश — गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 1986
2. हिन्दी पर्यायवाची कोश — भोलानाथ तिवारी तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1985

पत्रिकाएँ

1. अक्षरपर्व, अंक 4 - सितंबर 2011
2. अक्षरपर्व, अंक 4 - सितंबर 2013
3. अक्षरपर्व, अकं 6 - नवंबर 2013
4. आजकल, अंक 11 - मार्च 2008
5. आलोचना, अंक 19-20 - जनवरी -मार्च 2005
6. इन्द्रप्रस्थ भारती, अंक 4 - अक्तूबर-दिसंबर 2004
7. उत्तरा, अंक 4 - जुलाई - सितंबर, 2005

8. उत्तरा, अंक 2 - जनवरी - मार्च 2006
9. कथाक्रम, अंक 33 - जुलाई-सितंबर 2007
10. कथादेश, अंक 1 - मार्च 2008
11. कथादेश, अंक 1 - मार्च 2013
12. कथादेश, अंक 4 - जून 2013
13. कथादेश, अंक 8 - अक्तूबर 2013
14. कथादेश, अंक 1 - मार्च 2014
15. कथादेश, अंक 12 - फरवरी 2015
16. खोज, अंक 8 - अक्तूबर-मार्च, 2012
17. गगनाँचल, अंक 4 - अक्तूबर-दिसंबर, 2003
18. गगनाँचल, अंक 1 - जनवरी-मार्च, 2009
19. गगनाँचल, अंक 2 - मार्च-अप्रैल 2013
20. चिन्तन सृजन, अंक 3 - जनवरी - मार्च 2013
21. दक्षिण भारत, अंक 156 - जुलाई-सितंबर, 2014
22. दस्तावेज़, अंक 2 - जनवरी-मार्च 1999
23. नई धारा, अंक 11-12 - फरवरी-मार्च 2009
24. नई धारा, अंक 7-8 - नवंबर 2009
25. नया ज्ञानोदय, अंक 45 - नवंबर 2006
26. नया ज्ञानोदय, अंक 65 - जुलाई 2008
27. पक्षधर, अंक 07 - जून 2009
28. परिचय, अंक 17 - मार्च 2017
29. भाषा, अंक 2 - दिसंबर, 1981

30. भाषा, अंक 6 - जुलाई-अगस्त 2009
31. मधुमती, अंक 3 - मार्च 1992
32. मधुमती, अंक 10 - अक्तूबर 2000
33. मधुमती, अंक 1 - जनवरी 2003
34. मधुमती, अंक 1 - जनवरी 2007
35. मधुमती, अंक 3 - मार्च, 2008
36. मधुमती, अंक 3 - मार्च, 2011
37. मधुमती, अंक 5 - मई, 2012
38. मधुमती, अंक 5 - मई, 2013
39. मधुमती, अंक 4-5 - अप्रैल -मई, 2014
40. मधुमती, अंक 8 - अगस्त, 2014
41. माध्यम, अंक 4 - अगस्त, 1966
42. माध्यम, अंक 5 - सितंबर, 1966
43. माध्यम, अंक 16 - अक्तूबर-दिसंबर, 2004
44. युद्धरत आम आदमी, अंक 108 - 2011
45. रंग प्रसंग, अंक 5 - जनवरी - मार्च, 2007
46. वर्तमान साहित्य - मार्च 2011
47. वर्तमान साहित्य - मार्च 2012
48. वाक्, अंक 12 - 2012
49. वागर्थ, अंक 61 - जून 2000
50. वागर्थ, अंक 209 - दिसंबर 2012
51. वागर्थ, अंक 211 - फरवरी 2013

52. वागर्थ, अंक 213 - अप्रैल, 2013
53. वागर्थ, अंक 216 - जुलाई, 2013
54. वागर्थ, अंक 228 - जुलाई 2014
55. वाङ्मय, अंक 14-15 - जुलाई-दिसंबर, 2007
56. वाणी प्रकाशन समाचार, अंक 72 - मई, 2013
57. संग्रथन, अंक 8 - फरवरी 2014
58. संचेतना, अंक 3 - सितंबर - 1982
59. संचेतना, अंक 3-4 - सितंबर-दिसंबर, 1994
60. समकालीन भारतीय साहित्य, अंक 160 मार्च-अप्रैल, 2012
61. समयांतर, अकं 2 - नवंबर - 2007
62. समयांतर - अंक 4 - जनवरी - 2008
63. समयांतर, अंक 5 - फरवरी, 2008
64. सम्मेलन पत्रिका, अंक 96 - अक्तूबर-दिसंबर 2011
65. साक्षात्कार, अंक 392 - अगस्त, 2012
66. साहित्य अमृत, अंक 7 - फरवरी, 2001
67. साहित्य अमृत, अंक 2 - सितंबर, 2011
68. साहित्य अमृत, अंक 6, - जनवरी, 2011
69. साहित्य अमृत, अंक 10 - मई, 2011
70. साहित्य अमृत, अंक 5 - दिसंबर, 2012
71. हंस, अंक 6-7 - जनवरी - फरवरी 2000
72. हंस , अंक 8 - मार्च 2000
73. हंस, अंक 10 - मई, 2001

74. हंस, अंक 3 - अक्तूबर 2007

75. हंस, अंक 2 - सितंबर, 2013

मलयालम ग्रंथ

1. पेन्नेषुत्तु
एन जयकृष्णन (सं)
केरल भाषा इन्स्टिट्यूट,
तिरुवनन्तपुरम
द्वि. सं. 2011

2. मलयालम कविता साहित्य चरित्रम्
डॉ. एम लीलावती
केरल साहित्य अकादेमी
प्रकाशन, तृश्शूर
छठा सं. 2011

संगीता नायर
कलरी हाउस
कूवप्पड़ी पी.ओ
एरणाकुलम (जिला)
पिन - 683 544
केरल

श्रीमती. संगीता नायर का जन्म 11 नवंबर 1988 को केरल के एरणाकुलम जिले में स्थित चोव्वरा नामक गांव के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा पेरुम्बावूर में हुई। हिन्दी को ऐच्छिक विषय बनाकर स्नातकीय शिक्षा उन्होंने कालड़ी के श्री शंकरा कॉलेज में पूरी की। उसमें 2010 में महात्मा गांधी विश्वविद्यालय की ओर से प्रथम श्रेणी भी प्राप्त हुई। कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय से 2012 में एम.ए की उपाधि प्राप्त हुई। 2012 से इसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर डॉ. देवकी एन जी के निर्देशन में शोधकार्य शुरू हुआ। इसी वर्ष यू.जी. सी. की नेट (NET) परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुई। कोच्चिन विश्वविद्यालय से निकलनेवाली वार्षिक शोध पत्रिका (अनुशीलन) में इनके कई आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। कोच्चिन विश्वविद्यालय एवं पत्तनमतिट्टा के कैथलिकेट कॉलेज (महात्मा गांधी विश्वविद्यालय) में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध संबंधित प्रपत्र भी प्रस्तुत हुए हैं। इनके अतिरिक्त साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र से भी जुड़ी रही हैं।